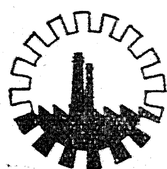
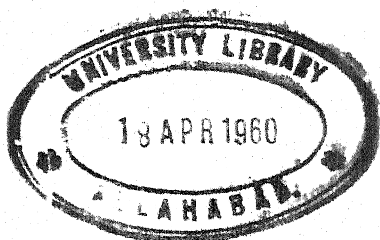
भारत के प्रमुख उद्योग



वेदप्रकाश सिंह





आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली



प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य	:	७ रुपए ५० नए पैसे
प्रथम संस्करण	:	१ ९ ५ ९
आवरण	:	ना० मा० इंगोले
मुद्रक	:	मूवीज प्रेस, दिल्ली-६

जिसके त्याग और बलिदान से
यह जीवन पल्लवित और पुष्पित हुआ
उसी ममतामयी माँ
के चरणों में

समस्त विश्व के अनुभवों से यह प्रकट है कि केवल औद्योगीकरण और विज्ञान तथा टैक्नोलोजी के श्रेष्ठतम उपयोग द्वारा ही आज के उन्नत राष्ट्रों ने इतनी समृद्धि प्राप्त की है। सच तो यह है कि बेरोजगारी की समस्या को केवल औद्योगीकरण द्वारा ही सक्रिय रूप में सुलझाया जा सकता है। माना कि प्रारम्भ में मशीनों के प्रयोग से बहुत से लोग बेकार हो जाते हैं और कुछ हद तक बेरोजगारी पैदा हो जाती है, लेकिन जहाँ तक मुमकिन हो, इससे बचने की कोशिश की जा सकती है। फिर भी, आखिर में केवल बड़े उद्योगों द्वारा ही जनता के लिए रोज़गार के विशाल अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं। अंग्रेजी शासकों की शोषण-नीति के कारण १६वीं शताब्दी में भारतीय उद्योगों को काफी क्षति उठानी पड़ी। उन्होंने देश के निर्माणकारी उद्योगों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, जिससे देश की कोटि-कोटि जनता को एकमात्र धरती माँ का आश्रय लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसके विपरीत, यूरोप में लोग गाँवों को छोड़ कर शहरों की ओर जा रहे थे। नतीजा यह हुआ कि हम विशाल साधनों के बावजूद, औद्योगिक विकास के क्षेत्र में पिछड़ गए। लेकिन अब बुनियादी बात यह है कि हमें उद्योगों को विकसित करना है। हमें कृषि और उद्योगों को वैज्ञानिक ढंग पर संचालित करके इस पिछड़ेपन को मिटाना है और इन दिशाओं में आगे बढ़े हुए राष्ट्रों की प्रतिस्पर्द्धाओं का सामना करते हुए आगे बढ़ जाना है। हमें बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण करना है।

—जवाहरलाल नेहरू

प्राक्कथन

इतिहास साक्षी है कि भारत पर ब्रिटिश प्रभुता स्थापित होने के पूर्व यहाँ के उद्योग उन्नति के शिखर पर थे और विश्व के बाजारों में भारतीय वस्तुओं की धाक जमी हुई थी। किन्तु अंग्रेज शासकों की विद्वेषपूर्ण एवं शोषक नीति के परिणामस्वरूप हमारी अर्थ-व्यवस्था का यह महत्त्वपूर्ण आधार-स्तम्भ ध्वस्त हो गया और देश की कोटि-कोटि जनता एकमात्र धरती माँ की छाती निचोड़ने के लिए बाध्य हो गयी। दुर्भाग्य की बात यह थी कि यह सब ऐसे समय में हुआ, जब वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं आविष्कारों के आधार पर पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हो रहा था। विदेशी शासकों ने यह अच्छी तरह समझ लिया कि भारत जैसे विशालकाय उप-महाद्वीप को अपने बाजार के रूप में परिणत करके ही वे अपने आधुनिक कारखानों को उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकते हैं। उन्होंने इसी लक्ष्य को सामने रखकर अपनी समस्त नीतियाँ निर्दिष्ट कीं। परिणाम यह हुआ कि विश्व के आर्थिक इतिहास की उस महत्त्वपूर्ण अवधि में, जब आधुनिक प्रविधियों एवं वैज्ञानिक आविष्कारों ने औद्योगिक, व्यापारिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उथल-पुथल मचा रखी थी, और स्वतन्त्र राष्ट्र इन स्थितियों का लाभ उठाकर समृद्धि के उच्चतम शिखर पर पहुँच रहे थे, पराधीन भारत विदेशियों के क्रूर शोषण का शिकार होकर निर्धनता, भूख और बेवशी से कराह रहा था।

किन्तु उसकी आत्मा जीवित थी। उसके भाग्य ने एक बार फिर करवट ली। विदेशी सत्ता के विरुद्ध स्वतन्त्रता संग्राम में असंख्य देशभक्तों ने अपने प्राणों की आहुति देकर अहिंसा के बल पर विश्ववन्द्य बापू के नेतृत्व में विजय पायी। राजनीतिक परतन्त्रता की बेड़ियाँ टूटीं और देश स्वतन्त्र हुआ। शासन की बागडोर एक बार पुनः देशवासियों के हाथ में आ गयी और हमें स्वयं अपने भाग्य का निर्माण करने का अवसर मिला।

हमारी राजनीतिक स्वतन्त्रता हमारे लिए फूलों के हार के बजाय काँटों का ताज बनकर आयी। हमारे सामने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिकों क्षेत्रों में

अगणित समस्याएँ मुँह बाये खड़ी थीं। हमें स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए उनकी ओर तत्काल ध्यान देना आवश्यक था। राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए कोई दृढ़, सुविचारित एवं स्थायी कदम उठाने के पूर्व हमें इन तत्कालिक समस्याओं से लोहा लेना था। राष्ट्र की इस संकटपूर्ण घड़ी में अपने तपे-तपाये नेताओं के अदम्य साहस और विवेकपूर्ण मार्ग-निर्देशन के फलस्वरूप हम ने जो गौरवपूर्ण सफलता प्राप्त की वह इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।

और फिर, सदियों के बाद पहली बार हम एक समन्वित एवं स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में देश के आर्थिक विकास के विशाल कार्य में जुट पड़े। हम भूतकाल में एकांगी आर्थिक प्रयासों की विफलता और निरर्थकता से परिचित थे। हमने अच्छी तरह समझ लिया कि हमें अपने प्रयासों को राष्ट्र के सर्वतोमुखी विकास की दशा में निर्दिष्ट करना पड़ेगा। हमें अपनी समस्याओं का सही-सही विश्लेषण करना था, उनके अन्तर्सम्बन्धों को निश्चित करना था, अपने उपलब्ध एवं सम्भाव्य साधनों का मूल्यांकन करना था और उन सबकी पृष्ठभूमि में जनसाधारण के कल्याण को सर्वोपरि रखकर आयोजित ढंग पर अपने निर्धारित लक्ष्यों की दिशा में दृढ़ता से बढ़ना था। हमारी प्रथम पंचवर्षीय योजना इसी चेतना का परिणाम थी। कृषि के क्षेत्र में उसकी आशातीत सफलता ने हमारी अर्थ-व्यवस्था के भावी विकास के लिए एक सुदृढ़ आधारशिला का निर्माण कर दिया है। अब हम द्वितीय पंचवर्षीय योजना द्वारा देश के औद्योगिक विकास के महा-अभियान पर निकल पड़े हैं। हम इस दिशा में अपनी सम्भाव्य क्षमताओं और सीमाओं के प्रति सजग हैं।

राष्ट्र के आर्थिक विकास की इस प्रक्रिया में बड़े पैमाने के उद्योगों की अपनी एक महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट भूमिका है। विश्व में आर्थिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्रों के अनुभव इस बात की ओर इंगित करते हैं कि केवल औद्योगीकरण और विज्ञान तथा टेकनोलोजी के श्रेष्ठतम उपयोग द्वारा ही वे समृद्धि के वर्तमान स्तर पर पहुँच सके हैं। हमें इन अनुभवों को दृष्टिगत रखकर अपने बड़े उद्योगों को विकसित करना है और इस प्रकार राष्ट्र को समृद्धि के पथ पर दृढ़ता से प्रतिष्ठित करके सदियों के आर्थिक पिछड़ेपन को मिटाना है, ताकि वह कड़ी से कड़ी प्रतिस्पर्द्धाओं का सामना करते हुए राष्ट्रों के परिवार में अपना सिर गौरव से ऊँचा रख सके।

देश के औद्योगिक आयोजन की सफल परिणति के लिए साधनों की विपुल उपलब्धि एवं सजग उपयोग की पूर्वावश्यकता के रूप में यह वांछनीय है कि हम अपने उद्योगों के विषय में सच्ची से सच्ची जानकारी प्राप्त करें और उनकी समस्याओं से परिचित हों। ऐसा होने पर ही, हम इस दिशा में उठाये गये कदमों की वांछनीयता को समझ सकेंगे या उनके विकास के लिए ठोस सुझाव दे सकेंगे। इस दृष्टि से देश

के लेखकों और अर्थशास्त्रियों पर एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। उन्हें देश की जनता में औद्योगिक स्थितियों और समस्याओं के सम्बन्ध में सही से सही जानकारी का प्रसार करना है और उसे ऐसी दृष्टि प्रदान करनी है कि वह इस दिशा में अपना रचनात्मक योग प्रदान कर सके।

इस दृष्टि से भारतीय उद्योगों के सम्बन्ध में श्री सिंह का प्रस्तुत प्रयास हिन्दी जगत के लिए एक बहुमूल्य देन है। श्री सिंह आर्थिक विषयों के सिद्धहस्त लेखक हैं और मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि उन्होंने इस पुस्तक में भारत की औद्योगिक समस्याओं का जितना उत्कृष्ट विश्लेषण एवं विवेचन किया है और जितने उपयोगी एवं प्रामाणिक तथ्य दिए हैं, उतने अन्यत्र दुर्लभ हैं। इसमें औद्योगिक भारत के अतीत की गौरवपूर्ण झाँकी, वर्तमान की समस्यामूलक यथार्थता एवं भविष्य की विपुल सम्भाव्यता के दर्शन होते हैं।

उन्होंने अपने प्रस्तुत अध्ययन के लिए देश के बड़े उद्योगों का क्षेत्र चुना है, किन्तु वह अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत बड़े और लघु उद्योगों की भूमिकाओं सम्बन्धी तथाकथित विवाद के पोषक नहीं हैं। वस्तुतः, वह इन दोनों क्षेत्रों की पारस्परिक निर्भरता में विश्वास करते हैं। फिर भी, वह यह मानते हैं कि आज के प्रतिस्पर्द्धी विश्व में भारत के आर्थिक उत्थान की कल्पना, अन्ततोगत्वा, बड़े उद्योगों के समुचित विकास द्वारा ही साकार हो सकती है। वह विशाल पैमाने पर देश के औद्योगीकरण के समर्थक हैं।

इस पुस्तक में श्री सिंह ने देश के आर्थिक विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रत्येक उद्योग की प्रारम्भ से लेकर अब तक की प्रगति पर प्रकाश डालते हुए उसकी वर्तमान समस्याओं का यथातथ्य विश्लेषण किया है, और देश के लिए उसके आर्थिक महत्त्व का मूल्यांकन करते हुए उसकी भावी सम्भावनाओं का संकेत किया है। उन्होंने अपने तर्कों और दृष्टिकोणों की पुष्टि यथास्थान प्रामाणिक तथ्यों और उद्धरणों से की है।

भारतीय उद्योगों सम्बन्धी गम्भीर एवं विस्तृत विषय-वस्तु को सरल एवं आकर्षक ढंग पर प्रस्तुत करने की उनकी अपनी एक विशिष्ट शैली है, जिसमें पाठक को कथा-शैली के निरीह विस्मय और काव्य-शैली के लालित्य का अद्भुत मिश्रण मिलता है, और अन्त में मिलती है सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्लेषण की यथार्थता। हिन्दी की मौलिक रचना होने के कारण उनकी भाषा अत्यन्त सरल एवं प्रवाहपूर्ण है जिसके कारण यह पुस्तक न केवल अर्थशास्त्र के विद्वानों एवं विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बन पड़ी है, बल्कि साधारण पाठक के लिए भी अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक है।

देश के आर्थिक विकास की वर्तमान स्थिति में, भारतीय उद्योगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए मुझे यह पुस्तक हिन्दी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में बड़ी प्रसन्नता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी जगत इसका सहर्ष स्वागत करेगा।

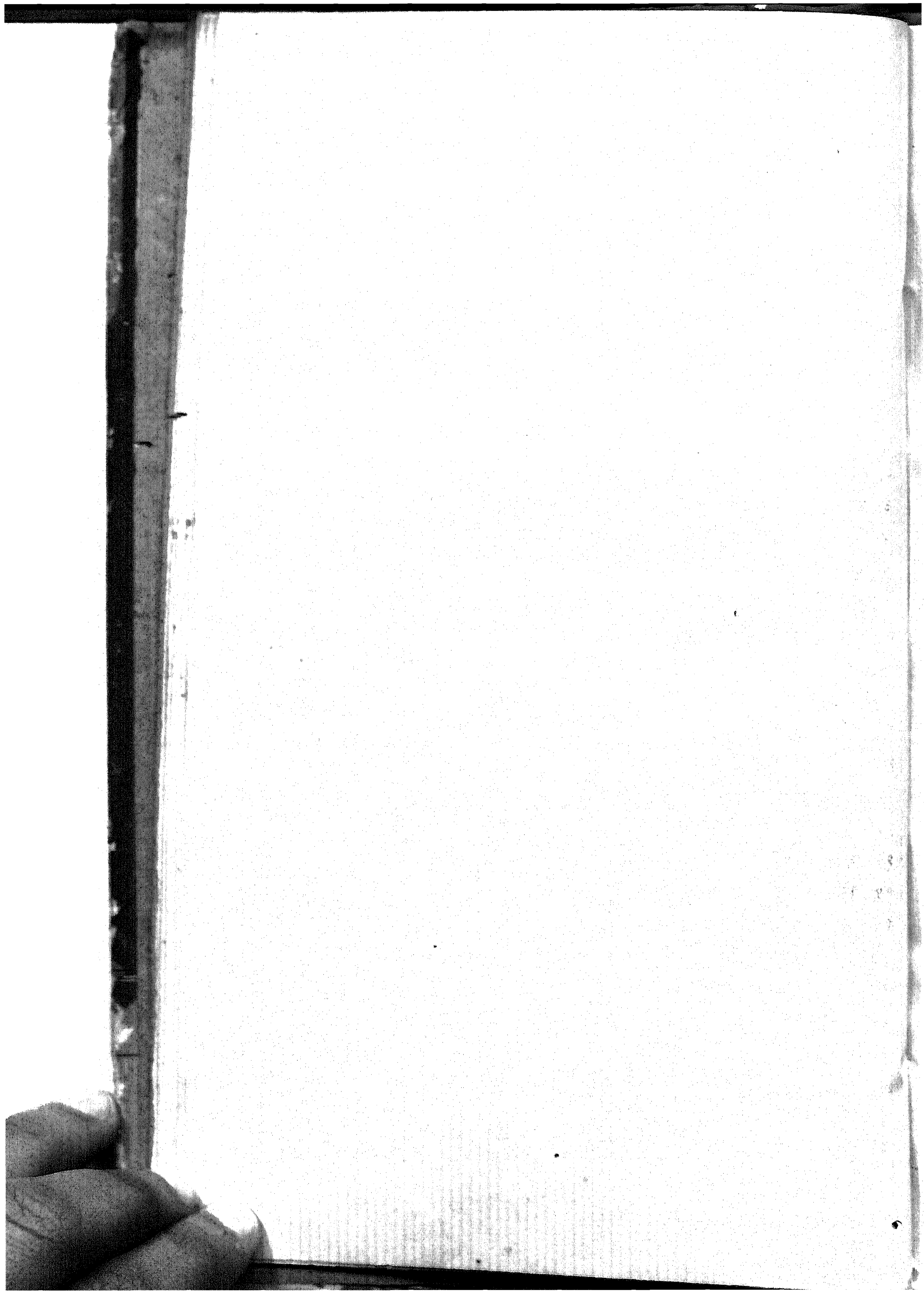
२२ मई, १९५९
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी
७, जन्तर-मन्तर रोड,
नई दिल्ली

—सुनील गुहा
सम्पादक
आर्थिक समीक्षा

दो शब्द

आज यह अत्यधिक आवश्यक है कि हिन्दी के लेखक राष्ट्रीय जीवन और राष्ट्र की प्रगति से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर अधिक से अधिक लिखने का प्रयास करें। इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने यह पुस्तक लिखने का साहस किया है। तथ्यों और आँकड़ों को जुटाने का कार्य कितना नीरस और श्रमसाध्य होता है, यह कहने की यहाँ आवश्यकता नहीं। कभी-कभी मुझे खीझ भी हुई है, परन्तु मैंने यह प्रयत्न छोड़ा नहीं। दो वर्षों के परिश्रम के बाद भी मैं वह सब नहीं लिख पाया हूँ, जो लिखना चाहता था। एक तो समय के अभाव से और दूसरे पुस्तक के आवश्यकता से अधिक बड़ी हो जाने की आशंका से मुझे विषय के क्षेत्र को सीमित करने के लिए विवश होना पड़ा, यद्यपि इस सम्बन्ध में आगे लिखने का विचार मैंने नहीं त्यागा है। इस पुस्तक में मैंने राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भारत के कुछेक प्रमुख उद्योगों को यथार्थता का पुट देकर पाठकों के समक्ष उपस्थित करने का प्रयास किया है। प्रत्येक उद्योग के सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी प्रदान करने की मैंने यथाशक्ति कोशिश की है। बहुधा यह कहा जाता है कि अर्थशास्त्र एक नीरस विषय है। इस आक्षेप को दृष्टि में रख कर ही कल्पना का पुट देकर विषय को सामान्य पाठक के लिए कुछ रुचिकर बनाने की ओर मैंने विशेष ध्यान दिया है। मैंने परिशिष्ट में उन सभी पुस्तकों की सूची दी है जिनसे इस पुस्तक को लिखने में सहायता प्राप्त की गई है। इस नीरस विषय की ओर सामान्य पाठक को आकर्षित करने में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय तो स्वयं पाठकगण ही करेंगे। यदि मेरी पुस्तक विद्यार्थी समाज और सामान्य पाठक के लिए थोड़ी भी उपयोगी सिद्ध हुई तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा। बहुत सम्भव है कि अपने इस पहले प्रयत्न में मुझ से त्रुटियाँ भी हुई हों। उनके लिए मैं विद्वत् समाज से पहले ही क्षमा माँग लेता हूँ और उपयोगी परामर्श की अपेक्षा रखता हूँ ताकि भविष्य में उन त्रुटियों का परिमार्जन कर सकूँ।

२२ मई, १९५९ —*वेदप्रकाश सिंह*





विषय-सूची

भारत के प्रमुख उद्योग

१

भारत की आर्थिक एवं औद्योगिक स्थिति पर एक विहंगम दृष्टि

किसी समय भारत सोने की चिड़िया के नाम से पुकारा जाता था। इसके वैभव और समृद्धि की कहानी सुनकर लोगों के मुख में पानी भर आता था। देश में सुख और समृद्धि का राज्य था। जनता अन्न, वस्त्र और धन के अभाव से पीड़ित नहीं थी। पारस्परिक विग्रह के फलस्वरूप देश की राजनीतिक शक्ति का ह्रास हुआ और अवसर की प्रतीक्षा में घात लगाए विदेशी आततायी भूखे भेड़ियों के सदृश भारत भूमि पर टूट पड़े। देश से न जाने कितनी सम्पत्ति वह लूट कर ले गए, परन्तु भारत का भंडार फिर भी रिक्त न हुआ, क्योंकि इस क्षति को भारत के तत्कालीन समृद्ध और उन्नत व्यापार ने शीघ्र पूरा कर दिया। मुसलमानों ने देश को जीता। हिन्दू जाति पराधीन भले ही हो गई, परन्तु देश के लिए सबसे अधिक कल्याणकारी बात यह हुई कि मुसलमान देश को पदाक्रान्त करने के बाद यहीं बस गए और धीरे-धीरे उन्होंने इसे अपना घर ही मान लिया। इस प्रकार देश का धन विदेशों में जाने से बच गया। इस उथल-पुथल के बाद मुसलमानों ने अन्य जातियों के साथ मिलकर देश को आर्थिक सुख और समृद्धि की ओर पुनः अग्रसर किया। शाहजहाँ का शासन-काल एक बार पुनः देश के लिए गर्व का विषय बन गया। इतिहासकारों ने उसे एक स्वर से मुसलमानों के शासन-काल का स्वर्णयुग कह कर पुकारा है। इस काल में देश ने पुनः एक बार इतनी समृद्धि प्राप्त कर ली कि उसके अतुल वैभव और ऐश्वर्य की कहानी अटक और कटक तथा हिमालय और कुमारी अन्तरीप की सीमाओं को लांघ कर दूर-दूर तक गूँज उठी। भारत के वैभव और समृद्ध व्यापार की चमत्कारिक कहानियाँ सुन कर पश्चिम की ओर से एक भयानक परन्तु अदृश्य खतरा धीरे-धीरे भारत की सीमा की ओर अग्रसर हो रहा था और एक दिन वह भी आया जब फिरंगी सौदागरों के रूप में यह खतरा भारत-भूमि से आ टकराया। शस्त्रहीन, विनीत, नम्र और विनय शील परन्तु अन्दर से अत्यधिक चतुर, धूर्त और स्वार्थी फिरंगी व्यापारियों के छद्‌वेश

में छिपे भयंकर खतरे को किसी ने नहीं पहचाना। कूटनीति, चतुराई, धूर्तता, छल, प्रवंचना और सेवा के द्वारा इन फिरंगी व्यापारियों ने मुगल शासन-काल के अन्तिम दिनों में किस प्रकार बंगाल मद्रास, सूरत और बम्बई में अपने पैर जमाए, यह किसी से छिपा नहीं। मुगल साम्राज्य की विशाल इमारत जब डगमगाने लगी तो धूर्तता और अद्भुत कूटनीति का सहारा लेकर भारतीयों के बल पर ही उन्होंने मुगल साम्राज्य के ढहते हुए विशाल भवन पर ऐसी करारी ठोकर मारी कि वह चूर चूर हो गया। भारतीयों के पास इसके अलावा अन्य कोई विकल्प ही न था कि खेती करके अपना पेट भरें और खून, पसीना बहाकर पैदा की गई कृषि-सम्पत्ति को कौड़ियों के मोल विदेशी व्यापारियों के हाथ बेच कर बदले में उनसे जीवनोपयोगी वस्तुएँ महँगे दामों पर खरीदें। इसका मुख्य कारण यह था कि सत्ता प्राप्त करते ही फिरंगियों ने ऐसी नीति अपनाई जिससे कुछ समय के अन्दर भारतीय उद्योग-धन्धों की वधिया ही बैठ गई और भारतीय तन ढकने तक के लिए उन पर आश्रित हो गए। जहाँ किसी समय महीन से महीन कपड़े और उत्कृष्ट प्रकार की वस्त्र-सामग्री सुलभ थी, वहाँ के निवासी तन ढकने के लिए विदेशों की दया पर निर्भर हों, यह विधि की विडम्बना नहीं तो और क्या!

कृषि आजीविका का मुख्य साधन

घरेलू उद्योग-धन्धों के नष्ट हो जाने के उपरान्त आजीविका का मुख्य साधन कृषि रह गया। आयात बहुत बढ़ गया और निर्यात घट कर केवल कच्ची कृषि सामग्री तक सीमित रह गया। इसके साथ वेतन इत्यादि अनेकों रूपों में देश का धन खिंच कर इंगलैण्ड जाने लगा। अंग्रेजों के शासन-काल में देश का कितना आर्थिक पतन हुआ, यह बिल्कुल स्पष्ट है। देश की अधिकांश जनता गरीब, अभावग्रस्त और बेरोजगार हो गई।

स्वतन्त्रता का उदय

परन्तु भाग्य ने एक बार फिर करवट बदली है, और भारत के सोए भाग्य फिर से जाग उठे हैं। दासता की बेड़ियों को तोड़कर भारत स्वाधीन हो गया और एक बार पुनः भारतीयों को स्वयं अपने भविष्य का निर्माण करने का अवसर प्राप्त हुआ। चारों ओर निराशा का घोर अन्धकार होते हुए भी हमने साहस और दृढ़तापूर्वक जटिल समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न जारी रखा है और यह अत्यधिक उत्साह और हर्ष का विषय है कि हमें उसमें आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई है।

भारत को स्वतन्त्र हुए आज १० वर्ष हो गए हैं। यद्यपि देश के समक्ष असाधारण और जटिल राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ अब भी विद्यमान हैं और आर्थिक पराधीनता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए दीर्घकाल तक संघर्ष करना है, परन्तु विदेशी शासन की समाप्ति स्वयं में एक ऐसी महत्त्वपूर्ण और उत्साहवर्धक

घटना है जिसने भारत की जनता के लिए आर्थिक समृद्धि और सम्पन्नता का मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

स्वतन्त्रता के इन १० वर्षों में हमने सभी क्षेत्रों मे प्रगति करने का प्रयास किया है और उल्लेखनीय सफलताएँ भी प्राप्त की हैं। इस सम्बन्ध में भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना की सफलताओं की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्राप्त सफलताएँ

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत हमने लगभग सभी दिशाओं में प्रगति की है। कृषि सामग्री के उत्पादन में वृद्धि हुई है, नए-नए उद्योग-धन्धे खुले हैं तथा पुराने उद्योग-धन्धों का विस्तार हुआ है, औद्योगिक उत्पादन पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है, राष्ट्रीय आय और निजी आय में वृद्धि हुई है तथा विदेश-व्यापार के क्षेत्र में नित नवीन और शुभ लक्षण दृष्टिगत हो रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के समक्ष सबसे भयंकर समस्या खाद्यान्नों के अभाव की है। देश की भूखी जनता के लिए भर पेट भोजन जुटाने के अलावा, देश के शासकों के समक्ष खाद्यान्नों के मामले में देश को पूरी तरह आत्मनिर्भर बनाने का लक्ष्य था, ताकि देश राजनीति के क्षेत्र में विवश हो कर किसी देश विशेष की नीति का अनुसरण न कर स्वतन्त्र विदेश नीति अपना सके। इसीलिए देश के उद्योगीकरण की आवश्यकता को अनुभव करते हुए भी प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि उत्पादन बढ़ाने पर विशेष जोर दिया गया। यह हर्ष का विषय है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में खाद्यान्नों के मामले में देश को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रगति की गई। न केवल कृषि के लिए और अधिक क्षेत्र प्राप्त किया गया है बल्कि खाद्यान्नों एवं अन्य प्रकार की कृषि सामग्री का उत्पादन भी आशा के अनुसार बढ़ा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि-जन्य वस्तुओं के उत्पादन में जितनी वृद्धि करने का निश्चय किया गया था उसके आंकड़े इस प्रकार हैं—

वस्तु	इकाई	आधार वर्ष का उत्पादन	अतिरिक्त उत्पादन	वृद्धि प्रतिशत में
१. खाद्यान्न	१० लाख टनों में	५४.०	७.६	१४
२. तेलहन	१० लाख टनों में	५.१	०.४	८
३. गन्ना (गुड़)	१० लाख टनों में	५.६	०.७	१३
४. कपास	१० लाख गांठों में	२.६	१.३	४५
५. जूट	१० लाख गांठों में	३.३	२.१	६४

—प्रथम पंचवर्षीय योजना से उद्धृत

[कृषि उत्पादन : खाद्यान्न उत्पादन का आधार वर्ष १९४९-५० शेष कृषि जन्य वस्तुओं का आधार-वर्ष ५०-५१]

प्रथम पंचवर्षीय योजना के पाँचों वर्षों में हमारे कृषि-उत्पादन में जो वृद्धि हुई है उसके आंकड़े इस प्रकार हैं—

कृषि सामग्री	इकाई	५१-५२	५२-५३	५३-५४	५४-५५	५५-५६
१. अनाज	१० लाख टन	४३ ९	४९.२	५८.२	५५.३	५५
२. कुल खाद्यान्न	१० लाख टन	५१.२	५८.३	६८.७	६५.८	६५
३. तेलहन	१० लाख टन	४.९	४.७	५.३	५.९	५.५
४. गन्ना : गुड़ :	१० लाख टन	६.१	५.०	४.४	५.५	५.८
५. कपास	१० लाख गांठें	३.१	३.२	३.९	४.३	४.२
६. जूट	१० लाख गांठें	४.७	४.६	३.१	२.९	४.०

—इण्डिया एट ए ग्लांस पस्तक से उद्धृत

उक्त आंकड़ों से यह भली भाँति स्पष्ट है कि कृषि उत्पादन में हमने आशातीत वृद्धि कर ली है और द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में शेष कमी भी पूरी कर लेंगे। यह सफलता केन्द्रीय और राज्य सरकारों के सतत प्रयत्नों, नवीन और उन्नत कृषि विधियों, रासायनिक खादों, अच्छे बीजों, सिंचाई सुविधाओं के विस्तार द्वारा और जापानी ढंग से धान की खेती करके प्राप्त की गई है।

औद्योगिक विकास की आधार-शिला

लेकिन कृषि-उत्पादन में वृद्धि करने पर विशेष तौर पर जोर देने के साथ-साथ हमने देश के औद्योगिक विकास की आधार शिला रखने का भी भरसक प्रयत्न किया है, ताकि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत हम उद्योगों के सर्वांगीण विकास पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकें। हम पहले ही कह चुके हैं कि जब पश्चिमी संसार में औद्योगिक क्रान्ति के लक्षण भी दृष्टिगोचर नहीं थे, भारत की उद्योग एवं व्यवसाय और वाणिज्य व्यवस्था अपने चरम उत्कर्ष पर थी। भारतीय पोत भारत में निर्मित अनेकानेक वस्तुएँ लेकर द्वीप-द्वीपान्तरों में जाते थे। आज अमेरिका और ब्रिटेन जहाज़रानी के क्षेत्र में प्रथम माने जाते हैं परन्तु कोई समय ऐसा भी था जब इंगलैंड आदि अनेक देशों के बन्दरगाहों पर भारतीय पोतों को देखने के लिए अच्छी खासी भीड़ एकत्र हो जाती थी। उनकी सुन्दरता और मजबूती देखकर उनका मन ललचा उठता था। कुशल

दस्तकारों और उत्तम कोटि के वस्त्रों के लिए भारत समस्त संसार में विख्यात था। भारतीय इस्पात और इस्पात से तैयार शस्त्रास्त्रों की धाक यूरोप में ही नहीं बल्कि संसार के सभी देशों में थी। भारत से माल ले जाने के लिए किसी समय भारतीय बन्दरगाहों पर विदेशी जहाजों का तांता लगा रहता था, और संसार के चारों ओर से अपार धन राशि खिच कर भारत पहुँचती थी। परन्तु अंग्रेजों ने सुव्यवस्थित और सुनिश्चित ढंग पर देश के व्यवसायों और व्यापार के मूल आधार पर कुठाराघात करना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने औद्योगिक व्यवस्था का समस्त आधार ही बदल डाला। अंग्रेजों के क्रूर करों से जो कुछ बच गया था उसे मशीनों ने समाप्त कर दिया। सारांश यह कि भारत का वाणिज्य-व्यवसाय पूरी तरह चौपट हो गया और भारत इंग्लैंड आदि देशों को कच्चा माल भेजने की एक मंडी मात्र रह गया। भारतवासी अपनी दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं के लिए भी विदेशों का मुख ताकने लगे। पश्चिमी देश यहाँ से बहुत सस्ती दरों पर कच्चा माल खरीद ले जाते और अपने यहाँ तैयार वस्तुओं से भारत की मंडियाँ पाट देते।

विदेशों से आवश्यकता की वस्तुएँ प्राप्त करने में कठिनाई

लेकिन प्रथम महायुद्ध के दौरान जहाजों की कमी और आवागमन सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण विदेशों से वस्तुओं का आयात घट गया, जिसके फलस्वरूप भारतवासियों को अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसी समय भारतीयों ने यह अनुभव कर लिया कि औद्योगिक विकास के बिना देश का कल्याण नहीं हो सकता। ब्रिटिश सरकार से इस दिशा में कोई प्रोत्साहन न मिलने के बावजूद कुछ साहसी भारतीय व्यवसायियों ने हिम्मत न हारी। अनेक कठिनाइयों और बाधाओं को पार कर और पूँजी डूब जाने का खतरा मोल लेकर भी उन्होंने देश को औद्योगिक विकास के पथ पर ला खड़ा किया। कुछ तो कालचक्र और राजनीतिक परिस्थितियों से विवश होकर और कुछ द्वितीय महायुद्ध की आशंका से त्रस्त हो कर सरकार ने भारत के औद्योगिक विकास में कुछ दिलचस्पी लेना शुरू किया। पूर्व में अपने विशाल साम्राज्य की रक्षा करने के लिए उसे एक ऐसे सुदृढ़ गढ़ की आवश्यकता थी, जिसे आधार बना कर वह संकट काल में सभी प्रकार की युद्धोपयोगी सामग्री जुटा सके। भारत से अधिक उपयुक्त स्थान इस दृष्टि से अन्य नहीं था। अतएव १९३०-४० और विशेषतः युद्धकाल में भारत तीव्र गति से औद्योगिक विकास के पथ पर अग्रसर हुआ, यद्यपि यह विकास सुनिश्चित और सुआयोजित ढंग पर नहीं हुआ तथा इसके फलस्वरूप भारत की स्वतन्त्र सरकार को एक जटिल समस्या का सामना करना पड़ा। लेकिन युद्ध समाप्त होते-होते भारत इस स्थिति में आ गया कि एक सुनिश्चित योजना

के अनुसार औद्योगिक विकास के पथ अग्रसर हो सके। युद्धोत्तरकाल में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के जुए से भारत की मुक्ति ने तो इस मार्ग की अन्तिम बाधा को भी साफ कर दिया।

द्वितीय महायुद्ध के समय भारत की गणना संसार के ८ सर्वाधिक उद्योग-प्रधान देशों में होने लगी। देश की ज्वांइट स्टाक कम्पनियों की कुल पूँजी ४२४.२ करोड़ रुपये तक पहुँच गई थी और कारखानों और फैक्टरियों में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या भी २५ लाख से ऊपर थी। इस्पात और वस्त्र उद्योग देश की तीन चौथाई माँग को पूरी करने में समर्थ थे। चीनी, साबुन और सीमेण्ट के मामले में देश पूरी तरह आत्मनिर्भर था और जूट के क्षेत्र में उसने संसार की अधिकांश जूट मण्डियों पर अपना एकाधिकार स्थापित कर रखा था।

युद्धोत्तरकालीन संकट

लेकिन एक दृष्टि से युद्धोत्तरकाल भारतीय उद्योगों के लिए एक अत्यधिक संकट का समय भी था। युद्ध के दौरान कारखानों की मशीनों से डटकर काम लिया गया था जिसके फलस्वरूप अधिकांश मशीनें या तो पुरानी हो चली थीं या घिसपिट गई थीं। युद्धोत्तरकालीन मन्दी की सम्भावना से भयभीत होकर पूँजीपति उद्योगों में पूँजी लगाने में हिचक रहे थे। परिणामस्वरूप उत्पादन घट गया और बहुत से उद्योग तो अपनी क्षमता से कम वस्तुओं का निर्माण करने लगे। इसके अलावा भारत में कारखानों के उत्पादन में योग देने वाली भारी मशीनों इत्यादि का निर्माण करने वाले उद्योगों का सर्वथा अभाव था। जीवन-यापन व्यय में वृद्धि होने के फलस्वरूप व्यक्तिगत आय में हुई वृद्धि का प्रभाव फीका पड़ गया था। मुद्रास्फीति का संकट बढ़ता जा रहा था। मजदूरों में असन्तोष बढ़ रहा था तथा मध्यम वर्ग की कठिनाइयाँ भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती थीं। विभाजन के फलस्वरूप देश की आर्थिक एकता नष्ट हो गई और बहुत से उद्योगों की हालत खस्ता हो गई। कलकत्ता स्थित जूट की मिलें भारत में रह गईं, जबकि जूट-उत्पादक क्षेत्र का अधिकांश भाग पाकिस्तान के अधिकार में चला गया। इसी प्रकार बम्बई और अहमदाबाद की कपड़ा मिलें कपास की आवश्यकता की पूर्ति के लिए विदेशों पर निर्भर हो गईं।

त्रिदलीय सम्मेलन और सरकार की औद्योगिक नीति

तत्कालीन परिस्थितियों पर विचार कर औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में एक निश्चित नीति निर्धारित करने के लिए भारत सरकार ने दिसम्बर, १९४७ में एक त्रिदलीय सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन ने उद्योगों की स्थिति का सिंहावलोकन

किया और इस क्षेत्र में सरकार की योजना के लक्ष्यों और उद्देश्यों की व्याख्या की। भारत सरकार की वर्तमान औद्योगिक नीति मूलतः ६ अप्रैल, १९४८ के प्रस्ताव पर आधारित है। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि 'भारत सरकार का तत्कालिक लक्ष्य शिक्षा की सुविधाओं और सार्वजनिक स्वास्थ की सुविधाओं का विस्तार करना और देश के प्राकृतिक साधन-स्रोतों का विकास कर देशवासियों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार एक राष्ट्रीय योजना आयोग स्थापित करने का विचार करती है, जो विकास कार्यक्रम तैयार कर उन्हें कार्यान्वित करेगा। देश की इस समय जो आर्थिक स्थिति है, उसे देखते हुए विशेष तौर पर उत्पादन-वृद्धि में योग देने वाले यन्त्रों और उपकरणों के निर्माण पर विशेष बल देना चाहिए। जनता की आधारभूत आवश्यकताओं से सम्बन्धित वस्तुओं और निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन भी बढ़ाया जाना चाहिए। वतमान औद्योगिक विकास कार्यों में योग देकर सरकार राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योग दे सकती है।' इसके साथ ही १९४८ में सरकार ने भारतीय उद्योगों की स्थिति के सम्बन्ध में व्यापक जाँच-पड़ताल की। देश के लगभग २९ प्रमुख उद्योगों जैसे इस्पात, वस्त्र, चीनी, कागज, सीमेण्ट, बिजली, काँच, साबुन, बाइसिकिल इत्यादि की जाँच-पड़ताल करने के बाद सरकार इस निश्चय पर पहुँची कि उद्योगों को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करने और उन्हें विकासोन्मुख रखने के लिए कोई ठोस कदम उठाया जाना चाहिए। इस जाँच-पड़ताल से उद्योगों के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त हुई, उसके आंकड़े इस प्रकार हैं।

	१९४९	१९५०
कारखानों की सख्या	६३००	६३२३
लगी पूँजी	२२४ करोड़	२३५ करोड़
रोजगार पर लगे व्यक्ति	१७ क० ८० लाख	१६ क० २० लाख
उत्पादन-व्यय	७०४ करोड़	७१८ करोड़
उत्पादन-मूल्य	९:४ करोड़	९८९ करोड़

—इण्डिन इयर बुक १९५५ से उद्धृत

इनमें से कुछ उद्योग ऐसे थे जो स्थायी और टिकाऊ वस्तुओं का निर्माण करते थे, जैसे इस्पात, सिलाई की मशीनें, बिजली का सामान, प्लाईवुड, सीमेण्ट

इत्यादि। अन्य उद्योग अस्थायी तौर पर और कम टिकाऊ वस्तुओं का निर्माण करते थे जैसे दैनिक उपयोग की छोटी-मोटी वस्तुएँ—वस्त्र इत्यादि। इस प्रकार हम समस्त उद्योगों का श्रेणी विभाजन १९५० के आंकड़ों के अनुसार कुछ इस प्रकार कर सकते हैं—

	स्थायी वस्तुओं के उद्योग	अस्थायी वस्तुओं के उद्योग
१. कारखानों की संख्या	२३११	४.१२
२. पूंजी (करोड़ों रु० में)	७२	१४३.८
३. कर्मचारियों की संख्या (लाखों रु० में)	३.१५	१२.१५
४. मजदूरी इत्यादि पर व्यय (करोड़ों रु०में)	३९.३	१२३.०
५. वस्तुओं की खपत का मूल्य (क० रु० में)	१०२.३	६१६.६
६. उत्पादन-मूल्य (करोड़ों रु० में)	१६७.८	

—इण्डियन इयर बुक १९५२ से उद्धृत

सरकार की औद्योगिक नीति

औद्योगिक विकास के सभी पहलुओं पर काफी गम्भीर विचार-विमर्श करने के उपरान्त भारत सरकार ने ६ अप्रैल, १९४८ का उक्त महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव उपस्थित किया था। इस घोषणा की सर्वाधिक और सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि सरकार ने यह निर्णय कर लिया कि शस्त्रास्त्र सम्बन्धी उद्योगों एवं अणुशक्ति के विकास-कार्यों पर पूरी तरह उसका नियन्त्रण रहे और उनके विकास का पूरा उत्तर-दायित्व वह स्वयं सम्भाले।

महत्त्वपूर्ण उद्योगों का राष्ट्रीयकरण

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि सरकार ने कोयला, इस्पात, हवाई जहाज, जहाज, रेल, टेलीफोन, टेलीग्राफ, इत्यादि महत्त्वपूर्ण उद्योगों के क्षेत्रों में नए कारखाने स्थापित करने और उनका संचालन करने का भार भी ग्रहण कर लिया। इस समय तक इन उद्योगों से सम्बन्धित जो कारखाने थे, उन्हें अपनी स्थिति में सुधार करने के लिए १० वर्ष का समय दिया गया और यह निर्णय किया गया कि दस वर्ष के उपरान्त

उनकी स्थिति की पुनः जाँच-पड़ताल की जाएगी और उस जाँच-पड़ताल के परिणामों को देखकर ही इस सम्बन्ध में कोई अन्तिम निर्णय किया जाएगा। विद्युत् उत्पादन और वितरण की व्यवस्था का कार्य भी सरकार ने अपने हाथों में रखने का फैसला किया।

गैर-सरकारी उद्योगों को आश्वासन

सरकार ने यह घोषणा की वह छोटे उद्योगों और कुछ बड़े उद्योगों में ताल-मेल स्थापित करने के लिए प्रयत्न करेगी, ताकि बड़े उद्योगों के विकास के साथ उनसे अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित सहकारी उद्योगों का भी उचित ढंग से विकास हो सके। १९४८ में घोषित नीति के फलस्वरूप भारतीय पूंजीपतियों के हृदय में यह शंका उत्पन्न हो गई थी कि सरकार धीरे-धीरे सभी प्रमुख उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर देगी लेकिन बाद की घटनाओं ने इस आशंका को निर्मूल सिद्ध कर दिया। २१ अगस्त, १९४९ को प्रधान मन्त्री नेहरू ने यह स्पष्ट घोषणा कर दी कि यदि गैर सरकारी उद्योगों का सन्तोषकजनक ढंग से संचालन किया गया तो भारत सरकार उनका राष्ट्रीयकरण करने की नीति नहीं अपनाएगी। इसके बाद भी कई अवसरों पर तथा विषेषतौर पर संसद् में द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर हुए वाद-विवाद के दौरान उन्होंने यह बार-बार स्पष्ट किया कि देश के पूंजीपतियों और उद्योगपतियों को देश के औद्योगिक विकास में हाथ बटाने का पूरा-पूरा अवसर प्रदान किया जाएगा।

औद्योगिक विकास-कानून—१९५१

इन्हीं उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए संसद् ने औद्योगिक विकास कानून-१९५१ पास किया। यह कानून सर्वप्रथम ३७ उद्योगों पर लागू किया गया। इसके अन्तर्गत बड़े-बड़े उद्योगों के साथ-साथ छोटे-छोटे उद्योगों के विकास की समस्या को हल करने के लिए एक राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना की गई। उद्योगों के सम्बन्ध में आवश्यक कानून-कायदे बनाने के लिए एक राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् भी स्थापित की गई। इस कानून के अन्तर्गत यह व्यवस्था भी की गई कि पुराने कारखाने अपना रजिस्ट्रेशन कराएँ तथा नए कारखानों को लाइसेंस देने की प्रथा चालू की जाए। इस बात की भी व्यवस्था की गई कि यदि सरकार आवश्यकता समझे तो किसी भी कारखाने की स्थिति की पूरी तरह जाँच-पड़ताल करा सकती है और स्थिति में सुधार करने के लिए सम्बन्धित फर्म के विरुद्ध आवश्यक कार्यवाही भी कर सकती है। १९५२ में भारत सरकार के वाणिज्य मन्त्रालय तथा अन्य सम्बन्धित मंत्रालयों ने मिलकर एक समिति की स्थापना की। नवम्बर, १९५२ तक इस समिति को रजिस्ट्रेशन की २५६२ अर्जियाँ प्राप्त हुई थीं जिसमें से २२०९ अस्वीकृत कर दी गई थीं।

१९५३ में उक्त कानून के क्षेत्र को और अधिक विस्तृत कर दिया गया ताकि पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रस्तावित आर्थिक और औद्योगिक विकास में कोई बाधा न पड़े।

पूंजी की समस्या

परन्तु औद्योगिक विकास के मार्ग में सबसे बाधा पूंजी की कमी थी। इस समया को हल करने के लिए भारत सरकार ने १९५३-५४ में एक औद्योगिक विकास कार्पोरेशन की स्थापना की और विश्व बैंक से भी ऋण प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इसके पूर्व १९४९ में ही सरकार ने औद्योगिक वित्त कार्पोरेशन की भी स्थापना कर दी थी। केन्द्रीय औद्योगिक विकास कार्पोरेशन तथा क्षेत्रीय एवं प्रान्तीय विकास एजेन्सियों ने १९५४ तक विकास कार्यों के लिए जो पूंजी सुलभ की उसका विवरण इस प्रकार है--

	१९५१-५२ क और ख	१९५२-५३ क और ख	१९५३-५४ क और ख
१. औद्योगिक वित्त कार्पोरेशन (३० जून तक)	४४५.२५; १७८.३८	१४३.२५; २४६.७६	५२७.०५; २८१.८६
२. मद्रास औद्योगिक पूंजी कार्पोरेशन (३० जून तक)	५.४०; ५.४०	२४.८५; १६.५०	५१.४५; २२.२०
३. औद्योगिक ट्रस्ट फंड हैदराबाद	५१.९६; ४८.६९	५८.८१; ४८.०५	९.४२; १२.१
४. पंजाब वित्त कार्पोरेशन (३१ मार्च को समाप्त होने वाले वर्ष में)			
५. बम्बई वित्त कार्पोरेशन (३१ मार्च तक)			२५.०७; ८.८४ (ग) सहायता विचाराधीन

—प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

नोट—(क) ऋण जो स्वीकृत हुए;

(ख) पूंजी जो औद्योगिक कम्पनियों को सुलभ की गई;

(ग) सहायता विचाराधीन।

राष्ट्रीय औद्योगिक-विकास कार्पोरेशन की स्थापना

इसके अतिरिक्त २० अक्तूबर, १९५४ को सरकार ने एक करोड़ रुपये की पूंजी से राष्ट्रीय औद्योगिक विकास कार्पोरेशन नामक एक कम्पनी खड़ी की जिसका प्रमुख उद्देश्य आधारभूत उद्योगों के विकास में योग देना है। पाँच वर्षों के अन्दर भारत सरकार ने प्रत्यक्ष रूप से विभिन्न औद्योगिक विकास कार्यों पर ९४ करोड़ रुपये व्यय किए हैं। इसके अतिरिक्त ५५ करोड़ रुपये आधारभूत उद्योगों और यातायात साधनों के विकास पर खर्च हुए हैं। इसमें से ८३ करोड़ रु० तो उन उद्योगों के विकास पर खर्च हुए हैं, जिनमें भारत सरकार का सीधा सम्बन्ध है। भारत सरकार विदेशी कम्पनियों के साथ मिल कर तीन इस्पात कारखानों का निर्माण कर रही है और यदि तृतीय पंचवर्षीय योजना के आंकड़ों को विश्वसनीय और सम्भव मान लिया जाए तो तृतीय पंचवर्षीय योजना के समाप्त होते-होते भारत की गणना संसार के प्रमुख इस्पात-उत्पादक देशों में होने लगेगी। इसके अलावा जहाजरानी मशीन टूल उद्योग, इंजन निर्माण उद्योग, टेलीफोन उद्योग, खाद के कारखाने, रेल के डिब्बे तैयार करने के कारखाने और डी डी टी कारखाने स्थापित करने पर विशाल धनराशि व्यय की जा रही है। इनमें से दो कारखानों का उद्घाटन प्रधानमन्त्री श्री नेहरू कर चुके हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अनुसार निगम औद्योगिक विकास कार्यों पर लगभग ५७ करोड़ रुपये व्यय करेगा। यह आशा भी की जाती है कि इसी अवधि में गैर-सरकारी औद्योगिक संघटन विकास कार्यों पर लगभग २३३ करोड़ रुपये खर्च करेंगे। इसके अलावा विभिन्न राज्य सरकारें भी अपने यहाँ निम्न उद्योगों के विकास पर अच्छी खासी रकमें व्यय करेंगी।

१. इस्पात उद्योग.................... मैसर
२. सिमेंट उद्योग.................... उत्तर प्रदेश
३. कागज उद्योग.................... मध्य प्रदेश, हैदराबाद
४. सिल्क उद्योग.................... हैदराबाद
५. सूक्ष्म उपकरण.................... उत्तर प्रदेश
६. सुपर फास्फेट उद्योग.................... बिहार

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत औद्योगिक विकास पर हुआ व्यय

प्रथम पंचवर्षीय योजना में उद्योगों के विकास कार्यों पर ३२७ करोड़ रुपया खर्च करने का निश्चय किया गया था, जबकि योजना अवधि के अन्तिम वर्ष तक इस कार्य पर कुल २९३ करोड़ रुपया ही व्यय किया जा सका। विभिन्न उद्योगों पर यह धनराशि जिस अनुपात में व्यय की गई है, उसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

खनिज उद्योग	प्रथम पंचवर्षीय योजना में निर्धारित व्यय करोड़ों रुपयों में	वास्तविक व्यय करोड़ों रुपयों में
१. धातु सम्बन्धी उद्योग	८५.०	६१.०
२. पैट्रोलियम उद्योग	६४.०	४५.०
३. रसायनिक उद्योग	२६.०	२७.०
४. इंजीनियरिंग उद्योग	५३.०	२०.०
५. वस्त्र उद्योग	९.०	५.०
६. चीनी उद्योग	०.१	८.०
७. रैयन वस्त्र उद्योग	१६.५	१७.५
८. सिमेंट उद्योग	१७.७	१२.०
९. कागज, गत्ता, अखबारी कागज	७.४	३६.६
१०. विद्युत शक्ति और सामग्री वितरण	१६ ०	१८.९
११. अन्य उद्योग	३२	
	३२७	२९३·०

—'भारत का औद्योगिक विकास' पुस्तक से उद्धृत

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रस्तावित व्यय

द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में सरकारी और गैर-सरकारी साधनों को मिलाकर उद्योगों के विकास पर १०९४ करोड़ रु० की रकम खर्च होगी। उसका ब्यौरा इस प्रकार है—

	प्रस्तावित व्यय करोड़ों रु० में	प्रतिशत
१. धातु सम्बन्धी उद्योग	५०२.५	२५.६
२. पैट्रोलियम उद्योग	१०.०	८.५
३. इंजीनियरिंग उद्योग	१५०.०	१३.७
४. रासायनिक उद्योग	१३२.०	१२.०
५ वस्त्र उद्योग	३६.३	३.३
६. रैयन वस्त्र उद्योग	२४.०	२.३
७. कागज, गत्ता, अखबारी कागज	५४.०	५.०
८. चीनी उद्योग	५१.०	४.७
९. सिमेंट उद्योग, विद्युत शक्ति उद्योग	९३.०	८.५
१०. अन्य	४१.५	३.८
	१०९४.३	१००.०

—'भारत औद्योगिक विकास' पुस्तक से उद्धृत

विदेशी पूंजी की आवश्यकता

देश के सभी साधनों को एकत्र करने के बाद भी इतनी पर्याप्त पूंजी सुलभ नहीं होती कि विकास सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। इसलिए यह आवश्यकता अनुभव की गई कि विदेशी पूंजीपतियों को देश के उद्योगों में पूंजी लगाने के लिए प्रेरित किया जाए। इसमें कोई लज्जा की बात नहीं, क्योंकि अमेरिका जैसे प्रगतिशील और विकसित देश को भी राष्ट्रीय निर्माण के प्रारम्भिक वर्षों में विदेशी पूंजी का सहारा लेना पड़ा था। सरकार ने राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि महत्त्व प्रदान करते हुए इस बात की घोषणा की है कि विदेशी पूंजी के साथ किसी प्रकार का भेद-भाव पूर्ण व्यवहार न किया जाएगा और उन्हें मुद्रा विनियम सम्बन्धी कठिनाइयों को हल करने के लिए हर प्रकार की सम्भव सहायता दी जाएगी। इसके अलावा यदि सरकार किसी उद्योग का राष्ट्रीयकरण करेगी, तो उस हालत में वह

विदेशी कम्पनी को उसका उचित मुआवजा देगी। संक्षेप में, सरकार विदेशी पूँजी को आकर्षित करने के लिए निरन्तर प्रयत्न कर रही है, यद्यपि इसमें अभी कोई उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

भारी मशीनों का कारखाना

अभी हाल में रूसी विशेषज्ञों के एक दल ने, जो भारत में भारी मशीनों के निर्माण की सम्भावनाओं पर विचार करने के लिए आया था, प्रधान मंत्री श्री नेहरू को इस प्रकार की मशीनों का एक कारखाना बनाने के बारे में अपनी रिपोर्ट दे दी है। यह अनुमान लगाया गया है कि इस कारखाने में ८० हजार टन वजन की मशीनें और दूसरी सामग्री प्रतिवर्ष बन सकेगी। यह कारखाना प्रति वर्ष लोहे और इस्पात के एक इतने बड़े कारखाने के लिए धातुशोधन की मशीनें और चीजें बना सकेगा, जिसमें १० लाख टन इस्पात प्रति वर्ष तैयार करने की क्षमता होगी। रिपोर्ट के अनुसार इस कारखाने को दूसरी तरह की बड़ी मशीनें और साज-सज्जा बनाने के काम में भी लगाया जा सकता है। यह कारखाना दो मंजिलों में बनेगा। पहली मंजिल पूरी होने पर उसमें लोहे और इस्पात के कारखाने में काम आने वाली ४५००० टन की भारी मशीनें बनने लगेंगी। यह सुझाव दिया गया है कि कारखाने को अच्छी तरह चलाने और खर्च में कमी करने के लिए यह कारखाना ढलाई और गढ़ाई के लिए बनाए जाने वाले कारखाने के साथ ही बनाया जाना चाहिए। इस कारखाने में अनुमानतः १० हजार से अधिक मजदूरों और अफसरों को काम मिल सकेगा। भारत सरकार रूसी विशेषज्ञों की इस रिपोर्ट पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रही है और यह आशा है कि वह रूस से सामान्य ब्याज पर उक्त कारखाने के लिए आवश्यक पूँजी प्राप्त करने में सफल रहेगी। इस कारखाने के निर्माण के फलस्वरूप भारी मशीनों के आयात की समस्या बहुत कुछ हल हो जाएगी और भारत को इस कार्य पर अत्यधिक आवश्यक विदेशी मुद्रा न खर्च करनी पड़ेगी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में हुई औद्योगिक प्रगति

संक्षेप में, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में हमें अनेकानक और भंयकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। हम साहसपूर्वक उनका सामना करते हुए अपने देश के औद्योगिक विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे हैं। पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि में हमने इस दिशा में जो उल्लेखनीय प्रगति की है उसकी कहानी निम्न आंकड़े स्वयं कहते हैं—

उद्योग	इकाई इकाई	वार्षिक उत्पादन क्षमता		वास्तविक उत्पादन	
		१९५०-५१	१९५५-५६	१९५०-५१	१९५५-५६
१. लोहा और इस्पात	हजार टनों में	१०१५	१३००	९७६	१३००
२. अल्यूमीनियम	टनों में	४०००	७५००	३६७७	४५००
३. सिमेंट	००० टनों में	३२८०	५१००	२६९२	४८००
४. रेयोन	१ लाख पौंड में	४	२८.१	०.७५	१६ ०
५. पेट्रोलियम	००० टनों में	...	३२००	...	२५००
६. कागज और पेपर बोर्ड	००० टनों में	१३७	२२०	११४	१८०
७. रेलवे : इंजन और डिब्बे					
(क) इंजन	संख्या	...	१७०	...	१७०
(ख) डिब्बे	....	८५०	१२००	४७९	९५०
(ग) माल डिब्बे	...	६०००	१४०००	१०६५	१२ ०००
८. वस्त्र उद्योग सम्बन्धी मशीनों का उद्योग	...	३९९६	६३०२	२१५४	४४७०
९. डिजेल इंजन	...	६३२०	२१,०००	५५४०	१०,०००
१०. मोटर	...	३००००	३५०००	१६५१९	२३०००
११. बाइसिकिल	००० में	१३०	५५०	१०१	५००
१२. भारी रासायिनिक पदार्थ	००० टनों में	२२३	४०४	१५५	२७५
१३. वस्त्र	१० लाख गजों मे	४७४४	४९२२	३७१८	५२००
१४. रासायनिक खाद	हजार टन में	२०२	६५४	१०१	४८०
१५. चीनी	हजार टन में	१५४०	१७५०	११२०	१६५०
१६. जूट की वस्तुएँ	हजार टन में	१२००	१२००	८९२	१०००

—इंडिया १९५६ से उद्धृत

विदेश व्यापार

भारत के विदेश व्यापार पर प्रकाश डाले बिना भारत के औद्योगिक और आर्थिक विकास की कहानी अधूरी रह जाएगी। वर्तमान परिस्थितियों में किसी देश को समृद्धशाली बनाने के लिए केवल औद्योगिक विकास की ही आवश्यकता नहीं, बल्कि यह भी परमावश्यक है कि वह विदेशों के साथ अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करे और अपनी वस्तुओं की खपत के लिए विदेशों में यथेष्ठ मंडियाँ हासिल करे। यदि हम इतिहास पर दृष्टिपात करें, तो हमें विदित होगा कि प्राचीन भारत की समृद्धि और अतुल वैभव का यही एक प्रमुख कारण था। भारत में निर्मित वस्तुएँ द्वीप-द्वीपान्तरों में जाती थीं और उनके बदले अपार धनराशि विदेशों से खिंच कर भारत भूमि में आती थी।

एक कृषि-प्रधान देश

३० वर्ष पूर्व तक भारत मुख्यतया एक कृषि-प्रधान देश था। विदेशों से इसका व्यापार मुख्यतः कच्चे माल के निर्यात और उसके बदले में नागरिकों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपभोग्य वस्तुओं के आयात तक ही सीमित था। लेकिन औद्योगीकरण के फलस्वरूप में जैसे-जैसे भारत के औद्योगिक स्वरूप में परिवर्तन होता गया, भारत के विदेशी व्यापार के स्वरूप में भी वैसे-वैसे परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। युद्धोत्तरकाल और विशेषतः विभाजन के उपरान्त भारत के विदेशी व्यापार में यह प्रवृत्ति और भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगी। १९२०-२१ में भारत के आयात में तैयार वस्तुओं का अनुपात ८४ प्रतिशत था तथा निर्यात में ४५ प्रतिशत से अधिक विभिन्न प्रकार की कच्ची सामग्री थी। १९२०-२१ के बाद के वर्षों में भी स्थिति में कोई अनुकूल परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार १९२९-३० में भारत के आयात में कच्चे माल का अनुपात केवल ९.३ प्रतिशत था जबकि निर्यात में कच्चे माल का अनुपात ४५ प्रतिशत से बढ़कर ४९.५ प्रतिशत तक पहुँच गया। लेकिन इसके उपरान्त स्थिति में शनैः शनैः सुधार होने लगा। १९५०-५१ के आंकड़ों के अनुसार भारत के निर्यात में कच्चे माल का अनुपात घट कर केवल ३५.१ प्रतिशत रह गया। यह परिवर्तन प्रत्यक्षतः भारत सरकार द्वारा औद्योगीकरण की दिशा में उठाए गए कदमों का परिणाम था।

यद्यपि इस परिवर्तन के फलस्वरूप विदेश व्यापार के सन्तुलन में कोई अन्तर नहीं आया तथापि भविष्य के लिए यह एक शुभ लक्षण था। युद्धोत्तरकाल में भारत और जापान का व्यापार प्रायः बन्द हो गया था। और एशिया की अधिकांश मंडियाँ जापान के हाथ से निकल गई थीं। भारत के वस्त्र उद्योग के विकास के लिए यह एक स्वर्ण अवसर सिद्ध हुआ। इस बीच में अमेरिका के साथ भारत के व्यापार में भी बहुत अधिक वृद्धि हुई, यद्यपि व्यापार-सन्तुलन फिर भी भारत के प्रतिकूल ही रहा।

आयात-निर्यात व्यापार की स्थिति

इस परिवर्तन के फलस्वरूप १९५१-५२ में भारत के निर्यात में तैयार वस्तुओं का प्रतिशत २९.६ से बढ़ कर ५५ तक पहुँच गया। १९४८ से १९५५ तक भारत के विदेशी व्यापार के आँकड़े इस प्रकार हैं—

लाख रुपयों में

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार सन्तुलन
१९४९-५०	५०६,०२	६२४,९१	—११८,८९
५०-५१	६०१,३५	६२३,३६	— २२,०१
५१-५२	७३२,९४	९५४,५९	—२२१,६५
५२-५३	५७७,६५	६६४,०४	— ८६,३९
५३-५४	५३०,६२	५८०,६७	— ५९,१३
५४-५५	५८३.०६	६३६,११	— ५३,०८

—जर्नल ऑफ इंडस्ट्री एण्ड ट्रेड—१९५५ से उद्धृत

निम्न आँकड़ों से १९५२-५३ में विभिन्न देशों के साथ भारत के विदेशी व्यापार की स्थिति और भी स्पष्ट हो जाएगी।

मूल्य लाख रुपयों में

देश	आयात	निर्यात	व्यापार सन्तुलन
इंग्लैण्ड	१३८,५८	१२१,७६	—१६,२९
पाकिस्तान	६५,१९	१३,६७	—५१,५२
श्रीलंका	४,२९	१९,२८	—१६,७१
कनाडा	२९,३१	१२,८२	—१६,७१
आस्ट्रेलिया	१२,७३	१६,९५	— ४,२२
अमेरिका	१८१,३७	१११,०४	—८०,३३
पं० जर्मनी	२२,२८	१२,३५	— ६,०७
जापान	१५,८२	३१,०७	+१५,२५
चीन	१३,३	३९	+१५,९७
बर्मा	२६,४३	२२,०३	— ४,४०

—जर्नल ऑफ इण्डस्ट्री एण्ड ट्रेड से उद्धृत

व्यापार सन्तुलन भारत के प्रतिकूल

उपरोक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि अधिकांश देशों के साथ विदेशी व्यापार का सन्तुलन अभी तक भारत के पक्ष में नहीं है। अतएव यह आवश्यक हो गया है कि भारत अपने निर्यात व्यापार में वृद्धि करे और निर्यात एवं आयात सम्बन्धी अपनी नीति में आवश्यक संशोधन करे।

निर्यात का लक्ष्य

प्रथम पंचवर्षीय योजना में निर्यात में ३० प्रतिशत वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था और यह भी निश्चय किया गया था कि जूट और जूट से बनी वस्तुएँ, मैंगनीज, कच्चा लोहा, तेल, कोयला, काली मिर्च, तम्बाकू, ऊन और ऊन से बनी वस्तुओं के अलावा सिलाई की मशीनें, कपड़ा बुनने की मशीनें, बिजली के पंखे, तथा अन्य प्रकार का बिजली का सामान, बैटरियाँ, बाइसिकलें, साबुन, रसायन, छोटे-छोटे मशीनी पुर्जे, सिमेंट इत्यादि वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन दिया जाए तथा विदेशों से आने वाली कच्ची औद्योगिक सामग्री पर तटकर घटा दिया जाए। साथ ही देश में आधारभूत और भारी उद्योगों के विकास के लिए बड़ी-बड़ी और भारी मशीनों के आयात को भी प्राथमिकता देने का निर्णय किया गया। भारत सरकार ने इस बात के लिए भी प्रयत्न किया कि मुद्रा सम्बन्धी कठिनाई को हल करने के लिए डालर क्षेत्रों से वही सामग्री आयात की जाए जो स्टर्लिंग-मुद्रा वाले देशों में सुलभ न हो। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत १४०० से १६०० करोड़ रुपये मूल्य तक की पूँजीगत वस्तुएँ विदेशों से आयात की जाएँगी। अतएव मुद्रा सम्बन्धी कठिनाई एक प्रमुख समस्या बनी रहेगी।

नीति में परिवर्तन

अतएव भारत सरकार ने मुद्रा सम्बन्धी कठिनाइयों, मुद्रा स्फीति की सम्भावनाओं, स्टर्लिंग कोष की स्थिति तथा अन्य आर्थिक कारणों को दृष्टि में रखते हुए विदेशी व्यापार सम्बन्धी अपनी नीति में काफी परिवर्तन और संशोधन कर लिए हैं। सर्वप्रथम तो सरकार ने यह निर्णय किया कि ४० करोड़ से अधिक मूल्य की सामग्री विदेशों से आयात न की जाए। साथ ही उन वस्तुओं के आयात पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया जो देश के अन्दर सुलभ हैं। औद्योगिक कच्चे माल और आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक वस्तुओं के आयात पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया।

दिसम्बर, १९५२ में भारत सरकार ने अपनी विदेशी व्यापार नीति में पुन:

कुछ संशोधन किए, जिनके अनुसार निम्न कदम उठाए गए : डालर मुद्रा देशों से आने वाले माल में कमी, पर्याप्त मात्रा में संचित वस्तुओं के आयात-कोटा में कमी; स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन देने के लिए छोटी-छोटी वस्तुओं का सीमित परिमाण में आयात; जिन वस्तुओं का उत्पादन देश में हो सकता है, उनके आयात-कोटा में कमी—उदाहरण के लिए बोल्ट, नट, चमड़े के तस्में, कार्ड बोर्ड इत्यादि।

मार्च, १९५३ में पुनः इस नीति में संशोधन किया गया। इस बार आधारभूत उद्योगों से सम्बन्धित भारी मशीनों और औद्योगिक कच्चे माल के आयात को प्रोत्साहन दिया गया। देश में चीनी की कमी की समस्या को हल करने के लिए विदेशों से चीनी आयात करने का निर्णय भी किया गया। कुछ वस्तुओं के आयात को प्रोत्साहन न देने के उद्देश्य से तटकरों में वृद्धि भी की गई तथा विदेशी व्यापार सम्बन्धी समस्याओं का विस्तार से अध्ययन करने के लिए व्यापार नियन्त्रण आयोग की स्थापना की गई।

रिजर्व बैंक की रिपोर्ट

कुछ समय पूर्व रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने एक विशेष रिपोर्ट प्रकाशित की है जिसमें १९४८-४९ से लेकर १९५६ तक भारत के लेन-देन की स्थिति का विवरण दिया है। इस विवरण से पता चलता है कि मार्च, १९५६ को समाप्त होने वाले ८ वर्षों में भारत को विदेशी व्यापार के क्षेत्र में कुल मिलाकर ८०२.७ करोड़ रुपये का घाटा उठाना पड़ा है। बैंक की इस रिपोर्ट में इन आठ वर्षों को तीन भागों में विभाजित किया गया है, जिसका विवरण इस प्रकार है—

१. प्रथम काल—१९४२-४९ से १९५१-५२ तक
   मुद्रा स्फीति और वस्तुओं की कमी का काल
   =कुल घाटा=६१० करोड़ रु०

२. द्वितीय काल—१९५१-५२ से लेकर १९५३-५४ तक
   (आर्थिक मन्दी का समय)
   =कुल घाटा=८३.२ करोड़ रु०

३. तृतीय काल—१९५४-५५ से लेकर १९५५-५६ तक
   (कारोबार में सामान्य सुधार का समय)
   =कुल घाटा=१०९.५ करोड़ रु०

=कुल घाटा=८०२.७ करोड़ रु०

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि काल में हर वर्ष औसतन १०३ करोड़ रुपया का घाटा हुआ। यह अनुमान है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में विदेश व्यापार के क्षेत्र में यह घाटा बढ़कर २७५ करोड़ रुपये प्रति वर्ष तक पहुँच जाएगा।

रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि भारत को विदेशी व्यापार से जो आय होती थी उसमें इन आठ वर्षों में ७२०.७ करोड़ रुपये की कमी हो गई है। इसके साथ ही उसे विदेशों को पहले की तुलना में २२ करोड़ अधिक रुपयों का भुगतान करना पड़ा। रिपोर्ट में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि इन आठ वर्षों में भारत को सरकारी तौर पर १२४४ करोड़ रुपयों का ऋण मिला, जिसमें से १२१ करोड़ रुपये प्रथम पंचवर्षीय योजना से सम्बन्धित विकास-कार्यों पर व्यय कर दिए गए। १९४९-५२ के प्रथम चार वर्षों में डालर मुद्रा वाले क्षेत्रों के साथ भारत के निर्यात-व्यापार का प्रतिशत २३.३ से घट कर २२.७ रह गया। १९५४-५५ और १९५५-५६ के मध्य में इसमें और भी अधिक कमी हो गई। डालर-मुद्रा वाले क्षेत्रों के साथ भारत के आयात-व्यापार का प्रतिशत २४.८ से घट कर केवल २४ रह गया। आगे आने वाले वर्षों में इसमें और भी अधिक कमी हुई और १९५५-५६ में यह प्रतिशत घट कर केवल १६.९ रह गया। लेकिन इसके विपरीत गैर डालर-मुद्रा वाले क्षेत्रों के साथ भारत का आयात ११ प्रतिशत से बढ़कर २०.२ प्रतिशत तक पहुँच गया। निर्यात व्यापार में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। स्टर्लिंग-मुद्रा वाले क्षेत्रों के साथ भारत के विदेशी व्यापार में पहले वर्षों में कुछ कमी हुई परन्तु बाद में स्थिति में कुछ सुधार हो गया।

यह अनुमान लगाया गया है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में भारत को विदेशी व्यापार में कुल ११२० करोड़ रुपये का घाटा उठाना पड़ेगा, जबकि प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में यह घाटा केवल १२५ करोड़ रुपये था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में विदेशों का भुगतान करने के लिए भारत को विभिन्न स्रोतों से लगभग ४०० करोड़ रुपये मूल्य की विदेशी मुद्रा सुलभ हो सकेगी। यह मान लेने पर भी कि इस अवधि में भारतीय पूँजीपति विभिन्न विकास कार्यों पर लगभग १०० करोड़ रुपया लगाएँगे, घाटे की पूर्ति नहीं होती। विकास कार्यों के लिए भारत को विदेशों से काफी अधिक परिमाण में मशीनें इत्यादि मंगानी पड़ेंगी। इसलिए भारत के निर्यात व्यापार में वृद्धि करना और भी आवश्यक प्रतीत होता है। निर्यात में वृद्धि करके ही भारत अपने विकास कार्यों के लिए अत्यधिक आवश्यक विदेशी मुद्रा प्राप्त कर सकता है, क्योंकि बहुत-सी मशीनें, पुर्जे और

सामग्री ऐसी हैं, जो भारत को विदेशों से मँगानी ही पड़ेंगी। निकट भविष्य में भी इन वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगाना सम्भव नहीं हो सकेगा।

व्यापारिक समझौते

इसके अलावा हमारे विदेशी व्यापार के लिए कुछ अन्य दिशाएँ भी खुल गईं। इस बीच में भारत सरकार ने पाकिस्तान, आस्ट्रिया, स्कैंडनेविया देशों, पश्चिम जर्मनी, हंगरी, इंडोनेशिया, चीन और रूस के साथ कई व्यापारिक समझौते किए। रूस और चीन के साथ भारत के नवीन व्यापारिक सम्बन्ध उल्लेखनीय हैं। भारत इन देशों को जूट, काफी, तम्बाकू, कच्चा लोहा, लाख, मिर्च-मसाले, चमड़ा, तेल इत्यादि भेजता है और इसके बदले विभिन्न प्रकार की मशीनें, रसायन, पैट्रोलियम जनित वस्तुएँ मँगाता है। १९५५ में भारत ने रूस से ४८ लाख रुपए मूल्य की वस्तुएँ आयात कीं तथा ८४ लाख रुपए मूल्य की वस्तुएँ वहाँ भेजीं। १९५४ में भारत ने रूस को २ करोड़ ५२ लाख रुपये का माल निर्यात किया था।

१९५४ में भारत ने कुल ५१८ करोड़ रुपये का माल निर्यात किया था। माल के वज़न की दृष्टि से यद्यपि १९५४-५५ का निर्यात (४७९० लाख पौंड) १९५३ (४७१० लाख पौंड) से कम था, परन्तु मूल्यों में वृद्धि हो जाने के कारण १९५३ की तुलना में १९५४ का निर्यात व्यापार घाटे वाला नहीं रहा।

१९५७ में भारत के विदेशी व्यापार में पिछले वर्ष की अपेक्षा बहुत अधिक अर्थात् २० प्रतिशत वृद्धि हुई। यह वृद्धि अधिकांश में पूँजीगत वस्तुओं और आवश्यक कच्चे माल के आयात में वृद्धि होने के कारण हुई है। वर्ष के पहले १० महीनों अर्थात् जनवरी से अक्तूबर, १९५७ तक आयात अपने चरम स्तर (९३४ करोड़ रुपये) पर पहुँच गया, जबकि १९५६ में जनवरी से अक्तूबर की अवधि में केवल ६९८ करोड़ रुपये मूल्य की सामग्री का आयात हुआ था। जनवरी, १९५७ से अक्तूबर, १९५७ की अवधि में भी निर्यात अच्छा हुआ जिसका कुल योग लगभग ५११ करोड़ रुपया रहा। १९५६ की इसी अवधि में ४८४ करोड़ रुपये मूल्य का माल बिदेशों को निर्यात किया गया। आयात और निर्यात में पिछले वर्ष की तुलना में वृद्धि होने के बावजूद १९५७ में विदेशी-व्यापार का सन्तुलन भारत के प्रतिकूल रहा। १९५७ में भी ब्रिटेन के साथ ही सबसे अधिक व्यापार हुआ, लेकिन इसके अलावा अमेरिका और पश्चिमी जर्मनी के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। चीन, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, रूमानिया, यूगोस्लाविया इत्यादि देशों को हुए, निर्यात में भी थोड़ी वृद्धि हुई है। विभिन्न देशों से आयात निर्यात के सन्तुलन की स्थिति निम्न अंकों से भली प्रकार स्पष्ट हो जाएगी—

संख्या करोड़ों रुपयों में

	आयात	निर्यात	व्यापारिक सन्तुलन
इंग्लैण्ड	२३८.५०	१६१.०२	— ७७.४८
अमेरिका	१७०.३२	१४२.६८	— २७.६४
पश्चिमी जर्मनी	१२२.८२	१६.२२	—१६०.६०
जापान	५४.४२	२८.३४	— २७.०८
ईरान	५५.४०	६.१५	— ४६.२५
आस्ट्रेलिया	१६.४१	२४.७३	+ ८.३२
रूस	२२.६८	१७.४८	— ५.२०
फ्रांस	२८.६६	१०.२०	— १८.४६
इटला	३०.३६	७.३०	— २३.०६
वेल्जियम	२१.६४	६.५७	— १५.३७
कनाडा	१३.५८	१३.६२	+ ०.३४
बर्मा	१३.१६	१३.३०	+ ०.११

वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि हुई है, परन्त् इससे हमें विशेष आशावादी नहीं होना चाहिए। सरकार और उद्योगपतियों के भगीरथ प्रयत्नों के बावजूद सूती वस्त्र और जूट का माल आज भी हमारे निर्यात की मुख्य वस्तुएँ हैं। जहाँ तक सूती माल का सम्बन्ध है, जापान शीघ्रतापूर्वक अपनी खोई हुई मण्डियाँ प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम कर रहा है। निकट भविष्य में वह इस क्षेत्र में भारत का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी बन जाएगा। १६५४-५५ में निर्यात व्यापार में जो वृद्धि हुई, उसका एक मुख्य कारण चाय के निर्यात में हुई अप्रत्याशित वृद्धि थी। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि करें और पश्चिम एशिया एवं सुदूरपूर्व तथा दक्षिण एशिया के अन्य देशों में अपनी वस्तुओं के लिए मण्डियाँ प्राप्त करने के लिए अधिकाधिक प्रयत्न करें। हमें अपनी वस्तुओं की कोटि की ओर भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। घटिया किस्म की वस्तुएँ सप्लाई करने से हमारी साख घट जाएगी तथा हमारी मण्डियाँ अन्य देशों के हाथों में चली जाएँगी। आशा है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इन सभी बातों पर पर्यात ध्यान दिया जाएगा।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में संशोधन

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रारम्भ में विभिन्न विकास कार्यों पर ४८ अरब रुपया खर्च करने का निश्चय किया गया था, जिसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

करोड़ों रुपयों में

कृषि और सामुदायिक विकास	५६८
सिंचाई और बिजली	९१३
ग्रामीण तथा छोटे उद्योग	२००
उद्योग तथा खनिज	६९०
यातायात तथा संचार साधन	१३८५
सामाजिक सुविधाएँ	९४५
विभिन्न	९९
	४८००

लेकिन प्रथम वर्ष में ही द्वितीय पंचवर्षीय योजना को जिन कठिनाइयों से गुजरना पड़ा, उन्होंने योजना कमिशन को सम्पूर्ण योजना पर पुनः विचार करने और उसमें आवश्यक संशोधन करने के लिए विवश कर दिया। राष्ट्रीय विकास समिति ने स्थिति पर पूरी गम्भीरता के साथ विचार कर यह अनुभव किया कि ४८ अरब की मूल धन राशि जुटा पाना सरकार के लिए अत्यधिक कठिन हो जाएगा। अतएव उसने योजना को दो भागों में बाँट देने की सिफरिश की। 'क' श्रेणी में सभी आवश्यक और अनिवार्य विकास योजनाओं को शामिल किया गया और इन पर ४५ अरब रुपया व्यय करने का निर्णय किया गया। शेष योजनाओं को 'ख' श्रेणी में शामिल कर यह तय किया गया कि अतिरिक्त साधन सुलभ होने पर ३०० करोड़ रुपया इन्हें क्रियान्वित करने पर खर्च किया जाए।

सिर्फ साधनों की कमी की वजह से ही नहीं, बल्कि बजट में निश्चित की गई रकम खर्च न कर सकने के कारण भी आखीर में चल कर योजना का आकार छोटा दिखाई पड़ सकता है। दूसरी पंचवर्षीय योजना के पहले २ वर्षों में १४९६ करोड़ रुपए खर्च होने का अनुमान है। इस प्रकार ५ में से ३ वर्षों के भीतर कुल खर्च की राशि २४५६ करोड़ रुपया होती है। योजना को लागू करना सिर्फ इस बात पर निर्भर नहीं होता कि आवश्यक साधन सुलभ हों। साधनों की उपलब्धि के साथ-साथ यह भी परमावश्यक है कि सरकार प्राप्त धनराशि और साधनों का उपयोग करने में समर्थ हो।

घाटे की वित्त व्यवस्था

दूसरी योजना के पहले २ वर्षों में लगभग ७०२ करोड़ रुपए की घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लेना पड़ा। निश्चय ही यह रकम शुरू के अनुमान (६०० करोड़ रुपए) से काफी अधिक है। १९५८-५९ में बजट में घाटे की वित्त-व्यवस्था की धनराशि

४०० करोड़ रुपया निश्चित की गई थी। अभी हाल में वित्त मन्त्री ने यह स्पष्ट भी कर दिया था कि घाटे की वित्त व्यवस्था को ९०० करोड़ रुपए से कम करना सम्भव न होगा। यह भी सम्भावना है कि यह धनराशि इससे भी अधिक बढ़ जाए। इस सन्दर्भ में हमें मुद्रा स्फीति के संकट की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में पूरी तरह विचार कर लेना चाहिए और ऐसी सभी सावधानी बरतनी चाहिएं जिससे यह संकट उत्पन्न न होने पावे।

विदेशी साधनों के मामले में देश की स्थिति इस समय काफ़ी आशाजनक हो गई है, और पिछले वर्ष विदेशों से प्राप्त १०५ करोड़ रुपयों की तुलना में १९५८-५९ में हमें ३२५ करोड़ रुपए की विदेशी सहायता मिलने की सम्भावना है। योजना की पूरी अवधि में ११०० करोड़ रुपयों से अधिक की विदेशी सहायता मिलनी चाहिए, यद्यपि योजना में निर्धारित लक्ष्य केवल ८०० करोड़ रुपया है। पहले तीन वर्षों में इस स्रोत से ४८३ करोड़ रुपयों की रकम प्राप्त हो चुकी है। लेकिन इसके साथ ही यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि योजना के अन्तिम वर्ष में ऋणों और व्याज के भुगतान के रूप में सरकार को ८० करोड़ रुपया देना पड़ेगा।

इन सब से यह निष्कर्ष निकलता है कि अन्तिम दो वर्षों में २३४४ करोड़ रुपए के वित्तीय साधनों की आवश्यकता पड़ेगी जिसमें से अधिक से अधिक १८०४ करोड़ रुपया ही उपलब्ध हो सकेगा। योजना कमिशन के स्मृति-पत्र में इस कमी की पूर्ति के लिए घाटे की अर्थ-व्यवस्था या विदेशी सहायता पर निर्भर न रहने पर विशेष जोर दिया गया है। अतएव केवल यही विकल्प शेष रह जाता है कि आन्तरिक साधनों के द्वारा ही यह कमी पूरी की जाए।

विकास की मुख्य मदों के लिए वित्तीय व्यवस्था

करोड़ों रुपयों में

	मूल निश्चित रकम	४८ अरब के व्यय के आधार पर संशोधित रकम	४५ अरब के व्यय के आधार पर निश्चित रकम
कृषि और सामुदायिक विकास	५६८	५६८	५१०
सिंचाई तथा बिजली	९१३	८६०	८२०
कुटीर तथा छोटे उद्योग	२००	२००	१६०
उद्योग तथा खनिज	६९०	८८०	७९०
यातायात तथा संचार साधन	१३८५	१३४५	१३४०
सामाजिक सुविधाएँ	९४५	८६३	८१०
विभिन्न	९९	८४	७०
	४८००	४८००	४५००

तृतीय पंचवर्षीय योजना और औद्योगिक विकास

भारत सरकार ने कुछ समय पूर्व आधारभूत उद्योगों के विकास के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए आमन्त्रित ब्रिटिश और रूसी प्रतिनिधिमंडलों की जानकारी के लिए तृतीय पंचवर्षीय योजना का संक्षिप्त विवरण सुलभ किया था। यद्यपि तृतीय पंचवर्षीय योजना में निर्धारित उत्पादन-लक्ष्य अभी केवल परीक्षणात्मक स्थिति में हैं, फिर भी योजना अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी है। योजना के वर्तमान लक्ष्यों के अनुसार केवल एक क्षेत्र के विकास कार्यों पर २५०० करोड़ रुपए खर्च किए जाएँगे। दोनों प्रतिनिधिमंडलों को तृतीय योजना की अवधि के लिए निर्धारित लक्ष्यों के आंकड़े भी सुलभ किए गए।

योजना के अनुसार सबसे अधिक वृद्धि इस्पात के उत्पादन में की जाएगी। यह आशा की जाती है कि इस अवधि में इस्पात और लोहे के उत्पादन में १ करोड़ ७० लाख टन की वृद्धि की जाएगी। यदि यह लक्ष्य पूरा कर लिया गया तो भारत की गणना संसार के प्रमुख इस्पात उत्पादक देशों में होने लगेगी तथा इससे चौथी पंच-वर्षीय योजना के अन्तगत देश औद्योगिक विकास के पथ पर तीव्र गति से अग्रसर हो सकेगा।

इसके अलावा सिमेंट के लिए ३ करोड़ २० लाख टन तथा रासायनिक खाद के लिए १० लाख टन का उत्पादन-लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

१९६१ तक में देश की तेल साफ करने की क्षमता में दुगनी वृद्धि हो जाएगी। इस समय प्रतिवर्ष ४० लाख टन तेल साफ किया जाता है। इसी प्रकार कागज, और गन्ने के उत्पादन में भी दुगन्नी वृद्धि हो जाएगी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक कागज का उत्पादन प्रतिवर्ष ४ लाख ५० हजार टन तक पहुँच जाएगा। अखबारी कागज का उत्पादन १ लाख ५० हजार टन तक तथा चीनी का उत्पादन ३० लाख टन तक पहुँच जाएगा।

१९६१ तक भारत में ८ अरब ४० करोड़ गज सूती कपड़ा तैयार होने लगेगा। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रति वर्ष १२ अरब गज कपड़ा तैयार करने का लक्ष्य निर्धारित किया जाएगा।

इंजिनियरिंग और खनिज उद्योगों के विकास पर भी समुचित ध्यान दिया जाएगा और इसके विकास पर लगभग १३७ करोड़ रुपए खर्च किए जाएँगे। इसके अलावा जहाजों के निर्माण और नए विद्युतगृहों की स्थापना पर २०० करोड़ रुपए खर्च करने का विचार है। देश की भावी आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए ही ये उत्पादन-लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। इन उत्पादन लक्ष्यों पर एक दृष्टि डाल लेने से यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाएगी।

उद्योग	इकाई	५०-५१	५५-५६	६०-६१
१. इस्पात	१० लाख टन में	१.१	१.३	४.३
२. अल्यूमीनियम	००० टन में	२.७	७.५	२५.०
३. मोटर		१६५००	२५०००	५७०००
४. रेल-इंजन		३	१७५	४००
५. सिमेंट	१० लाख टन में	२.७	४.३	१३
६. वस्त्र-उद्योग	,, ,, गज में	४६१८	६८५०	८५००
७. चीनी	,, ,, टन में	१.१	१.७	२.३
८. बाइसिकिल	संख्या हजार में	१०१	५५०	१०००
९. कागज और गत्ता	००० टन में	११४	२००	३५०
१०. सिलाई की मशीनें	संख्या हजार में	३३	११०	२२०

—द्वितीय पंचवर्षीय योजना से उद्धृत

१९६१-६२ तक भारत को कुल मिलाकर २३३ करोड़ रुपए मूल्य के यन्त्रों और उपकरणों की आवश्यकता होगी और तृतीय योजना की समाप्ति के बाद भारत को हर वर्ष ३५० करोड़ रुपए मूल्य के यन्त्रों और उपकरणों की आवश्यकता पड़ेगी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में वस्त्र उद्योग, चीनी उद्योग, जूट उद्योग, कागज उद्योग, रासायनिक उद्योग तथा उपभोक्ताओं के उपयोग की वस्तुओं से सम्बन्धित अन्य उद्योगों के लिए आवश्यक मशीनों और यन्त्रों का निर्माण करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा। लेकिन तृतीय पंचवर्षीय योजना में इस्पात उद्योग, बिजली के भारी सामान तैयार करने वाले उद्योगों, जहाज-निर्माण और अन्य प्रकार के प्रमुख आधारभूत उद्योगों से सम्बन्धित भारी मशीनों के निर्माण की ओर ध्यान केन्द्रित करने के साथ-साथ कृषि उत्पादन बढ़ाने पर भी जोर दिया जाएगा। यह अनुमान लगाया गया है कि १० लाख टन की उत्पादन-क्षमता वाले इस्पात के कारखाने के निर्माण के लिए विशाल संख्या में लोहे के ट्यूब और नलों, ८० हजार रिफ्रेक्टरों, १२०००० ट्रांसफार्मरों, १००० मोटरों तथा न जाने कितने अन्य उपकरणों की आवश्यकता पड़ेगी।

इसमें सन्देह नहीं कि इस विशाल कार्यक्रम का संचालन करने के लिए टैक्निकल प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों की अत्यधिक आवश्यकता होगी तथा विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करनी होगी और विदेशी टैक्निशियनों की भी पूरी सहायता लेनी पड़ेगी। यह आशा की जाती है कि इस कार्यक्रम के फलस्वरूप भारत विदेशों से

मशीनों का जो आयात करता है उसमें कमी हो जाएगी। यह अनुमान है कि १९६०-६१ तक यह आयात ४० प्रतिशत और तृतीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक ७५ प्रतिशत घट जाएगा। दूसरे शब्दों में १९६०-६१ में जिस इस्पात के कारखाने की स्थापना पर हमें ३० करोड़ रुपए खर्च करने पड़ेंगे वह तृतीय पंचवर्षीय योजना के पूरे होने पर केवल १२ करोड़ रुपए की लागत से खड़ा किया जा सकेगा।

हम जिस गति से औद्योगिक विकास के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं वह अत्यधिक उत्साहवर्धक है। यदि हमने इसी उत्साह के साथ प्रयत्न जारी रखे तो पाँच पंचवर्षीय योजनाओं के बाद हमारी अर्थ-व्यवस्था की स्थिति क्या होगी इसकी कहानी निम्न आँकड़ों से भली-भाँति स्पष्ट है—

विषय	प० योजना	दू० योजना	ती० योजना	चौ० योजना	पाँ० योजना
	५१-५६	६१-६६	६१-६६	६६-७१	७१-७६
१. राष्ट्रीय आय करोड़ों रु० में	१०८००	१३४८०	१७२६०	२१६८०	२७२७०
२. विभिन्न उद्योगों में लगी हुई कुल पूँजी करोड़ों रु० में	३१००	६२००	९९००	१४८००	२०७००
३. पूँजी राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में	७.३	१०.७	१३.७	१६.०	१७.०
४. जनसंख्या लाखों में	३८४	४०८	४३४	४६५	५००
५. प्रति व्यक्ति आय रु० में	२८१	३३१	३९६	४६६	५४६

—द्वितीय पंचवर्षीय योजना से उद्धृत

पूँजी की समस्या

संक्षेप में, अगले दस वर्ष हमारे औद्योगिक विकास कार्यक्रम के लिए अत्यधिक संकटपूर्ण हैं। यदि हमने साहसपूर्वक दृढ़ परिश्रम करके इन वर्षों में अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया तो देश का भविष्य महान् और उज्ज्वल है। वस्तुतः ऐसे ही संकटकाल में, जबकि हमारे देशवासियों का जीवन-स्तर बहुत नीचा है और उनमें धन बचाने की क्षमता न के बराबर है, हमें अपने औद्योगिक विकास के लिए विदेशी

सहायता की अत्यधिक आवश्यकता प्रतीत होती है। देश के साधन-स्रोतों के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि हमें विदेशों से कुछ सहायता मिले। एक प्रकार से देखा जाय तो विदेशी सहायता के अभाव में हम अपने लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में उतनी तेजी से अग्रसर न हो सकेंगे। लोग 'सहायता' शब्द को आज अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। उनकी यह धारणा है कि विदेशी सहायता की अपेक्षा करना मूर्खतापूर्ण है और उससे कल्याण के बदले नुकसान ही अधिक होता है—क्योंकि सहायता की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाने पर परिश्रम करने से लोग जी चुराने लगते हैं और बिना परिश्रम किए धन मिलने से शासन और जनता में भ्रष्टाचार फैलता है। राष्ट्रवादी चीन के पतन के बाद तो विदेशी सहायता के सम्बन्ध में लोगों की धारणा बहुत खराब हो गई है। लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि अमेरिकी सहायता ही च्यांगकाई शेक की सरकार के पतन का कारण बनी क्योंकि उसने राष्ट्रवादी चीनियों को भ्रष्ट और काहिल बना दिया। परन्तु पिछले पाँच वर्षों में भारत ने इस धारणा को गलत सिद्ध कर यह दिखा दिया है कि विदेशी सहायता राष्ट्रीय पतन का कारण नहीं बनती, बल्कि उससे राष्ट्र को समृद्धि के पथ पर अग्रसर करने में अत्यधिक सहायता मिलती है। मुख्य प्रश्न तो यह है कि सहायता का उपयोग सम्बन्धित देश किस प्रकार करता है और किस भावना के साथ उसे स्वीकार करता है। भारत की उदारतापूर्वक सहायता करके अमेरिका ने यह सिद्ध कर दिया है कि चीन की राष्ट्रवादी सरकार के पतन का कारण विदेशी सहायता नहीं, बल्कि उसकी अपनी अविवेकपूर्ण नीतियाँ थीं।

विदेशी सहायता

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विकास कार्यों पर २०६९ करोड़ रुपए खर्च करने का निर्णय किया गया था। यह अनुमान लगाया गया था कि केन्द्रीय और राज्य सरकारें मिलकर १२५८ करोड़ रुपए तक एकत्र कर लेंगी। यह भी तय किया गया था कि ५ वर्षों के अन्दर 'स्टर्लिंग मुद्रा कोष' से भारत को लगभग २९० करोड़ रुपये की जो रकम मिले वह भी इसी में लगा दी जाए। इस प्रकार ५२१ करोड़ रुपया और जुटाने का प्रश्न सरकार के सम्मुख था। बाद में योजना के व्यय में कुछ वृद्धि होने के कारण यह रकम बढ़कर ७०१ करोड़ रुपये तक पहुँच गई थी। भारत सरकार को विदेशों से लगभग ३०० करोड़ रुपये तक की सहायता प्राप्त होने की आशा थी। अप्रैल, १९५१ और जून, १९५४ के बीच भारत को विदेशों से २३४ करोड़ रुपये की सहायता मिली और योजना के प्रथम तीन वर्षों में उसका जिस प्रकार उपयोग किया गया उसका पता निम्न आँकड़ों से भली भाँति चलता है—

करोड़ों में

	स्वीकृत राशि	१ अप्रैल से ३० मार्च तक इस्तेमाल की गई राशि (करोड़ों में)			
		१९५१-५४	५१-५२	५२-५३	५३-५४
	१	२	३	४	५
अ ऋण					
(क) अमेरिकी सरकार : गेहूँ-ऋण	९०.४	९०.२	५८.०	३२.२	—
(ख) अन्तर्राष्ट्रीय बैंक					
१. योजना के पूर्व मंजूर ऋण जिसका उपयोग नहीं किया गया था	७.१	५.५	१.१	३.०	१.५
२. इस्पात कारखाने के निर्माण के लिए मंजूर ऋण : दिसम्बर १९५२	१५.०	—	—	—	—
३. दामोदर घाटी योजना के लिए मंजूर ऋण : जनवरी १९५३	५.०	—	—	—	—
कुल ऋण	११७.५	९५.७	५९.१	३५.१	१.५
ब अनुदान					
१. अमेरिकी सरकार टैक्निकल सहायता :	८१.६	२१.१	—	५.०	१६.१
२. कोलम्बो योजना					
(क) आस्ट्रेलिया	५.७	४.१	३.७	—	०.४
(ख) कनाडा	२६.४	९.२	४.२	२.६	१.९
(ग) न्यूजीलैंड	०.३	०.३	०.३	—	—
नार्वे सरकार	०.३	—	—	—	—
भारत नार्वे सहायता कार्यक्रम					
कुल अनुदान	११६.७	३६.२	९.१	८.६	१८.६
कुल ऋण और अनुदान	२३४.२	१३१.९	६८.२	४३.७	२०.१

—प्रथम पंचवर्षीय योजना की प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

भारत को अमेरिकी सहायता

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से लेकर अब तक (जनवरी १९५८ तक) भारत की सहायता, ऋण इत्यादि विभिन्न रूपों में अमेरिका से कुल मिलाकर ६०६ करोड़ रु०

से अधिक की सहायता प्राप्त हो चुकी है। इसमें से ५६५ करोड़ रुपया सीधे अमेरिकी सरकार से तथा शेष गर-सरकारी अमेरिकी संघटनों से प्राप्त हुआ है जिसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

१० लाख डालरों में

अमेरिकी आयात-निर्यात बैंक और विकास ऋण कोष	२२५.०
टैक्निकल सहायता और आर्थिक सहायता (१९५२-५७)	४०१.१
गेहूँ ऋण	१९०.०
कृषि-वस्तु विक्रय समझौता	२८८.०
खाद्यान्न सहायता-१९५१	१२.०
कृषिजन्य सामग्री (भेंट)	६१.९
परोपकारी संस्थाओं द्वारा भारत को भेजी गई वस्तुओं का जहाजी भाड़ा	०.६
फुलब्राइट-स्मिथमण्ड शिक्षण अनुदान	३.५
बाढ़-सहायत	६.४
	११८८.५

गैर-सरकारी संघटनों से मिलने वाली सहायता

परोपकारी संस्थाओं से प्राप्त सहायता	५.४
फोर्ड प्रतिष्ठान	२५.६
राकेफेलर प्रतिष्ठान	५.४
रेडक्रॉस संस्था द्वारा दी गई सहायता	०.८
भेंट और अनुदान	५०.०
कुल योग	८७.२
	११८८.५
	१२७५.७

(इसके अलावा कोलम्बो-योजना के अन्तर्गत भी भारत को कुछ सहायता मिल रही है। १९५१-५७ के ६ वर्षों में योजना के अन्तर्गत १८५.८ करोड़ पौंड की धनराशि व्यय की जानी थी, जिसमें २/३ भाग भारत को सहायता के रूप में प्राप्त होना था।)

उपरोक्त आँकड़ों को देखने से यह विदित होता है कि भारत को सबसे

अधिक सहायता अमेरिका से प्राप्त हुई और भविष्य में उससे और भी अधिक सहायता प्राप्त होने की आशा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में सुलभ विदेशी सहायता का उपयोग बहुत ही मन्द गति से किया गया। इसके कई कारण थे। प्रमुख कारण तो यह था कि योजना को अन्तिम रूप देने मे बहुत विलम्ब लग गया था। बहुत-सी योजनाएँ ऐसी थीं, जिनके लिए जटिल उपकरणों की आवश्यकता थी, जो विदेशों में आसानी से सुलभ नहीं हो रहे थे। अतः उनके लिए स्वीकृत सहायता राशि का उपयोग नहीं किया जा सका। इसके अलावा प्रशासन सम्बन्धी अनेकों कठिनाइयाँ भी थीं, जिनके कारण सहायता देने वाले देशों से आवश्यक सामग्री मँगाने में देरी हो गई। लेकिन द्वितीय पंचवर्षीय योजना में विदेशी सहायता का अविलम्ब उपयोग किया जा रहा है।

यह स्पष्ट है कि भारत अपने चतुर्मुखी विकास के लिए भगीरथ प्रयत्न कर रहा है और यदि संसार में शान्ति कायम रही और देशवासियों ने कठिन परिश्रम मे मुख न मोड़ा तो अगले १० वर्षों में भारत आर्थिक पराधीनता की मजबूत बेड़ियों को तोड़ने में बहुत अधिक हद तक समर्थ हो जाएगा। भारत को इस समय शान्ति की अत्यधिक आवश्यकता है। यहाँ तक कि उसकी वर्तमान और भावी विकास योजनाएँ शान्ति पर ही आधारित हैं। अगले १० वर्ष भारत और लोकतन्त्रात्मक प्रणाली के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और संकटमय हैं। यदि संसार के इतिहास में लोकतन्त्र का यह महान् परीक्षण सफल रहा तो संसार की राजनीति पर इसका इतना अधिक प्रभाव पड़ेगा, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। एशिया ही नहीं अपितु समस्त संसार के राष्ट्रों की आँखें उत्सुकतापूर्वक साम्यवादी चीन और लोकतन्त्रवादी भारत के मध्य चल रही शान्तिपूर्ण प्रतिस्पर्धा पर लगी हैं। दोनों के मार्ग भिन्न हैं, तरीके भिन्न हैं परन्तु उद्देश्य समान हैं। इस प्रतिस्पर्धा के परिणाम पर ही एशिया का भविष्य निर्भर करता है। यदि भारत असफल रहता है तो एशिया में साम्यवाद के प्रसार को कोई नहीं रोक सकता। संक्षेप में भारत ही लोकतन्त्र का वह सुदृढ़ गढ़ है जिसने साम्यवादी आदर्शों के विरुद्ध कठिन संघर्ष छेड़ रखा है। उसकी सफलता समार के सभी देशों की महान् सफलता होगी। लोकतन्त्र की यह खास विशेषता है कि यह आवश्यक नहीं कि सभी राष्ट्र सभी प्रश्नों पर एकमत हों। उन्हें अपनी राय प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। भारत और अमेरिका में भी कई प्रश्नों पर मतभेद हैं परन्तु इससे दोनों देशों की आधारभूत एकता और मैत्री में कोई अन्तर नहीं पड़ता। अमेरिका ने भारत के संकटकाल में जो सहायता दी है उसके लिए प्रत्येक भारतवासी कृतज्ञता का अनुभव करता है, यद्यपि इसके साथ ही वह आत्मनिर्भर बनने के लिए पूरी शक्ति से प्रयत्नशील है।

२

वस्त्र-उद्योग

सदियों पूर्व जब यूरोप आदि पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रान्ति के कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे और उसके उद्योग शैशव अवस्था में थे,' भारत के कुशल दस्तकारों द्वारा तैयार उत्तम कोटि के वस्त्र समस्त संसार में विख्यात थे । यहाँ से उत्तम कोटि के सूती कपड़े चीन, जापान, मिस्र इत्यादि देशों को जाते थे और

भारतवर्ष
कपास उत्पादक क्षेत्र और मिलों की संख्या

कपड़े की मिलें
कपास

यूरोपीय देश यहाँ के सुन्दर और महीन वस्त्रों पर जान देते थे । इंग्लैंड में किसी समय भारतीय कैलिको इतना अधिक बिकता था कि वहाँ की सरकार को स्थानीय वस्त्र-उद्योग की रक्षा के लिए भारतीय कपड़े के आयात पर पाबन्दी लगानी पड़ी थी ।

बुरहानपुर और मध्य-प्रदेश का कपड़ा अपनी विशेषता के लिए प्रख्यात था और मद्रास की सुन्दर छींटें विदेशी रमणियों के मन मोह लेती थीं। ढाका के मलमल का क्या कहना! उसकी तारीफ तो आज भी जब-तब लोगों की जबान पर रहती है, यद्यपि अब वह मलमल स्वप्न में भी देखने को नहीं मिलती। यह मलमल अपनी बारीकी के लिए संसार-प्रसिद्ध थी। कहते हैं कि एक दस्तकार ने एक बार इतनी महीन मलमल बनाई थी जिसका थान एक इलायची के छिलके में आ गया था। लोग इस पर भले ही विश्वास न करें, परन्तु इतना तो वे अवश्य ही स्वीकार करेंगे कि ढाके की मलमल का मुकाबला बारीकी में संसार के किसी भाग का कपड़ा नहीं कर सकता था। इस सम्बन्ध में एक और किम्वदन्ती प्रसिद्ध है। बादशाह औरंगजेब की पुत्री को ढाके की मलमल बहुत पसन्द थी और वह गर्मियों में अधिकतर उसी का व्यवहार करती थी। औरंगजेब बहुत कट्टर मुसलमान था। एक बार अपनी पुत्री को बारीक मलमल के वस्त्र पहने देखकर वह उस पर बहुत नाराज हुआ। पुत्री ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"अब्बाजान! इसमें मेरा कोई कुसूर नहीं। कई परत करके तो मैं इसे पहनती हूँ परन्तु यदि इस पर भी इसकी बारीकी नहीं हटती तो मैं क्या करूँ!" संक्षेप में मशीनों के बिना ही उस समय भारत में उत्तम से उत्तम कोटि के वस्त्र तैयार होते थे। सूरत और काम्बे के बन्दरगाहों पर विदेशी जहाजों का तांता लगा रहता था। यह उस समय की बात है जब भारत विदेशी दासता से मुक्त था।

वस्त्र-उद्योग व्यवस्था के संगठन का आधार भिन्न था

उस समय भारतीय वस्त्र-उद्योग व्यवस्था का संगठन छोटे घरेलू धन्धे के रूप में किया गया था। दस्तकार अपने हाथों से मामूली उपकरणों की सहायता से कपड़ा बुनते थे। लेकिन यूरोप में मशीनी-करघों के आविष्कार तथा कुछ अन्य आविष्कारों के कारण सूत कातने और कपड़ा बुनने की विधियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए और बिजली के आविष्कार ने तो शक्ति-चालित करघों के उपयोग का मार्ग और भी प्रशस्त कर दिया। फलस्वरूप विशाल पैमाने और सस्ते मूल्य पर वहाँ के कारखानों में कपड़ा तैयार होने लगा। भारत के दुर्भाग्य से इसी संकटकाल में भारत को गौरांग प्रभुओं द्वारा पददलित होना पड़ा और इस प्रकार देश राजनीतिक दृष्टि से पराधीन हो गया। इस राजनीतिक पराधीनता के फलस्वरूप न केवल भारत के विदेशी व्यापार को अपार क्षति पहुँची बल्कि देश की अर्थ-व्यवस्था पूर्णतः विदेशियों की दया पर निर्भर हो गई। अंग्रेज इसी सुनहरे अवसर की ताक में न जाने कब से घात लगाए बैठे थे। उन्होंने न केवल सुआयोजित और सुनिश्चित ढंग पर भारतीय वस्त्र-उद्योग को नष्ट किया बल्कि अपने कारखानों में तैयार होने वाले कपड़ों से भारत की मंडियाँ

पाट दीं। निश्चय ही, भारतीय वस्त्र-व्यवसायी कारखानों में विशाल पैमाने पर उत्पादित कपड़े से प्रतिस्पर्धा न कर सके क्योंकि इतने कम मूल्य पर कपड़ा तैयार करना उनके लिए असम्भव था। फलतः न केवल विदेशी मंडियों से बल्कि देशी मंडियों से भी उन्हें हाथ धोना पड़ा। कुछ ही वर्षों में भारत का अत्यधिक समृद्धिशाली वस्त्र-उद्योग पूरी तरह चौपट हो गया और अन्ततोगत्वा वह इंग्लैड को कपास निर्यात करने की सामान्य मंडी मात्र रह गया।

आज तो संसार के लगभग सभी देशों में कपास की खेती होती है। जो देश अपनी आवश्यकता लायक कपास नहीं उगा पाते वे विदेशों से कपास मंगाते हैं। जिनके पास प्रचुर परिमाण में कपास होते हुए भी कारखानों का अभाव है वे कपास के बदले कपड़ा खरीदकर अपनी आवश्यकता पूरी करते हैं लेकिन अधिकाधिक देश यह अनुभव करते जा रहे हैं कि वस्त्र और भोजन के बारे में उन्हें आत्म-निर्भर होना चाहिए।

कपास की फसल किसान की आमदनी का मुख्य स्रोत

भारत में कपास की फसल आज भी किसानों की आमदनी का एक प्रमुख स्रोत है। कपास की खेती करने वाले देशों में भारत का स्थान दूसरा है। सबसे अधिक कपास अमेरिका में उत्पन्न होती है। इस समय भारत में प्रतिवर्ष ४० लाख गाँठों से भी अधिक कपास उत्पन्न होती है, जिनमें से अधिकांश देश की कपड़ा-मिलों में ही खप जाती हैं। १९५० में कपास का उत्पादन लगभग २९ लाख गाँठें था। इसमें से तीन-चौथाई घटिया किस्म की कपास थी।

कपास की अव्यवस्थित खेती

यद्यपि मूल्यों में वृद्धि होने के फलस्वरूप भारत में कपास के उत्पादन में वृद्धि हो गई थी परन्तु इससे देश को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, क्योंकि उस समय तक कपास की खेती बहुत ही अव्यवस्थित ढग से की जा रही थी। उत्तम कोटि की कपास पैदा करने की ओर लोगों का कोई विशेष ध्यान नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि घटिया किस्म होने के कारण विदेशों में भारतीय कपास की माँग घटने लगी तथा देश के वस्त्र-उद्योग के विकास को भी धक्का पहुँचा क्योंकि मिल-मालिकों को विवश होकर विदेशों से उत्तम कोटि की कपास मँगानी पड़ी। इन सब कारणों से भारत सरकार और वस्त्र-उद्योग से सम्बन्धित व्यवसायियों ने यह अनुभव किया कि कपास की खेती को प्रोत्साहन देने और भारतीय वस्त्र-उद्योग का विकास करने के लिए यह आवश्यक है कि कपास की कोटि में सुधार किया जाए।

कपास की कोटि में सुधार

१६१७ में ही भारत सरकार ने इस आवश्यकता को अनुभव कर एक जाँच-समिति नियुक्त की थी और कपास की खेती के तरीकों और उसकी क्रय-विक्रय व्यवस्था में सुधार करने के सम्बन्ध में उससे सुझाव माँगे थे। इस समिति की सिफारिशों के फलस्वरूप इंडियन काटेन सेस एक्ट-१६२३ पास हुआ। इसके अन्तर्गत भारतीय केन्द्रीय कपास समिति की स्थापना की गई। भारतीय कपास की कोटि में सुधार करने के हेतु अनुसंधान करने और व्यवस्थित ढंग पर खेती करने के तरीकों की खोज करने के लिए भारत सरकार ने इस समिति को कुछ धन भी मंजूर किया था। इस समिति ने कपास की खेती करने वाले राज्यों की सरकारों के सहयोग से इस दिशा में प्रगति करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

अनुसन्धान का महत्त्व

इस सम्बन्ध में भारतीय कृषि-विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों को कितना अधिक परिश्रम करना पड़ा है, इसका अनुमान आप इसी बात से लगा सकते हैं कि एक नई किस्म को तैयार करने के लिए कम से कम ६ या ७ वर्ष तक धैर्यपूर्वक अनुसन्धान और परीक्षण करने पड़ते हैं। भारत के विभिन्न स्थानों में इस प्रकार की लगभग ३० परीक्षण-शालाएँ हैं जहाँ कृषि-शास्त्री इस महत्त्वपूर्ण कार्य में निरन्तर संलग्न रहते हैं।

छोटे-छोटे खेतों में कपास के पौधों की नई किस्में उगाई जाती हैं और सावधानी से उनका निरीक्षण किया जाता है। इस बात का निश्चय करने में कि अमुक नई किस्म की कपास पहले से उत्तम कोटि की है या नहीं, विशेषज्ञों को अत्यधिक सावधानी से उसकी परीक्षा करनी पड़ती है, क्योंकि यदि इस महत्त्वपूर्ण कार्य में उनसे भूल हो जाए तो वस्त्र-उद्योग पर उसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ सकता है। १६२४ तक इस बात का पता लगाने के लिए कोई वैज्ञानिक तरीका नहीं था कि किस कपास से अधिक अच्छा सूत तैयार किया जा सकता है। टैक्नोलौजिकल परीक्षण-शाला स्थापित होने के बाद से इस दिशा में काफी प्रगति हुई है।

जलवायु का प्रभाव

इस प्रसंग में एक विशेष ध्यान देने वाली बात यह है कि भारत में कपास भिन्न प्रान्तों में बोई जाती है, जिनकी जलवायु अलग-अलग है। अतएव एक ही प्रकार की कपास सभी स्थानों में नहीं उगाई जा सकती। इसलिए यह आवश्यकता अनुभव हुई कि कपास की ऐसी किस्में तैयार की जाएँ जो विभिन्न जलवायु और मिट्टी वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकें। उक्त समिति द्वारा स्थापित की गई परीक्षण-

शालाओं में कपास के सम्बन्ध में परीक्षण भी करने पड़ते हैं। भारत के विभिन्न स्थानों में इस प्रकार की लगभग ३० परीक्षण-शालाएँ हैं जहाँ कृषि शास्त्री इस महत्त्वपूर्ण कार्य में निरन्तर संलग्न रहते हैं।

५५ नई किस्में

पिछले ३० वर्षों में भारत में कपास की २४ हजार नई किस्में तैयार की जा चुकी हैं। इन नई किस्मों के सम्बन्ध में परीक्षण-शालाओं में जो व्यापक परीक्षण हुए हैं उनके फलस्वरूप आज देश में ५५ सुधरी हुई किस्मों का उपयोग करना सम्भव हो सका है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आजकल इन किस्मों को ही उगाया जा रहा है। १९५३ तक कपास के उत्पादन और उपयोग के सम्बन्ध में जो आँकड़े सुलभ हैं वह इस प्रकार हैं—

गाँठें लाखों में

कपास	१९४८-४९	५०-५१	-५२	-५३
उत्पादन	२३.००	३३.००	३८.९३	३६.३८
आयात	१०.७८	८.३५	१२.६४	६.२५
पिछली बचत	३१.३६	१७.१६	१८.१९	२४.५८
कुल सप्लाई	**६५.१४**	**५८.५१**	**६९.५१**	**६७.२१**
मिलों की खपत	४२.५५	३७.१०	४०.७१	४३.५०
निर्यात	३.०५	१.६९	१.९७	३.३०
अलावा खपत	२.७०	२.७०	२.७०	२.७०
कुल खपत	**४८.३०**	**४०.४९**	**४५.३८**	**४९.३०**

—इंडियन इयर बुक १९५५ से उद्धृत

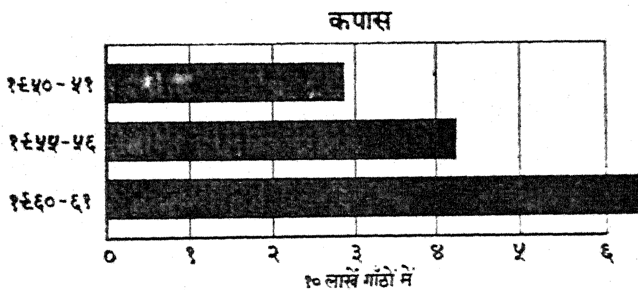
प्रथम पंचवर्षीय योजना और कपास का उत्पादन

इस सन्दर्भ में यह भी बता देना उचित होगा कि प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक कपास का प्रति वर्ष उत्पादन ४० लाख गाँठ तक पहुँच गया था और मिलों में कपास की खपत में भी आशातीत वृद्धि हो गई थी। भारत इस समय विदेशों से केवल लम्बे रेशे वाली कपास मँगाता है क्योंकि देश में इस कपास का उत्पादन इतना नहीं

है कि वस्त्र-उद्योग की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। उक्त आँकड़ों पर दृष्टि डालने से यह पता चलता है कि भारत कपास के मामले में बहुत कुछ आत्मनिर्भर है और देश की मिलों की माँग पूरी करने में समर्थ है। पहले देश से कपास का निर्यात करने पर ४०० रुपये प्रति गाँठ तट कर लगता था परन्तु अब निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए यह तट-कर २०० रुपये प्रति गाँठ कर दिया गया है।

भारत में कपड़े की खपत और उत्पादन-लक्ष्य

वस्त्र-उद्योग के विशेषज्ञों का अनुमान है कि अगले १० वर्षों में भारत में प्रति व्यक्ति पीछे १८ से २० गज कपड़ा ही खप सकेगा। यदि निर्यात के लिए १ अरब गज कपड़ा अलग कर दिया जाए तो उस समय तक भारत को प्रतिवर्ष ६ अरब गज कपड़े की आवश्यकता होगी। यह अनुमान लगाया गया है कि उस समय तक मिलों



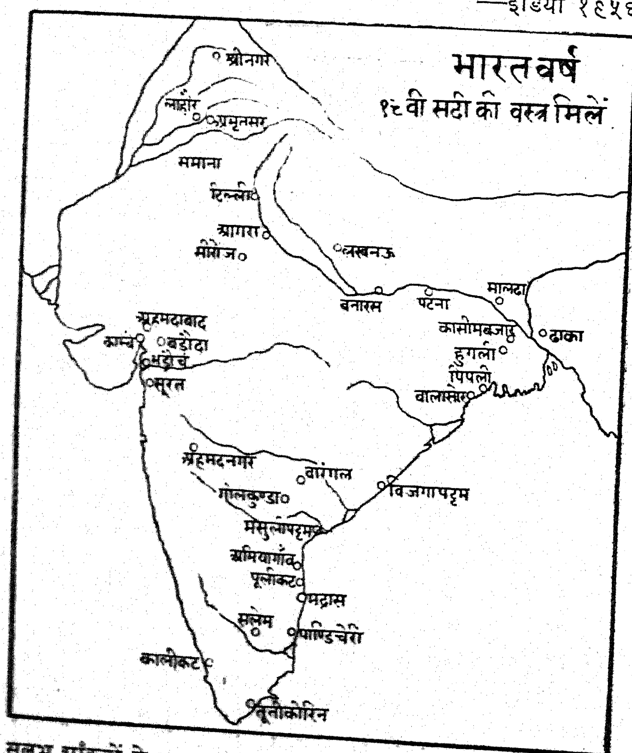
में कपास की खपत ४५ लाख गाँठों से बढ़कर ६५ लाख गाँठ तक पहुँच जाएगी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक प्रति वर्ष ७५ लाख गाँठें उत्पन्न करने का लक्ष्य है। इस सम्भावना को दृष्टि में रखकर सरकार को उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ कोटि में सुधार करने के लिए और अधिक प्रयत्न करने चाहिएँ। इस दिशा में नवीनतम कृषि-विधियों, उपकरणों और खादों का आवश्यकतानुसार उपयोग किया जाए।

कपास का उत्पादन, कारखानों तथा मजदूरों की संख्या

इस सम्बन्ध में यह भी जान लेना उचित होगा कि भारत में कितनी कपास पैदा होती है, कितने कारखाने हैं और उनमें कितने मनुष्यों को काम मिला है—

वर्ष	कपास ३९२ पौंड वजन की गाँठों में	कारखानों की संख्या	कपड़े का उत्पादन १० लाख गज	निर्यात १० लाख गजों में	रोजगार पर लगे व्यक्तियों की संख्या
१९४८-४९	२३००	४१६	३७७०	३४१	७३४६०२
४९-५०	२९७१	४२५	४३८१	६९०	६७६५२३
५०-५१	३३००	४४५	३८५०	१२२४	७१४४७९
५१-५२	३८०७	४५३	३६७५	३८८	७४०६४०
५२-५३	३६५७	४५३	४२९७	५६५	७४३९५४
५३-५४	४६००	४५४	४७६३	७०६	७४००००
५४-५५	५०००	४६१	४८७०	५०६	———

—इंडिया १९५६ से उद्धृत



सलभ आँकड़ों के अनुसार १९५०-५१ में भारत में ४ अरब ६१ करोड़ ८०

लाख गज वस्त्र तैयार होता था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत १६६०-६१ तक कपड़े का उत्पादन १८ अरब गज तक पहुँच जाएगा। १६५२-५३ में ६१ करोड़ रुपए मूल्य का कपड़ा विदेशों को निर्यात किया गया। मिलों के अलावा हाथ-करघा-उद्योग में भी काफी कपास खपती है। इसमें लगभग ५० लाख व्यक्तियों को रोजगार मिला हुआ है।

प्रमुख वस्त्र-उत्पादक देश

पिछले १०० वर्षों में भारत के वस्त्र-उद्योग को अपने अस्तित्व के संघर्ष के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ा है। आज भारत प्रतिवर्ष लगभग ६ अरब गज से भी अधिक कपड़ा तैयार करता है और उसकी गणना प्रमुख वस्त्र-उत्पादक देशों में की जाती है। विदेशों को वह १ अरब गज से भी अधिक कपड़ा निर्यात करता है।

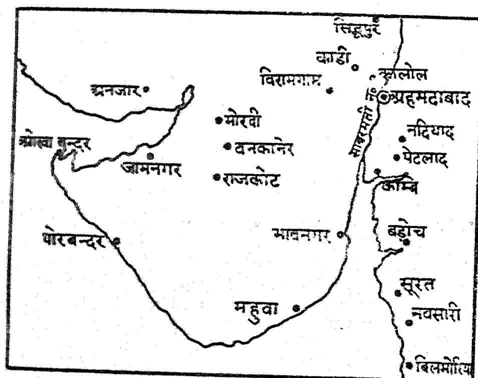
भारतीय वस्त्र-उद्योग की स्थिति और पूँजी की समस्या

लेकिन वस्त्र-उद्योग के समक्ष कुछ ऐसी समस्याएँ भी उपस्थित हैं जिन पर अविलम्ब ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के दौरान भारत की कपड़ा-मिलों पर काम का अत्यधिक दबाव पड़ा है जिसके फलस्वरूप अधिकार मशीनें या तो पुरानी हो गई हैं या टूट-फूट रही हैं इसलिए उनको शीघ्र ही बदलने के लिए काफी अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ेगी। इस समस्या को अधिक समय तक टालना देश के वस्त्र-उद्योग के लिए घातक सिद्ध हो सकता है क्योंकि जापान तेजी से अपनी खोई हुई मंडियाँ प्राप्त कर रहा है। इसके अलावा यदि भारत को अन्य देशों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी है तो नवीकरण की समस्या भी शीघ्र सुलझानी होगी।

नवीन परिस्थितियाँ

भारतीय वस्त्र-उद्योग ने १६५४ में अपना शताब्दी समारोह मनाया है। भारत में जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, वस्त्र-उद्योग की शुरुआत छोटे पैमाने पर हुई थी, परन्तु विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए भी यह उद्योग निरन्तर विकसित होता रहा। युद्ध के दौरान में युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं के कारण सूती कपड़े की माँग में सहसा अप्रत्याशित वृद्धि हो गई। फलस्वरूप वस्त्र-उद्योग का अप्रत्याशित विकास तो हुआ ही लेकिन बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए कच्ची सामग्री जुटाने की समस्या भी उग्र रूप में प्रकट हुई। कच्चे माल के मूल्य बहुत बढ़ गए। सरकार द्वारा वस्त्र के मूल्य और वितरण पर नियंत्रण लागू किया गया तथा सप्लाई से अधिक माँग होने के कारण चोर-बाजारी खूब जोर-शोर से पनपी। इधर

क्षमता से अधिक उत्पादन करने के कारण मशीनों को भी काफ़ी नुकसान पहुँचा। इसके कुछ समय बाद ही देश का विभाजन हो गया और कपास की खेती करने वाला चौथाई इलाका पाकिस्तान के कब्जे में चला गया। भारत में इतनी कपास नहीं होती थी कि देश की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। अतएव समुचित परिमाण में कपास जुटाने की समस्या उठ खड़ी हुई।



श्रम सम्बन्धी समस्याएँ

इसके साथ ही भारत के स्वाधीन होते ही श्रम-संघटनों और अन्य मजदूर संस्थाओं ने मजदूरी बढ़ाने और अन्य सुख-सुविधाओं के लिए आवाज बुलन्द की। इस सन्दर्भ में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि इस बीच मिलों की उत्पादन-क्षमता में कोई वृद्धि नहीं हुई। सरकार ने भी वस्त्र-उद्योग पर लगाए नियंत्रणों और प्रतिबन्धों में किसी प्रकार की ढील नहीं की थी। वस्तुतः सरकार यह निश्चय नहीं कर पा रही थी कि नियंत्रण हटाए जाएँ या नहीं। फिर भी निर्यात के क्षेत्र में सभी प्रतिबन्ध हटा लिऐ गए।

वस्त्र-उद्योग की प्रमुख समस्याएँ

वस्त्र-उद्योग के समक्ष आज कई समस्याएं हैं, जिनके समुचित समाधान पर ही इस महत्त्वपूर्ण उद्योग का भविष्य बहुत कुछ निर्भर रहता है।

नवीकरण की समस्या

सबसे पहली समस्या तो यह है कि वस्त्र-उद्योग के विकास के सम्बन्ध में सरकार और वस्त्र-व्यवसायी गम्भीरतापूर्वक विचार करें। कारखानों के नवीकरण और वैज्ञानीकरण की आज अत्यधिक आवश्यकता है। वैज्ञानीकरण का उद्देश्य उत्पादन-

क्षमता को बढ़ाना और उत्पादन-व्यय को न्यून करना है। वह मुख्यतः तीन प्रमुख सिद्धान्तों पर आधारित है :

१—मानव-श्रम के स्थान पर यन्त्रों का उपयोग।

२—मूल्य-वृद्धि और उग्र-प्रतिस्पर्धा पर नियंत्रण रखना।

३—श्रमिकों द्वारा न्यूनतम समय में अधिकतम उत्पादन।

नवीकरण के लाभ

यान्त्रीकरण से उत्पादन-क्षमता बढ़ती है। यदि १०० श्रमिक और ५ मशीनें २०० वस्तुओं का निर्माण करती हैं तो वैज्ञानीकरण अथवा नवीकरण का उद्देश्य यह होता है कि ये २०० वस्तुएँ ३० श्रमिकों और १५ मशीनों से बनाई जाएँ। इस प्रकार ७० श्रमिकों का परिश्रम और उन पर होने वाला खर्च बच गया। परन्तु यह उन देशों के लिए विशेष उपयोगी है, जहाँ कार्य अधिक और जनसंख्या कम है। वैज्ञानीकरण से उत्पादन बढ़ जाता है, उत्पादन-व्यय घट जाता है लेकिन इसके साथ ही श्रमिकों को समिष्टगत रूप से होने वाली आय भी घट जाती है। वैज्ञानीकरण का अन्तिम महत्त्वपूर्ण अंग है वैज्ञानिक प्रबन्ध-व्यवस्था। इसमें प्रत्येक कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव होता है। प्रत्येक कार्य को इस प्रकार संगठित किया जाता है कि प्रत्येक कार्य दक्षता से शीघ्र पूरा हो सके। हमारे समक्ष वस्त्र-उद्योग के वैज्ञानीकरण की समस्या उपस्थित है। इससे कपड़े का उत्पादन बढ़ जाएगा और हम एशिया के देशों को और अधिक कपड़ा निर्यात कर सकेंगे। परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वैज्ञानीकरण के पश्चात उद्योगों से निकाले हुए बेकार व्यक्तियों का क्या होगा। यही प्रश्न है जिसके आधार पर यहाँ वैज्ञानीकरण का तीव्र विरोध किया जा रहा है। विदेशों का अनुभव है कि इस प्रकार बेकार मजदूरों के लिए अन्य बहुत से कार्य निकल आयेंगे और फिर पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इन मजदूरों को अन्य कामों पर लगाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। अमेरिका में ही नहीं बल्कि पश्चिमी यूरोप, लैटिन अमेरिका तथा रूस इत्यादि देशों में भी वस्त्र-उद्योग के वैज्ञानीकरण पर अधिकाधिक जोर दिया जा रहा है। रूस में तो ऐसी मिलें तैयार की गई हैं जिनमें से प्रत्येक में ५ हजार से अधिक स्वचलित करघे लगे हैं। हाथ-करघा-उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए इस कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिए। कपड़ा-मिलों की ७५ प्रतिशत मशीनें अत्यधिक कार्य-बोझ के कारण घिस-पिट गई हैं। युद्ध-पूर्व की अपेक्षा युद्धोत्तर काल में वस्त्र-उद्योग की मशीनों की कीमतों में ४ से ५ गुनी तक वृद्धि हो गई है। यह अनुमान है कि नवीकरण पर कम से कम ३०० करोड़ रुपए खर्च होंगे लेकिन मशीनें खरीदने के लिए इतनी बड़ी रकम कहाँ से मिले। सरकार की

नियंत्रण सम्बन्धी कठोर नीति के कारण पूंजीपति इतनी अधिक पूँजी लगाने के लिए तैयार नहीं। फिर इसके अलावा राष्ट्रीयकरण का भूत भी हर समय उनके सिर पर सवार रहता है। मशीनों की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए सरकार ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत वस्त्र-उद्योग से सम्बन्धित मशीनों के निर्माण के लिए १६७५ लाख रुपया खर्च करने का निर्णय किया है लेकिन अकेले इससे तो आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती।

वस्त्रों के मूल्य में कमी करने की समस्या

हमारे समक्ष एक महत्त्वपूर्ण समस्या वस्त्रों के मूल्यों में कमी करने की भी है ताकि देश में कपड़े की खपत बढ़ने के साथ-साथ विदेशों में भी उसकी माँग बढ़ सके। लेकिन इस बीच उत्पादन-व्यय और कच्चे माल के मूल्य में कमी होने के बजाय वृद्धि हुई है। इसके अलावा एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। भारत और जापान में वस्त्र-उद्योग में काम करने वाले मजदूरों की मजदूरी लगभग एक समान है, लेकिन जापान में मजदूर जितना काम करता है उस काम को करने के लिए यहाँ २½ मजदूरों की आवश्यकता होती है। भारत में एक श्रमिक २८० 'रिंग स्पिंडिल' (तकुओं) की देख-रेख करता है जबकि इंगलैंड और अमेरिका में एक व्यक्ति एक साथ क्रमशः ८०० और १२०० सूत कातने की मशीनें संभालता है। इसी प्रकार भारत में एक श्रमिक अधिक से अधिक २.५ करघों पर काम कर सकता है जबकि जापान और अमेरिका में ३० स्वचालित करघों के लिए एक व्यक्ति काफी समझा जाता है। इसके अतिरिक्त बिजली, आयात कर, चुंगी कर तथा कोयले के मूल्य में भी वृद्धि हुई है जिसका प्रभाव उत्पादन-व्यय पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। हाल में सरकार ने विदेशी कपास के आयात पर लगा तटकर हटा दिया है लेकिन दूसरी ओर सुपर-फाइन कपड़े पर चुंगी बढ़ा दी है। परिणाम यह हुआ है कि उत्पादन-व्यय में कमी होने के बजाय ६.५ करोड़ रुपए की वृद्धि हो गई है।

विदेशी मंडियों की आवश्यकता

दूसरी ओर सम्भवतः एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण समस्या भारतीय कपड़े के लिए विदेशों में अधिकाधिक मंडियाँ प्राप्त करने की है। स्वतन्त्रता के बाद के वर्षों में उत्पादन बढ़ाने पर जोर दिया गया परन्तु उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली गम्भीर समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान नहीं गया। परिणामस्वरूप बहुत सा कपड़ा गोदामों में ही पड़ा रहा। इस समय भी भारत में कपड़े का उत्पादन प्रतिवर्ष ५ अरब गज तक पहुँच गया है। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार युद्ध के पूर्व उत्पादन का ½ भाग उस प्रदेश में खप जाता था जो आज पाकिस्तान के नाम से विख्यात

है। ऐसा प्रतीत होता है कि पाकिस्तान की मंडी धीरे-धीरे भारतीय व्यापारियों के हाथ से निकलती जा रही है। इस समय ३६ करोड़ २० लाख की जनसंख्या के पीछे हर वर्ष १ अरब ५० करोड़ गज कपड़ा तैयार होता है, अर्थात हर वर्ष प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में १८ गज कपड़ा आता है। इस बात को दृष्टि मे रखते हुए कि युद्धोत्तर काल में लोगों का जीवन-स्तर उन्नत हो गया है, १८ गज कपड़ा अधिक नहीं है। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि हर व्यक्ति पीछे १८ गज कपड़ा खपाना भी कठिन हो रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि लोगों की क्रय-शक्ति बहुत कम है। सरकार का यह विचार सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है कि निर्यात को प्रोत्साहन देकर इस समस्या को हल किया जा सकता है।

कपड़े की कोटि में गिरावट

पिछले महायुद्ध के दौरान भारतीय वस्त्र-उद्योग ने लंकाशायर और जापानी वस्त्र-उद्योग को मात दे दी थी। यदि भारत सरकार ने एक स्थिर और निश्चित निर्यात-नीति का अनुसरण किया होता तो अब तक विदेशों में भारत की मंडियों की कमी नहीं रहती। इसके साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मिल-मालिकों ने विदेशों का उत्तम कोटि का कपड़ा निर्यात करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। विदेशों में कपड़े की कमी का अनुचित लाभ उठाकर भारतीय व्यवसायियों ने घटिया किस्म का माल निर्यात करना शुरू कर दिया और इस प्रकार अपने अविवेक-पूर्ण कार्य से भारत की साख को हानि पहुँचाई है।

भारतीय वस्त्र-उद्योग की व्यवस्था भी बहुत ही अधिक त्रुटिपूर्ण है। पिछले १० वर्षों में तो हालत और भी खराब हो गई थी। इस कारण विवश होकर सरकार को कठोर कार्यवाही करनी पड़ी।

भारत सरकार की नीति

लेकिन भारत सरकार की नीति भी इन समस्याओं के लिए बहुत कुछ दोषी रही है। उसने कोई निश्चित नीति नहीं अपनाई। युद्धोत्तर काल के प्रारम्भिक वर्षों में सरकार की यह नीति थी कि मिलों का अधिक से अधिक विकास किया जाए और कपड़े का उत्पादन बढ़ाया जाए। लेकिन इसके बाद ही कुछ प्रभावशाली नेताओं ने हाथ-करघे पर कपड़ा बुनने और भारतीय कला-कौशल और दस्तकारी को प्रोत्साहन देने की आवाज उठाई। फलतः सरकार काफी समय तक पशोपेश में पड़ी रही और कोई निश्चित फैसला न कर सकी। वस्त्र-मिलों और हाथ-करघों के बीच काफी समय से आदर्शों की लड़ाई चल रही है। विशाल पैमाने पर औद्योगीकरण के समर्थक मिल-मालिकों का ध्यान सदैव ही उपभोक्ताओं और आयातक देशों को प्रचुर मात्रा में

वस्त्र उपलब्ध करने पर रहा है। उनका यह दृष्टिकोण है कि हाथ-करघा समस्त देश की कपड़े की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। इसी दृष्टिकोण से वस्त्र-मिलों के राष्ट्रीयकरण का भी विरोध किया जाता है।

वस्त्र-उत्पादन के लक्ष्य

कई वर्षों तक अनिश्चित नीति पर चलने के बाद द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत सरकार ने वस्त्र-उद्योग के सम्बन्ध में अपनी नीति बहुत कुछ स्पष्ट कर दी है। भारत सरकार ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत १९६० तक प्रति वर्ष ८२० करोड़ गज कपड़ा तैयार करने का लक्ष्य निर्धारित किया है। इसका अर्थ यह है कि पाँच वर्षों की अवधि में १७० करोड़ गज अतिरिक्त कपड़े का उत्पादन किया जाएगा जिसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

वस्त्र उत्पादन लक्ष्य

१. मिलों से	५ अरब गज
२. हाथ करघों से	३ अरब गज
३. हाथ-करघों को शक्तिचालित करघों में बदलकर	२० करोड़ गज
कुल	८२० करोड़ गज

—द्वितीय पंचवर्षीय योजना से उद्धृत

कपड़े का उत्पादन

वस्त्र-उत्पादन की उपर्युक्त वितरण-व्यवस्था में मिलों और हाथ-करघा दोनों का ही समुचित ध्यान रखा गया है। १७० करोड़ गज कपड़े के उत्पादन की वितरण-व्यवस्था इस प्रकार है—

१. दो लाख तकुए लगाकर कपड़ा-मिलों द्वारा तैयार किए गए सूत का उपयोग हाथ-करघा उद्योग से	७० करोड़ गज कपड़ा
२. अम्बर-चरखा द्वारा तैयार किए गए सूत का उपयोग हाथ-करघा उद्योग से	३० करोड़ गज कपड़ा
३. हाथ-करघा क्षेत्र में शक्ति चलित करघों से	२० करोड़ गज कपड़ा
४. मिलों के लिए १६०० नए करघे खरीदने के लाइसेंस देकर : (विदेशों को भेजने के लिए)	३५ करोड़ गज कपड़ा
५. अनिर्धारित : उत्पादन-क्षेत्र पर बाद में विचार किया जायगा	१५ करोड़ गज कपड़ा
कुल	१७० करोड़ गज कपड़ा

—मेजर इंडस्ट्रीज ऑफ इंडिया ५६ से उद्धृत

मिलों और हाथ-करघा-उद्योग दोनों को ही इस नीति से सन्तुष्ट होना चाहिए। इस नीति का सबसे उपयोगी भाग वस्त्र निर्यात नीति से सम्बन्धित है। वर्तमान नीति के अनुसार अगले ५ वर्षों (१९६०-६१ तक) में हर वर्ष एक अरब गज कपड़ा निर्यात करने की योजना है जिसमें से ३० करोड़ गज कपड़े के लिए अम्बर चर्खे के सूत का प्रयोग किया जाएगा। नवीन नीति के अनुसार यह प्रतिबन्ध भी रहेगा कि मिलों द्वारा स्वचालित करघों से उत्पादित माल देश में बेचने पर दंड स्वरूप उत्पादन-कर देना पड़ेगा।

संसार का प्रमुख निर्यातक देश

यह ध्यान देने योग्य बात है कि ३० नवम्बर, १९५५ को समाप्त होने वाले ११ महीनों में ब्रिटेन को सूती कपड़ा भेजने वाले देशों में भारत को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त था। ब्रिटेन को जितना कपड़ा भेजा गया उसमें भारत ने ४१.६ प्रतिशत कपड़ा भेजा, जबकि जापान ने २४ प्रतिशत भेजा। निश्चय ही निर्यात की दृष्टि से वस्त्र-व्यापार की उपेक्षा नहीं की जा सकती। वास्तव में वस्त्र-निर्यात का प्रश्न विदेशी-प्रतिस्पर्धा के मुकाबले में कम कीमत और अच्छी कोटि का कपड़ा तैयार करने से सम्बन्धित है। सरकार ने इस बात का प्रयत्न किया है कि सूती वस्त्रों की किस्म का नियंत्रण उद्योगपति स्वयं ले लें, परन्तु वह इस प्रयत्न में अभी तक सफल नहीं हुई है। सरकार ने कोटि सुधारने के लिए उद्योगपतियों को एक वर्ष का समय और दिया है।

हाथ-करघा-उद्योग की माँगें

दूसरी ओर हाथ-करघा-उद्योग से सम्बन्धित व्यक्तियों का दावा है कि १७० करोड़ गज कपड़ा वे हाथ-करघों पर तैयार करा सकते हैं। उनका कहना है कि मिलों को १४०० नए स्वचालित करघे लगाने की अनुमति देकर उन्हें ३५ करोड़ गज कपड़े का उत्पादन करने की आज्ञा देना घोर पक्षपात है। इतना ही नहीं वर्तमान वस्त्र-उद्योग नीति में जो २० करोड़ गज कपड़ा हाथ-करघों को विद्युतशक्ति चालित करघों में बदलकर बनाया जाएगा, उससे हाथ-करघा-उद्योग में बेकारी फैलने का भी भय है। कानूनगो समिति की रिपोर्ट के अनुसार एक शक्तिचालित करघा २० हाथ-करघों को बेकार कर देगा। यही कारण है कि हाथ-करघा बोर्ड के ५ सदस्यों ने ९ जुलाई, १९५६ को सरकार की संशोधित वस्त्र नीति को घातक बताया है।

हाथ-करघा बोर्ड के तथ्य निश्चित रूप से ठोस और तथ्यपूर्ण हैं परन्तु सरकार का कदम भी गलत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसके समक्ष मुद्रा स्फीति के संकट को रोकने की समस्या उपस्थित है।

वस्त्र-नीति से सम्बन्धित एक और प्रश्न कपड़े की निरन्तर बढ़ती हुई कीमतों पर नियंत्रण रखने का है। इस सम्बन्ध में सरकार विशेष चिन्तित नहीं। उसका

विश्वास है कि वह मूल्य-वृद्धि को रोकने में पूर्ण समर्थ है।

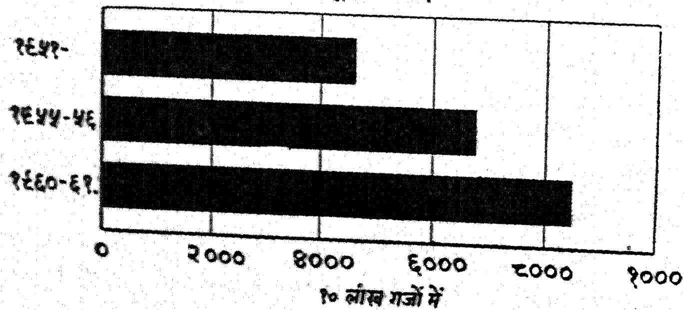
यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत सरकार की वस्त्र-नीति वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल और समन्वयात्मक है, जिससे हाथ-करघा और मिल क्षेत्र, दोनों को ही सन्तुष्ट करने की कोशिश की जा रही है। सरकार द्वारा मिलों को कुछ क्षेत्र देने का अर्थ मिल-विस्तार-नीति अपनाना इतना नहीं जितना मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित करना है और केवल मात्र इसी दृष्टिकोण की सीमा तक मिलों को दिए गए क्षेत्र का समर्थन किया जा सकता है।

वस्त्र-उद्योग के विकास पर एक दृष्टि : १९४७-४८ से १९५४-५५ :

वर्ष	मिलों की संख्या	करघों की संख्या हजारों में	तकुओं की संख्या हजारों में	सूत १० लाख पौण्डों में	कपड़ा १० लाख गजों में	निर्यात १० लाख गजों में
१९४७-४८	४०८	१९७	१०,२६६	१३३०	३७७०	१९२
१९४८-४९	४१६	१९८	१०,५३४	१४७५	४३८१	३४१
१९४९-५०	४२५	२००	१०,८४९	१२९०	३८५०	६९०
१९५०-५१	४४५	२०१	११,२४१	११९२	३६७५	१२२४
१९५१-५२	४५३	२०४	११,४२७	१३२५	४२९७	३८८
१९५२-५३	४५३	२०४	११,४२७	१४७५	४७६३	५६५
१९५३-५४	४५४	२०७	११,७२१	१५५०	४८७०	७०६
१९५४ ५५	४६१	२०८	११,८८८	१०३८	३३२४	५०६

उद्योग एवं वाणिज्य मन्त्रालय के अधिकृत आँकड़े
—मेजर इंडस्ट्रीज ऑफ इंडिया से उद्धृत

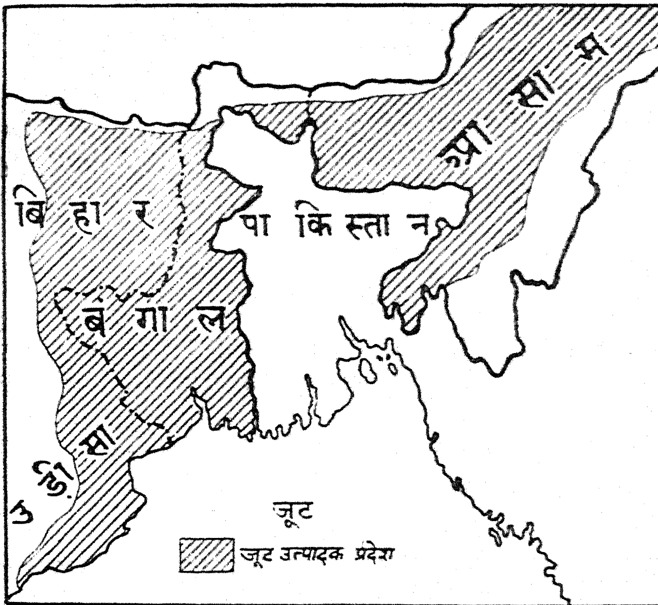
सूती कपड़े



३

भारतीय जूट उद्योग और उसका विकास

गरीबों की झोंपड़ियों में भूरे मटमैले टाटों और बोरों तथा अमीरों के यहाँ आकर्षक और रंग-बिरंगे पर्दों, दरियाँ, कवरों, कार और सोफों के गद्दों तथा वाटरप्रूफ कपड़ों के रूप में आप इसके दर्शन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अमीरों की बैठकों



की शोभा बढ़ाने वाले प्लास्टिक, फर्नीचर, कम्बल, बिजली निरोधक सामग्री और ऊन या कपास के साथ मिलाकर कपड़ा तैयार करने में भी इसका व्यापक तौर पर उपयोग होने लगा है। इसका असली रंग-रूप आपको भले ही पसन्द न आए, परन्तु है यह बड़े काम की चीज़। कपड़े को गाँठें पैक करने, अनाज को गोदामों में रखने या जहाजों पर लाद कर विदेशों को भेजने के लिए इससे बने बोरों और टाट का कितना अधिक उपयोग होता है यह हम सब अच्छी तरह जानते हैं। मूसलाधार बारिश में बेचारे गरीब मोटे टाट से शरीर को ढँक कर अपना काम चला लेते हैं, परन्तु अमीरों के शरीर पर यही सुन्दर और आकर्षक वाटरप्रूफ के रूप में शोभित होता है। इस प्रकार यह गरीब और अमीर दोनों ही का मित्र और शुभचिन्तक है।

संक्षिप्त इतिहास

कोई समय था जब लोग इसे भारतवर्ष का 'सोने का रेशा' कह कर पुकारते थे परन्तु सब दिन एक से नहीं रहते। इधर कुछ दिनों से इस पर भी ग्रहों का प्रकोप हो गया है और अब तो हम इसे 'जूट' के नाम से ही जानते हैं। इसकी जन्मभूमि बंगाल में लोग पहले इसे 'पट' कह कर पुकारते थे परन्तु धीरे-धीरे इसने अपने रूप के साथ अपना नाम भी पलट दिया। आज संसार का कोई ऐसा भाग नहीं जहाँ इसकी पूछ न हो, पहुँच न हो और सच तो यह है कि भारत के लिए अमूल्य और अत्यधिक आवश्यक विदेशी मुद्रा जुटाने का यह एक प्रमुख स्रोत बन गया है।

कपास की भाँति जूट से खुरदुरा और मोटे किस्म का कपड़ा तैयार करने का काम भारत में अंग्रेजों के आगमन के बहुत समय पहले से ही होता था। लोग इससे बोरों, टाट और पर्दों इत्यादि के लिए कपड़ा तैयार करते थे। बंगाल के किसान घरेलू धन्धे के रूप में यह काम करते थे, और उन्हें इससे अच्छी खासी आय हो जाती थी, यद्यपि उस समय विदेशों को जूट से बनी हुई वस्तुओं का निर्यात बिलकुल ही नहीं होता था।

जूट की खेती

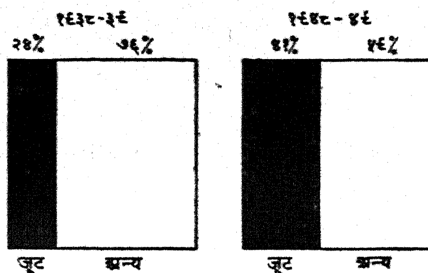
जूट का पौधा ८ फुट से १२ फुट तक ऊँचा होता है और यह मुख्यत: पूर्वी और उत्तरी बंगाल के इलाकों में ही बहुतायत से उगाया जाता है। बंगाल, बिहार और असाम के कुछ इलाकों में भी थोड़े परिणाम में इसकी खेती होती है। जूट ऐसी किसी भी जमीन पर बोया जा सकता है जहाँ मिट्टी काफी गहरी और उपजाऊ हो। ढाका, टिपरा मेमनसिंह और फरीदपुर में जूट बहुतायत से पैदा होता है। विभाजन के पूर्व भारत के विभिन्न भागों में जूट की खेती के आँकड़े इस प्रकार हैं—

जूट उत्पादक क्षेत्र का प्रतिशत

	३५-३६	३६-३७	३७-३८	३८-३९
बंगाल	८७	७७	७५	७८
बिहार	६	१६	१५	१०
असम	५	५	८	१०
उड़ीसा	१	१	१	१
भारतीय राज्य	१	१	१	१
	१००	१००	१००	१००

—लोकलाइजेशन ऑफ इण्डस्ट्रीज इन इण्डिया से उद्धृत

कुछ लोगों को यह भ्रम है कि जूट अधिक नमी वाले स्थानों में ही सफलता-पूर्वक उगाया जा सकता है परन्तु तथ्य यह है कि पूर्वी बंगाल (पाकिस्तान) में उन क्षेत्रों में जूट बहुतायत से होता है, जहाँ जमीन ऊँची है और पानी कभी नहीं भरता। इस प्रकार की भूमि पर उगा जूट अपेक्षाकृत उत्तम कोटि का होता है, लेकिन भूमि का उर्वरा होना परम आवश्यक है।



विभाजन से पूर्व की स्थिति

विभाजन के पूर्व जूट की सप्लाई का प्रमुख स्रोत भारत ही था। संसार के कुल जूट-उत्पादन का ९७ प्रतिशत भाग अकेले भारत के हिस्से में आता था। ब्राजिल इत्यादि कुछ देशों ने इसे उगाने के लिए भरसक प्रयत्न किए, परन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिली। ९० प्रतिशत जूट का उत्पादन पूर्वी बंगाल में ही होता था। जहाँ जलवायु के कारणों से जूट का उत्पादन पूर्वी बंगाल में सीमित रहा, वहाँ आर्थिक कारणों से जूट की मिलें हुगली के तट पर ही सीमित रहीं। ३८-३९ में लगभग ८.७ लाख एकड़ भूमि में जूट की खेती होती थी। १९२९-३९ के दस वर्षों में भारत में उत्पादन, खपत और निर्यात की स्थिति इस प्रकार थी—

	००० गाँठों में	प्रतिशत
कुल उत्पादन	९९२३	
भारत में खपत	५९४५	५९.९
मिलों द्वारा खरीद	५६४७	५६.९
गाँवों में खपत	२९८	३.०
विदेशों को निर्यात	३९७८	४०.१

निर्यात का विस्तृत विवरण	प्रतिशत
इंग्लैण्ड	२२.२
जर्मनी	२१.४
फ्रांस	११.०
अमेरिका	८.७
इटली	८.१
बेल्जियम	७.१
अन्य देश	२१.४

—'इंडिया एट ए ग्लान्स' १९५४-५५ पुस्तक से उद्धृत

स्थिति में आमूल परिवर्तन

देश के विभाजन के फलस्वरूप स्थिति में आमूल परिवर्तन हो गया। १९४० में ९५ प्रतिशत जूट फैक्टरियाँ हुगली के तट पर स्थित थीं। उस समय फैक्टरियों की कुल संख्या ११२ थी, जिसमें से १०१ फैक्टरियाँ विभाजन के बाद भारतीय क्षेत्र में रह गईं। परन्तु दूसरी ओर जूटबहुल क्षेत्र का अधिकांश भाग पूर्वी पाकिस्तान के पास चला गया। स्वभावतः विभाजन के बाद के कुछ वर्ष भारतीय जूट उद्योग के लिए अत्यधिक संकट के दिन थे। निम्न आंकड़ों से विभाजन के तुरन्त बाद भारत में जूट उत्पादक क्षेत्र और जूट-उत्पादन की स्थिति पर पूरी तरह प्रकाश पड़ता है—

विभाजन के उपरान्त उत्पादन की स्थिति

वर्ष	जूट-उत्पादक क्षेत्र हजार एकड़ों में	जूट की गाँठे हजार में
४७-४८	६५१	१६९६
४८-४९	८३४	२०५५
४९-५०	११६३	३०५९
५०-५१	१४५४	३३०१
५१-५२	१९५१	४६७८
५२-५३	१८१७	४६०५
५३-५४	११९६	३१२९
५४-५५	१२७३	३१५३

—इंडिया इंडस्ट्रीज एनुअल से उद्धृत

यद्यपि विभाजन के तुरन्त बाद देश में जूट की कमी और पाकिस्तान के असहयोगपूर्ण रुख के कारण स्थिति बहुत विषम और निराशाजनक हो गई थी, परन्तु भारतीय व्यवसायियों के सतत प्रयत्नों और भारत सरकार की प्रभावशाली कार्यवाही के कारण अब स्थिति में निरन्तर सुधार हो रहा है जैसा कि नवीनतम आंकड़ों से स्पष्ट विदित है। जैसा कि उपरोक्त आंकड़ों से विदित है १९५४-५५ में भारत में १२ लाख ७३ हजार एकड़ भूमि में जूट की खेती हुई, तथा जूट की ३१५३००० गाँठें उत्पन्न हुई। इस बात के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं कि १९६१ तक अर्थात् द्वितीय पंचवर्षीय योजना के समाप्ति काल तक भारत में ५८ लाख गाँठ जूट उत्पन्न होने लगे और भारत जूट के मामले में पहले के समान ही एक बार पुनः आत्म-निर्भर हो जाए।

जूट मिलों की स्थापना

भारत से १९वीं सदी में जावा, बोर्नियो तथा कई अन्य देशों को जूट की वस्तुएँ भेजी जाने लगी थीं। धीरे-धीरे अमेरिका तथा वेस्ट इण्डीज में भी भारतीय जूट की वस्तुएँ पहुँचने लगी थीं। विदेशी तथा घरेलू मांगों की पूर्ति के लिए कारीगरों ने कुछ बड़े पैमाने पर कपड़ा तैयार करना प्रारम्भ भी कर दिया था।

स्कॉटलेंड स्थित डंडी नामक स्थान के कुछ व्यवसायी १८२२ में ही मशीनों द्वारा जूट से कपड़ा तैयार करने के सम्बन्ध में परीक्षण कर रहे थे। ह्वेल मछली के तेल में जूट के धागे को भिगोकर उससे मोटा कपड़ा तैयार करने में १८३८ में वे सफल हो गए।

जूट की वस्तुओं की माँग में वृद्धि

यह वह समय था जब नई दुनिया (अमेरिका) का विकास तीव्र गति से हो रहा था तथा वहाँ से कृषि-सामग्री और औद्योगिक कच्चा माल विदेशों विशेषतः यूरोप को भेजने के लिए टाट और बोरों की अत्यधिक आवश्यकता थी। दक्षिण अफ्रीका से कपास, आस्ट्रेलिया से ऊन तथा जावा, सुमात्रा और बोर्नियो से चीनी विशाल परिमाण में विदेशों को भेजी जा रही थी। उस समय जहाजों पर आधुनिक ढंग से माल लादने और उतारने की विधियाँ अज्ञात थीं, अतएव बोरों और टाट का सहारा लेना पड़ता था। स्कॉटलैण्ड स्थित डंडी के जूट कारखानों ने टाट और बोरों इत्यादि की बढ़ती हुई आवश्यकता पूरी करने के लिए भारत से जूट मंगाना प्रारम्भ किया। भारत में १८५५ तक जूट का कपड़ा हाथ से ही तैयार होता था। इसी वर्ष पहली बार बम्बई के बाजारों में डंडी में बना जूट का कपड़ा दिखाई पड़ा। इसी समय जॉर्ज

आकलैण्ड नामक एक अंग्रेज का ध्यान इस ओर गया कि भारत में ही जूट फैक्टरी की स्थापना क्यों न की जाए। उसके ही प्रयत्नों के फलस्वरूप १८५५ में रिकोरा नामक स्थान पर पहली जूट मिल खोली गई। इस मिल का प्रतिदिन उत्पादन लगभग ८ टन था। १० वर्षों के अन्दर ही चार और मिलों की स्थापना हो गई।

बंगाल सबसे अधिक उपयुक्त स्थान

बंगाल की परिस्थितियाँ जूट उद्योग के विकास के लिए बहुत उपयुक्त थीं। कच्चे माल के अलावा वहाँ कोयला भी प्रचुर परिमाण में सुलभ था और दक्ष मजदूरों की भी कोई कमी नहीं थी लेकिन मशीनों इत्यादि के लिए भारतीय जूट मिलों को डंडी पर उसी प्रकार निर्भर रहना पड़ता था जिस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में बम्बई का वस्त्र-उद्योग चीन में सूत की मण्डी पर निर्भर रहता था। डंडी से कलकत्ता आने वाले अंग्रेज न केवल प्रबन्ध-व्यवस्था का संचालन करते थे, बल्कि वे कुशल कारीगर और टैक्निशियन भी होते थे और अवसर पड़ने पर स्वयं हर तरह का काम करते थे। इन यूरोपीय कारीगरों ने धीरे-धीरे भारतीयों को भी मशीनें चलाना और उन पर कपड़ा बुनना सिखा दिया।

जूट-उद्योग में भारतीय पूँजीपतियों का प्रवेश

पहले कलकत्ता स्थित जूट मिलें मुख्यतः श्रीराम गंज से ही जूट मँगाती थीं और देश की आवश्यकता पूरी करने लायक माल ही तैयार करती थीं। बहुत थोड़ा-सा माल ही विदेशों को निर्यात किया जाता था। १८६८ में इंग्लैण्ड को जूट के कपड़े का निर्यात किया गया परन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिली। लेकिन फिर भी देश के अन्दर ही यह उद्योग इतना लाभदायक सिद्ध हुआ कि जूट की मिलों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई और १८४५ तक कलकता के क्षेत्र में उनकी संख्या बढ़कर १६ तक पहुँच गई। इस सन्दर्भ में एक स्मरण रखने योग्य बात यह है कि पहले भारतीय व्यवसायियों ने इस उद्योग में अपनी पूँजी नहीं लगाई थी, क्योंकि अंग्रेज व्यवसायियों ने आपस में साँठ-गाँठ कर रखी थी और अंग्रेज एजेण्टों के जरिए ही वे माल खरीदा और बेचा करते थे, भले ही इसके लिए उन्हें अधिक मूल्य ही क्यों न देना पड़े। परन्तु कुछ समय बाद कुछ भारतीय व्यवसायियों ने साहस कर इस क्षेत्र में प्रवेश किया और विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी मैदान में डटे रहे।

विदेशी जूट मिलों से सफल प्रतिस्पर्धा

इसी बीच में कुछ भारतीय जूट मिलों के दूरदर्शितापूर्ण कदमों और प्रयत्नों के फलस्वरूप विदेशों में भारतीय जूट-वस्तुओं की भी खपत होने लगी। इस प्रसंग

में समूनगर और हैस्टिंग्स मिलों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन मिलों ने विदेशों में भारतीय जूट-वस्तुओं की माँग बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। डंडी की जूट मिलों की प्रतिस्पर्धा का इन्होंने डटकर सफलतापूर्वक सामना किया और शीघ्र ही विदेशी जूट व्यवसायियों को यह विश्वास दिला दिया कि भारतीय जूट उद्योग के साथ प्रतिस्पर्धा करने में उन्हें कोई लाभ नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि डंडी के व्यवसायियों ने ऐसी जूट वस्तुओं के उत्पादन पर अधिक ध्यान देना शुरू कर दिया, जो भारत में नहीं बनती थीं।

संसार में जूट वस्तुओं की माँग बढ़ने के कारण भारत में और नई मिलें खुलीं और ब्रिटिश पूंजी और टैक्निकल जानकारी का खुलकर प्रयोग किया गया। कलकत्ता स्थित ये मिलें अपने विदेशी एजेण्टों की सहायता से अमेरिकी उपनिवेशों की मंडियों को प्राप्त करने में समर्थ हो गईं। इस बीच में इंग्लैण्ड तथा अन्य देशों से भी वस्तुओं के लिए नए-नए आर्डर प्राप्त होने लगे। क्यूबा, अर्जेनटीना, चिली, मिश्र, इटली इत्यादि देशों ने भी भारत से जूट का माल मंगवाना शुरू कर दिया।

जैसा कि मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ, भारतीय पूँजीपतियों ने इस उद्योग में बहुत कम पूँजी लगाई। वस्तुतः इसका मुख्य कारण यह था कि विदेशी कम्पनियाँ अपने विदेशी एजेण्टों की सहायता से सफलता प्राप्त कर सकती थीं, लेकिन भारतीय व्यवसायियों को यह सुविधा प्राप्त नहीं थी। इसके अलावा विदेशी कम्पनियों ने आपस में साँठ-गाँठ भी कर रखी थी। नेशनल चैम्बर ऑफ कामर्स (राष्ट्रीय वाणिज्य मंडल) और मारवाड़ी एसोसिएशन के प्रतिनिधियों ने भारतीय वित्तीय कमीशन के समक्ष इन विदेशी कम्पनियों की काली करतूतों का अच्छी प्रकार भण्डाफोड़ किया था। १९३६-३७, ३८ और ३९ में भारत में जूट मिलों के उत्पादन की स्थिति इस प्रकार थी—

युद्ध पूर्व का उत्पादन

		३६-३७	३७-३८	३८-३९
१.	भारत में बनी जूट की वस्तुएँ	१२५३११३ टन	१३११६५८ टन	१२११४८२
२.	देश के उपयोग के लिए सुलभ किया गया माल	६६९४८ टन	८१९३१ टन	११६३७३

—रिपोर्ट ऑफ मार्केटिंग ऑफ जूट एण्ड जूट प्रोजेक्ट्स द्वितीय रिपोर्ट १९४१ से उद्धृत

इसके उपरान्त देश में मिलों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही क्योंकि यह एक अत्यधिक लाभजनक व्यवसाय था। १९४० तक कारखानों की संख्या ११० तक पहुँच गई। १९४० से ४५ तक इन मिलों के उत्पादन और निर्यात सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

उत्पादन और निर्यात

	कुल उत्पादन	निर्यात
३९-४०	१२६४	११४७
४०-४१	९८४	८२१
४१-४२	१२२५	८२५
४२-४३	१२०५	८२५
४३-४४	१०५४	९८४

—'इंडिया एट ए ग्लान्स' पुस्तक से उद्धृत

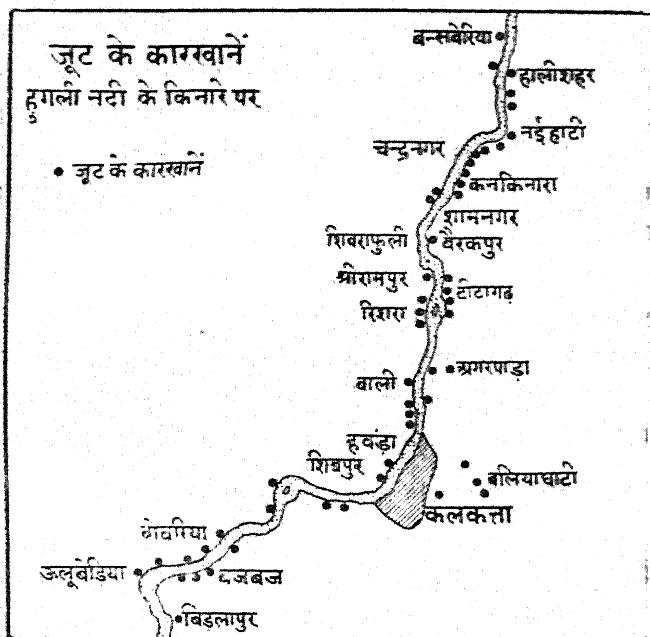
युद्धोतरकालीन कठिनाइयाँ

विभाजन, पाकिस्तान के दुराग्रह तथा उसके भेदभावपूर्ण व्यवहार के कारण युद्धोत्तर काल में इन मिलों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पाकिस्तान द्वारा अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करने और भारत को निर्यात होने वाले कच्चे जूट पर अतिरिक्त तटकर वसूल करने के कारण स्थिति और भी विषम हो गई थी। लेकिन भारतीय व्यवसायी इस संकटपूर्ण स्थिति का सामना करने में सफल रहे हैं। युद्धोत्तर काल में न केवल जूट के उत्पादन में वृद्धि हो गई, वल्कि विदेशों को भी पर्याप्त माल निर्यात किया जाने लगा। १९५० के आंकड़ों के अनुसार भारत में जूट मिलों की संख्या १०४ तक पहुँच गई। इनमें कुल २९.८१ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है तथा इनका प्रतिमास उत्पादन लगभग १ लाख टन है। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार भारत में जूट उत्पादन, सप्लाई और खपत की स्थिति इस प्रकार है—

	५१-५२	५२-५३
खुला स्टाक	१०१३००० टन	११०५००० टन
मिलों के पास	४३००० टन	५०००० टन
गाँठें संग्रह करने वालों के पास	४६७८००० टन	४६९५००० टन
पाकिस्तान से आयात	१८००००० टन	१५००००० टन
कुल	७५३४००० टन	७३५०००० टन

खपत मिलों में	६१००००० टन	५६३०००० टन
घरेलू तथा स्थानीय खपत	१००००० टन	१००००० टन
बचत	६२००००० टन	५७३०००० टन

—'इंडिया एट ए ग्लान्स' पुस्तक से उद्धृत



आज हमारे जूट उद्योग की स्थिति बहुत सुदृढ़ है। कुछ समय तक लड़खड़ाने के बाद अब यह पूरी तरह संभल गया है। देश के अन्दर ही वस्तुओं की इतनी अधिक माँग है कि जूट उद्योग को विदेशी मण्डियों पर निर्भर रहने की कोई जरूरत नहीं, परन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि खाद्य-संकट के दिनों में विदेशों से अन्न खरीदने के लिए जूट उद्योग ने सरकार को पर्याप्त विदेशी मुद्रा सुलभ की थी।

भारत सरकार की आय

इसके अतिरिक्त जूट से निर्यात कर के रूप में भी भारत सरकार को अच्छी खासी आय हो जाती है। सर्वप्रथम १९१६ में यह कर लगाया गया था। कच्चे जूट

पर १०) से लेकर १६) फी टन तक कर लिया जाता था। इस समय निर्यात कर की दरें बहुत ऊँची है। अब हेमन कपड़े पर १५००) प्रति टन और टाट पर ३५०) प्रति टन निर्यात कर लगता है। १९५१-५२ में जूट के निर्यात से भारत को ५९ करोड रुपये की आय हुई थी। लेकिन इसके बाद तट-कर की दरों में कमी करनी पड़ी परन्तु फिर भी १९५३-५४ में लगभग १० करोड़ रुपये की आय हुई थी।

इस प्रकार विदेशी मुद्रा के अर्जन में जूट ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है। भारत से विदेशों को जो वस्तुएँ निर्यात की जाती हैं, उनमें जूट को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। युद्ध के पूर्व ३५ से ४० करोड़ रुपये मूल्य तक की जूट-वस्तुओं का निर्यात होता था। १९४७ के बाद से लगभग १०० करोड़ रुपये मूल्य की जूट सामग्री विदेशों को निर्यात की जाती थी। १९५१-५२ में कुल २७० करोड़ रुपये मूल्य का जूट और जूट-वस्तुएँ निर्यात की गईं। कुल निर्यात में जूट निर्यात का अनुपात लगभग २८ प्रतिशत है।

भारत सरकार ने विभाजन के बाद ही विदेश व्यापार की दृष्टि से जूट उद्योग के महत्त्व को अच्छी तरह अनुभव कर लिया था, क्योंकि उस समय अन्न खरीदने के लिए भारत को विदेशी मुद्रा की अत्यधिक आवश्यकता थी। विभाजन के समय लगभग ६ लाख एकड़ भूमि में जूट की खेती होती थी। अब इसमें लगभग तिगुनी वृद्धि हो गई है। भारत में जूट उद्योग की नवीनतम स्थिति इस प्रकार है—

भारतीय जूट मिलों की प्रगति

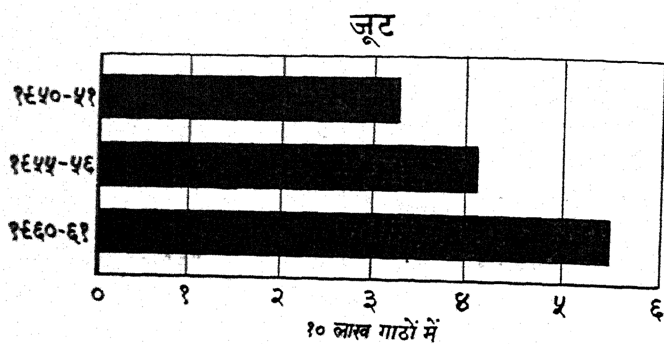
जुलाई-जून	मिलों की संख्या	उत्पादन टनों में	निर्यात टनों में	मजदूरों की संख्या
१९४७-४८	१०४	१०३५०००	४७२०००	३१५०००
४८-४९	१०४	१०४००००	९२९०००	३०३०००
४९-५०	१०४	८२५०००	७८७०००	२७८०००
५०-५१	१०४	८५८०००	६५००००	२८४०००
५१-५२	१०४	९४५०००	८०८०००	२७६०००
५२-५३	१०४	८९१५००	७०७०००	२७००००
५३-५४	१०४	८६५७००	७४३०००	२७४०००
५४-५५	१०४	६२२५००	५४२०००	२७५०००
		अप्रैल से नवम्बर	अप्रैल से नवम्बर	लगभग

	निर्यात करोड़ रुपयों में
१९४९-५०	१२६. ९
५०-५१	११३.९५
५१-५२	२६९.६९
५२-५३	१८६.०९

—मेजर इंडस्ट्रीज ऑफ इंडिया एनुअल अप्रैल-नवम्बर ५४-५५ से उद्धृत

नवीकरण की आवश्यकता

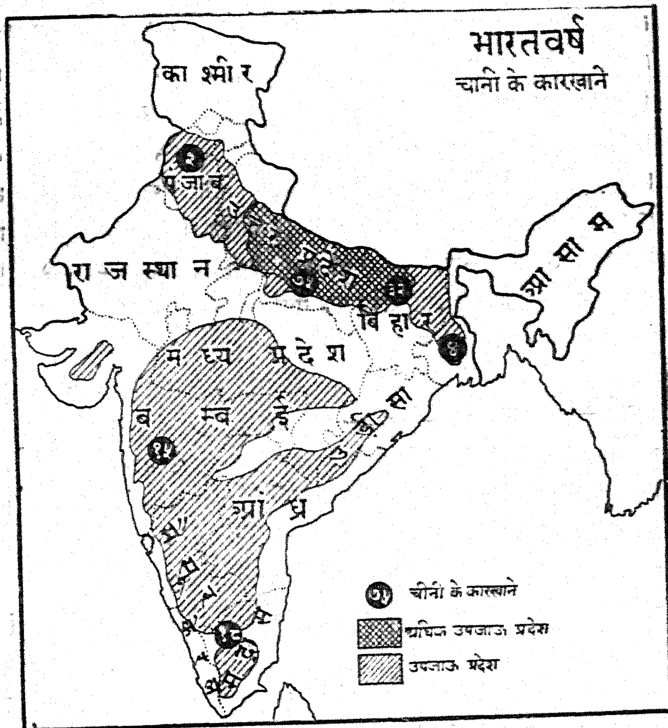
यह अत्यधिक आवश्यक है कि भारत सरकार जूट उद्योग की समस्याओं का सावधानी के साथ अध्ययन कर ऐसे उपाय अपनाए जिनसे उद्योग को विकासोन्मुख रखा जा सके। वस्तुतः इस समय भारतीय जूट उद्योग के समक्ष सबसे बड़ी समस्या नवीकरण की है। अधिकांश जूट मिलों में घिसे-पिटे पुराने तरीकों और पुरानी मशीनों का ही उपयोग किया जा रहा है जिसका उत्पादन पर बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ता है। विदेशों में और खास तौर पर डंडी में जूट मिलों की उत्पादन विधियों और मशीनों में महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं। इनमें स्लिवर लूम और वृत्ताकार लूम के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्लिवर लूम के आविष्कार के पूर्व एक टन सामग्री तैयार करने के लिए पहले ३२० घण्टे काम करना पड़ता था परन्तु अब केवल १४० घण्टे में यह काम हो जाता है। विशेषज्ञों के अनुसार एक वृत्ताकार करघे द्वारा अब एक घण्टे में कम से कम ४५ गज कपड़ा बुना जा सकता है। विशेषज्ञों के अनुसार भारतीय जूट मिलों में एक करघे का नवीकरण करने के लिए लगभग ७५०० रुपयों की आवश्यकता होगी। एक मिल में लगभग २०० करघे होते हैं। इस प्रकार इस कार्य पर लगभग ५३ लाख रुपये खर्च होने का अनुमान है। इतनी अधिक पूंजी जुटाना एक विकट और अत्यधिक कठिन समस्या है, फिर भी भारतीय उद्योगपति हिम्मत नहीं हारे हैं और पूंजी जुटाने के लिए प्रयत्नशील हैं।



संक्षेप में कई कठिन समस्याओं के होते हुए भी भारतीय जूट उद्योग का भविष्य उज्ज्वल दीखता है।

भारत में चीनी उद्योग

बिस्तर छोड़ने को जी नहीं कर रहा था। इतनी कड़ाके की सर्दी थी कि दाँत किटकिटा रहे थे। उस समय तो जी चाह रहा था कि बस एक कप गरमागरम चाय मिल जाए परन्तु वहाँ तो चीनी ही नदारद थी। नौकर को बिस्तर में ही पड़े



पड़े आवाज लगाई तो पता चला कि अभी तक आया ही नहीं और बिना चीनी के चाय का मजा ही क्या! अपने राम तो ऐसे मौकों पर बिना चीनी की चाय ही गले के

नीचे उतार जाते, परन्तु सवाल तो साले साहब का था और वह भी बड़े साहब का। चाय के एक कप में चार चम्मच चीनी तो कम से कम उनके लिए होनी ही चाहिए और यदि कोई एक-दो चम्मच और डाल दे तो उन्हें कोई एतराज नहीं होता। लिहाजा मन-ही-मन उन्हें कोसते हुए मुझे उतरना ही पड़ा। चीनी आते ही साले साहब जो चुप्पी मारे रजाई में दुबके पड़े थे, चटपट कम्बल ओढ़कर उठ बैठे। आनन-फानन में चाय का प्याला और चीनी का बर्तन उनके सामने आ गया। बड़ी तबीयत से उन्होंने चीनी की चासनी तैयार की और फिर गरम-गरम चुसकियाँ लेते हुए उन्होंने चीनी के गुणगान करने शुरू किए। सुनते-सुनते जब कान पक गए तो मैंने बात बदलने की गरज से कहा, "जाने भी दीजिए, ये सब तारीफें तो आपके मुख से सैकड़ों बार सुन चुका हूँ, अब तो कोई नई बात सुनाइए।" साले साहब भला कब पकड़ में आने वाले थे? कहने लगे, "आज आपको ऐसा प्रयोग बताता हूँ कि सारी जिन्दगी याद रखेंगे। बड़े काम की बात है और यद्यपि बहुत कम लोगों को यह भेद मालूम है परन्तु आप पूछते हैं तो मैं बताए देता हूँ। सब गुण तो चीनी के सर्वविदित हैं परन्तु चीनी में एक ऐसा गुण भी है जो एक बार कुम्भकरण की निद्रा भी भंग कर सकता है। कितनी ही गहरी नींद सोने वाला हो, एक चुटकी चीनी उस पर रामबाण औषधि की तरह असर करती है। एक मिनट में अगर घुटने न टेक दे तो मेरा नाम बदल देना।" उनकी यह बात कुछ ऐसी थी कि मैं अपनी हँसी न रोक सका। मुझे हँसते देखकर उनका पारा चढ़ गया और वह कहने लगे, "आप मजाक समझते हैं परन्तु मैं बिल्कुल ठीक अर्ज कर रहा हूँ। कहो तो यहीं दिखा दूँ, परन्तु एक शर्त है।" मैंने पूछा—क्या? तो कहने लगे यदि मेरी बात सच निकले तो तुम्हें चीनी के गुण गाने पड़ेंगे।" मैंने उनकी यह शर्त स्वीकार कर ली और उन्होंने तुरन्त चीनी के बर्तन से एक चुटकी चीनी लेकर पास की खाट पर खुर्राटे भरती हुई सलहज के ओठों के बीच रख दी। सच मानिए एक सैकण्ड के अन्दर उनके खुर्राटे बन्द हो गए और उनकी जीभ होठों के अन्दर इस प्रकार घूमने लगी मानो स्वादिष्ट व्यंजनों का स्वाद चख रही हो। मिनट बीतते-बीतते उनकी आँखें धीरे से खुल गईं। हम लोगों को अपनी तरफ देखते हुए पाकर वह सकपका कर उठ बैठीं और हम हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए।

साले साहब जीत गए और मुझे भी अपना वचन निभाना ही पड़ा क्योंकि कई बार उनके पत्र आ चुके हैं और हर पत्र में वह अपनी माँग दुहरा देते हैं।

चीनी का पूर्व इतिहास

आइए तो सबसे पहले यह देखा जाय कि इतनी अनूठी चीज जिसके बिना

हमारे साले साहब जैसे व्यक्ति जी ही नहीं सकते किस वस्तु से तैयार की जाती है। सत्य तो यह है कि संसार के सभी भागों में चीनी का उत्पादन और उपयोग अति प्राचीन काल से होता रहा है और वहाँ कई वस्तुओं से चीनी तैयार करने का काम होता रहा है। जिन वस्तुओं से आजकल चीनी तैयार की जाती है उनमें खजूर, आलू, चुकन्दर और गन्ना मुख्य हैं। चुकन्दर से चीनी तैयार करने का सबसे पहला सफल प्रयास १८०० में किया गया। कुछ लोग इसका श्रेय नेपोलियन बोनापार्ट को प्रदान करते हैं। जो भी हो, यूरोप और अमेरिका में चीनी तैयार करने के लिए चुकन्दर का उपयोग आजकल बड़े पैमाने पर किया जाता है। इसके पूर्व गन्ना ही चीनी निकालने का मुख्य स्रोत था। हिन्दुओं के शास्त्रों और वेदों तक में चीनी और गन्ने की खेती का बार-बार उल्लेख मिलता है। भारत में गन्ने की खेती ईसा से हजारों वर्ष पूर्व से ही हो रही है और यहीं से जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और संसार के अन्य देशों में इसका प्रचार हुआ। भारत से ही इन देशों ने गन्ना उगाने और उससे चीनी और गुड़ उत्पन्न करने की कला सीखी, इसके निश्चित प्रमाण हमें अपने प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। पहले यह एक जंगली घास के रूप में उगता था। सर्वप्रथम आर्यों ने इसकी उपयोगिता समझी और उन्नत कृषि-विधियों का प्रयोग कर व्यवस्थित ढंग पर इसकी खेती शुरू की। इसका जो वर्तमान आकार-प्रकार है, उसका श्रेय आर्यों की कृषि-कुशलता और दक्षता को है। आज संसार में जितनी चीनी का उत्पादन होता है उसका दो तिहाई अंश गन्ने से ही तैयार किया जाता है।

चीनी तैयार करने के लिए उक्त चीजों का रस निकाला जाता है। पुराने जमाने में कोल्हू से पेल कर गन्ने आदि का रस निकाला जाता था लेकिन अब विज्ञान की उन्नति के कारण रस निकालने की विधियों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है।

हमारे देश में प्रायः गन्ने से ही चीनी और गुड़ तैयार किया जाता है। यूरोपादि देशों में चुकन्दर आदि का उपयोग भी विशाल पैमाने पर चीनी तैयार करने के लिए किया जाता है। चुकन्दर से रस निकालने की आधुनिकतम विधि आजकल 'डिफ्यूजन प्रोसेस' के नाम से विख्यात है।

चीनी तैयार करने की आधुनिक विधि

परन्तु गन्नों से आज भी पेर कर रस निकाला जाता है। हाँ, अब कोल्हू के स्थान पर बड़े-बड़े बेलन काम में लाए जाते हैं। गन्ने से चीनी का अधिकतम अंश खींच लेने के लिए उन्हें एक के बाद दूसरे बेलनों में उस समय तक पेरा जाता है,

जब तक उनका सारा रस नहीं निकल जाता और बुरादे की तरह की खोई नहीं बच जाती। इसके लिए तीन-तीन बेलनों की एक बैटरी होती है। ये बेलन सपाट नहीं होते। सब में खांचे बने होते हैं। आगे के बेलनों के खाँचे पहले के बेलनों से छोटे होते जाते हैं, क्योंकि बराबर पिलते रहने से गन्ना टूटता रहता है तथा उसका रेशा-रेशा अलग होता जाता है। अन्दर की बैटरी से गन्ने का रेशा बुरादा होकर निकलता है। भारतवर्ष की अधिकांश गन्ना-मिलों में यह बुरादा बॉयलरों की भट्ठियों में कोयले के तौर पर जलाने के काम आता है लेकिन अब उसका उपयोग अनेकों कार्यों में किया जाने लगा है। विदेशों में इस बचे हुए पदार्थ अर्थात् खोई का उपयोग करने की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की गई है जिसका उल्लेख मैं आगे चलकर करूँगा।

चीनी पानी में आसानी से घुल जाती है। रसहीन सीठी से भी बची-खुची चीनी आसानी से निकल जाए इसलिए उन्हें बेलन में डालने से पहले पानी खूब तर किया जाता है। सबसे आखिर के बेलनों की बैटरी में पेरने के पहले बेगास (रस निकला हुआ गन्ना) को पानी से खूब तर कर लेते हैं। इस क्रिया को आर्द्रीकरण कहते हैं। यह पानी गन्ने में बची-खुची मिठास को भी खींच लेता है।

रस को शुद्ध करने की विधि

इसको पेरते समय गन्ने के रेशे भी रस के साथ मिले रहते हैं। इसलिए पेरा हुआ सब रस आगे जाने के पहले छलनियों में छाना जाता है। यह छना हुआ रस फिर तोला जाता है और सफाई के लिए बने हुए हौजों में एकत्र कर दिया जाता है। गन्ने के इस रस में कितनी ही अशुद्धियाँ होती हैं। इन अशुद्धियों को निकालने के लिए एक रासायनिक विधि का इस्तेमाल किया जाता है, जिसे विशुद्धीकरण की विधि कहते हैं। ये विधियाँ दो प्रकार की होती हैं। एक तो 'सल्फरेशन' और दूसरी 'कार्बोनिशन'। पहली विधि में साफ करने के लिए गन्धक का धुँआ काम में लिया जाता है और दूसरी विधि में चूना पकाने में निकलने वाली गैस का इस्तेमाल होता है। पहला तरीका कम खर्चीला होने के कारण अधिक इस्तेमाल में आता है। इसके अलावा चूने का दूध भी चीनी साफ करने के काम में लाया जाता है। गरम किए हुए रस में यह दूध इतनी मात्रा में मिलाया जाता है कि रस चूने के दूध में आत्मसात हो जाता है। फिर इसमें गन्धक का धुंआ दिया जाता है। पर यह बराबर ध्यान रखा जाता है कि धुंआ इतना अधिक न लगने पाए कि रस तेजाबी रंग ले ले। इसके लिए एक बार पुनः चूने का दूध इसमें मिलाया जाता है, अधिकांश कूड़ा-करकट और अशुद्धियाँ इस क्रिया में दूर हो जाती हैं। इस क्रिया को ठारना कहते हैं।

रस को निथारने की नवीन पद्धति

जब रस इस प्रकार निथर कर साफ हो जाता है तो यह निथरा हुआ रस अलग कर लिया जाता है और फिर से इसे गाढ़ा करने की कोशिश की जाती है। मैल की मिठास को निकालने के लिए उसे दूसरे रासायनिक पदार्थों के साथ मिला कर उबाला जाता है और फिर उसे 'प्रेशर प्रेसों' से छान लिया जाता है। इस प्रकार अधिक से अधिक अंश निकाल लिया जाता है और इसे निथरे हुए रस के साथ गाढ़ा करने के लिए मिला दिया जाता है। इधर कुछ वर्षों में रस निथारने के तरीकों में बहुत सुधार हो गया है। आधुनिक ढंग की मिलें 'डौर' और 'स्क्रैपक्लियरिफ़ायर' नामक दो नवीन विधियों का इस्तेमाल करती हैं। इन विधियों में मैल लगा हुआ रस ऊपर से लगातार जाता रहता है और निथरा हुआ रस पेंदे से कुछ ऊपर लगातार निथरता रहता है।

वैकुअम पैन विधि

निथरा हुआ रस तब गाढ़ा किया जाता है। इसके लिए रस को भट्ठी की आँच पर खुले तौर पर नहीं उबालते, क्योंकि इस विधि में अधिक तापमान की आवश्यकता रहती है और इस प्रकार रस के जल जाने का भय बराबर बना रहता है। नीचे तापमान पर भी पानी को उबाला जा सकता है और इसी प्रक्रिया का उपयोग रस को गाढ़ा करके दाना तैयार करने के लिए किया जाता है, क्योंकि नीचे तापमान के कारण चीनी के जलन का कोई खतरा नहीं उत्पन्न होता। इस नई विधि को 'वैकुअम-पैन' विधि कहते हैं। चीनी का दाना तैयार करने में बड़ी सावधानी और सतर्कता की आवश्यकता होती है क्योंकि कई बार नकली दाने बनकर धोखा दे जाते हैं। जब दाना अपने रस में तैयार दीखने लगता है तो उसे अलग करने के लिए ठंडा करना पड़ता है। जिन बर्तनों में यह ठंडा किया जाता है उसे 'क्रिस्टलाइजर' कहते हैं और इनमें दानों को बराबर चलाते रहने के लिए फेरने लगे रहते हैं ताकि रवे एक स्थान पर ठर कर पत्थर की तरह कड़े न होने पाएँ।

अन्तिम प्रक्रिया

दानों के ठर जाने और बड़े हो जाने पर उन्हें निकालने का प्रयत्न किया जाता है। इसके लिए पहले तो उन्हें रस से अलग करना पड़ता है और फिर धोकर उन्हें स्वच्छ करना पड़ता है। इस काम के लिए प्रयुक्त होने वाली मशीन 'सेंट्रीफ्युगल मशीन' के नाम से विख्यात है। इस मशीन के अन्दर छलनी लगी रहती है। यह इतनी

तेज रफ्तार से घूमती है कि गाढ़े से भी गाढ़ा रस केन्द्रोपसारी शक्ति के कारण छलनी से बाहर निकल जाता है। इस छलनी के छेदों में से अतिशय छोटे दाने ही निकल पाते हैं। यह मशीन प्रति मिनट १२०० चक्कर लगाती है। रस के निकलने के साथ ही दानों की सफेदी चमकने लगती है। केन्द्रोपसारी शक्ति के कारण सब दाने उस छलनी से चिपक जाते हैं। तब इन दानों को स्वच्छ पानी की धार से धोया जाता है ताकि जो कुछ रस चिपका हो वह भी साफ हो जाए। इस क्रिया के बाद ये दाने स्वच्छ स्फटिक की तरह चमकने लगते हैं। ये दाने अधिक स्वच्छ और उज्ज्वल दीख पड़ें, इसलिये इसी दौरान में इन पर नील भी दे दिया जाता है और भाप से दानों को कुछ-कुछ सुखा लिया जाता। दाने अब ऐसे बर्तन में गिराए जाते हैं, जो छलनी की तरह निरन्तर आगे-पीछे और ऊपर-नीचे चलता रहता है। इस क्रिया से दाने छिटक कर अलग-अलग हो जाते हैं। शेष नमी सुखाने के लिए ये दाने ऐसे बर्तन में से गुजारे जाते हैं, जिनके सामने से गरम हवा निरन्तर बहती रहती है। बर्तन का एक सिरा ऊँचा रहता है। इसी सिरे से बर्तन में दाने गिराए जाते हैं। नीचे की तरफ लुढ़कते हुए कण गरम हवा का संसर्ग पाकर पूरी तरह सूख जाते हैं। यह चीनी पुनः छानी जाकर बोरियों में भरकर गोदामों में पहुँचा दी जाती है, जहाँ से यह बाजार और हमारे घरों में पहुँचती है।

सीठी का उपयोग

जैसा कि मैं ऊपर लिख आया हूँ भारत में अधिकांश चीनी मिलें सीठी को बॉयलरों की भट्ठियों में ईंधन के तौर पर जलाने के काम में लाती हैं परन्तु वास्तविकता यह है कि यह एक कीमती पदार्थ का अत्यधिक मूर्खतापूर्ण दुरुपयोग है, जैसा कि हमें आगे चल कर पता चलेगा। विदेशों में इस सीठी का उपयोग अब कई प्रकार की वस्तुएँ तैयार करने के लिए किया जाने लगा है। इस दिशा में निरन्तर अनुसंधान के फलस्वरूप विदेशों में आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त की गई हैं। १८३२ में अमेरिका की कोलरैक्स नामक कम्पनी ने गन्ने की सीठी से तन्तु-पट बनाने में सफलत्ता प्राप्त की। १८७४ में थामसन नामक एक व्यक्ति ने एक ऐसे यन्त्र का आविष्कार किया, जिससे गन्ने की सीठी से कार्बन बनाया जाता था। कार्बन के अलावा इससे एक प्रकार का सेल्यूलीज भी बनने लगा। कागज-निर्माण के उद्योग में भी गन्ने की सीठी का खूब इस्तेमाल होने लगा। १८३८ में बैरी नामक एक विज्ञानवेत्ता ने सीठे से कागज बनाने की प्रक्रिया को पेटेंट कराया था, परन्तु वह अधिक सफल नहीं रही। इसके बाद १८६६ में एक जर्मन रसायनशास्त्री ने भी इस दिशा में पर्याप्त अनुसंधान किया। १६०८ में ट्रिनडाड में गन्ने की सीठी, पैराघास और बाँस से कागज की

लुगदी तैयार की गई परन्तु यह प्रयोग अधिक सफल नहीं सिद्ध हुआ। अमेरिका में गन्ने की सीठी से शराब, ईंटें, मोम, अग्नि-प्रतिरोधक सामग्री तैयार करने की दिशा में सफल परीक्षण किए गए हैं। आजकल वहाँ गन्ने की सीठी से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तैयार करने का उद्योग अत्यन्त उन्नत अवस्था में है। हवाई जहाज और मोटरों की गाड़ियाँ, हवाई जहाज के पंखे, मकानों की छतें, प्लग, होल्डर, रेडियो कैबिनट, बिजली की वस्तुएँ और तरह-तरह के सामान और एक विशिष्ट प्रकार का पदार्थ गन्ने की सीठा से तैयार किया जाता है। यह पदार्थ कोनेक्स के नाम से विदित है। यह पदार्थ देखने में काले रबड़ जैसा चमकदार होता है और तेरह हजार पौंड तक दबाव सह सकता है। किसी काम में लाने पर यह फूटता और टूटता नहीं। विद्युत और उष्णता का यह पूर्ण निरोधक होता है और किसी भी अम्ल का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आग का भी इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। गन्ने के उद्योग के एक परम विशेषज्ञ और विद्वान् श्री एन० एस० चतुर्वेदी ने इस सम्बन्ध में अत्यधिक गवेषणापूर्ण पुस्तक लिखी है। यदि इस सम्बन्ध में मिलें दिलचस्पी लें और अधिक लगन के साथ अनुसन्धान करें तो एक उपयोगी सामग्री को नष्ट होने से बचाया जा सकता है, परन्तु दुःख का विषय है कि भारत की चीनी मिलें इस दिशा में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं दिखा रही हैं।

भारत में गन्ने की खेती

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से गन्ने की खेती होती आई है। गन्ने के लिए उष्ण प्रदेश की जलवायु सबसे अधिक उपयुक्त रहती है, लेकिन यह समउष्ण कटिबन्ध के देशों में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। संसार के कुछ प्रमुख गन्ना उत्पादक देश उष्ण कटिबन्ध में स्थित हैं। समउष्ण कटिबन्ध के देशों में भारत का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया को भी इस क्षेत्र में शामिल किया जा सकता है।

गन्ना उत्पादक क्षेत्र

भारत में गन्ना उत्पादक प्रदेश को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक भाग में उत्तरी और मध्य भाग के समउष्ण कटिबन्ध के प्रदेश तथा दूसरे में उष्ण प्रदेश के भाग अर्थात् प्रायद्वीप क्षेत्र आता है। जलवायु की दृष्टि से यद्यपि प्रायद्वीप क्षेत्र गन्ने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है परन्तु भारत में यह बात लागू नहीं होती। भारत का ९० प्रतिशत गन्ना-उत्पादक क्षेत्र उत्तरी भारत में ही स्थित है।

गंगा और जमुना का उपजाऊ मैदान

इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि गंगा और जमुना का उपजाऊ मैदान कृषि की दृष्टि से सर्वोत्तम है और यहाँ सिंचाई इत्यादि की उत्तम व्यवस्था है। जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ, इस प्रदेश में पतले गन्ने की खेती बहुत प्राचीन काल से होती आई है। पहले यह गन्ना एशिया महाद्वीप के दक्षिणी-पूर्वी इलाके में जंगली घास के रूप में पाया जाता था। यहीं से भारत के विभिन्न भागों में इसका प्रचार हुआ। गन्ने की सबसे उत्कृष्ट और उत्तम फसल बिहार और उत्तर प्रदेश में होती है। भारत भर में जितना गन्ना उत्पन्न होता है उसके आंकड़े इस प्रकार हैं—

गन्ने का उत्पादन

भारत के विभिन्न राज्यों में गन्ने का उत्पादन टनों में
(१९४८-४९ से १९५४-५५ तक)

समउष्ण कटिबन्ध के प्रदेश	१९४८ १९४९	४९-५०	५०-५१	५१-५२	५२-५३	५३-५४	५४-५५
१. उत्तर-प्रदेश	११.६	१२.५	११.६	१०.७	१०.०	१०.५	१२.३
२. पंजाब	११.३	११.२	११.९	११.८	११.२	११.४	११.७
३. पेप्सू	९.२	११.१	११.८	९.१	११.६	११.२	१६.६
४. बिहार	६.६	७ ३	७.५	७.२	६.८	६.१	७.६
५. बंगाल	१६.१	१५.३	१६.२	१७.८	२०.०	१३.८	२०.९
६. असम	११.०	११.०	११.७	११.२	११.२	९.६	९.५
७. मध्य-भारत	७.५	८.०	९.२	८.५	९.२	१३.३	१०.४
८. अन्य भाग	७.६	७.४	८.१	८.८	८.२	७.५	७.८
उष्ण कटिबन्ध के प्रदेश							
१. आंध्र, मद्रास	१३.३	२७ ६	२६.८	२६.७	२७.८	२६.१	२६.५
२. बम्बई	३१.१	२९.०	२८.९	२८.४	२४.८	२६.९	२७.५
३. हैदराबाद	१८.३	२०.६	२१.५	२१ ०	१८.३	२१.३	२२.४
४. उड़ीसा	१९.४	१७.६	१७.९	१८.७	१६.१	१६.९	१७.२
५. मैसूर	१८.८	१६.९	१६.९	१८.४	१७.७	१६.७	१५.३
६. मध्य-प्रदेश	१२.२	१२.८	१२.०	१२.०	११.५	११.८	१२.८
७. अन्य भाग	१२.०	१३.१	२९.४	१५.२	१७.३	२१.०	२४.२
कुल औसत	१३.२	१३.६	१३.३	१२.७	११.७	१२.५	१३.९

—'इंडियन सूगर इंडस्ट्रीज एनुअल' १९५४-५५ से उद्धृत

गन्ना उत्पादन की दृष्टि से उत्तर प्रदेश को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—पूर्वी भाग, मध्यवर्ती भाग और पश्चिमी भाग। पूर्वी प्रदेश में औसतन ४० से ४८" तक, मध्य भाग में ३८ से ४१" तक और पश्चिमी क्षेत्र में २६ से ५०" तक वर्षा होती है। गंगा के उपजाऊ मैदान की मिट्टी में नाइट्रोजन, चूना और पोटाश विद्यमान है, यद्यपि नाइट्रोजन की मात्रा कुछ घट गई है। गन्ना उत्तर प्रदेश की एक प्रमुख फसल मानी जाती है। बिहार की जलवायु गन्ने के लिए उतनी उपयुक्त नहीं है। बिहार के बाद पंजाब का और फिर बंगाल का नम्बर आता है। संक्षेप में गन्ना नम और तर जलवायु में खूब पनपता है। भारत के विभिन्न भागों में प्रति एकड़ गन्ने का उत्पादन और उस पर आने वाली लागत के आँकड़े निम्न हैं—

प्रति एकड़ उत्पादन और उस पर आने वाली लागत

१९४८-४९ में प्रकाशित आँकड़ों के अनुसार

राज्य	प्रति एकड़ उत्पादन व्यय रु० में	प्रति एकड़ उत्पादन मनों में	प्रति मन पर आने वाली लागत
१. उत्तर-प्रदेश			
(क) पश्चिमी	५९६-१५-०	४९०	१- ४- ०
(ख) मध्य	५६२- ९-०	४७०	१- ३- २
(ग) पूर्वी	५१२-१३-०	४३०	१- ८- १
२. बिहार	५०६-१२-०	३८०	१- ७-१०
३. मद्रास	११३०- ७-७	१०५३	१- १- २
४. बम्बई	११५१-१०-०	११२०	१- ०- ६
५. मध्य-प्रदेश	५०३- ८-०	३००	१-१०-१०
६. उड़ीसा	५८०- ०-०	५००	१- २- ७
७. पूर्वी पंजाब	४७१- ०-०	३५०	१- ५- ३
८. पं० बंगाल	८६१- ०-०	५९८	१-१०- १

—'इंडियन सूगर इंडस्ट्रीज एनुअल' १९५४-५५ से उद्धृत

भारत के विभिन्न भागों में उत्पन्न होने वाले गन्ने में चीनी का जो अंश पाया जाता है, वह संसार के विभिन्न देशों में उगाए जाने वाले गन्ने में विद्यमान चीनी के अंश की तुलना में बहुत कम है। एक यही तथ्य इस बात का सूचक है कि भारत

में गन्ने की खेती अभी कितनी पिछड़ी हुई है और उसमें सुधार करने की कितनी आवश्यकता है। नीचे दिए हुए आँकड़ों से इस बात का पता चलता है कि भारत के गन्ने में चीनी का कितना अंश पाया जाता है और संसार की तुलना में उसकी स्थिति क्या है—

भारत के विभिन्न प्रान्तों में गन्ने में चीनी का अंश
१९४१-१९५६ तक (प्रतिशत में)

भारत में अधिकतम अंश	भारत का औसत	उत्तर प्रदेश	बिहार	बम्बई
११.१५	९.९९	९.८७	९.८६	९.९४
१३.३५	१०.२८	१०.१६	१०.९३	१०.६४
१२.८५	१०.०२	९.९२	१०.५३	१०.९८
११.८४	१०.२१	१०.२०	१०.६९	१०.७९
१२.२८	१०.०९	१०.०९	१०.४९	१०.९७
१३.४६	९.८८	१०.०३	१०.०८	१०.३०
११.९३	९.८५	९.८०	१०.४९	११.०५
१२.५३	९.९७	९.९३	१० ३४	१०.८३
१३.१०	९.८९	९.६४	९ ९१	११.८४
१३.३४	९.९९	९.८१	१०.२६	११.६१
९.५७	९.५७	९.२७	१०.३२	११.०८
१२.७०	९.९६	९.७५	१०.०३	११.५१
१३.०७	१०.०७	९.८८	१०.०६	११.७७
१२.६८	९.९३	९.६६	१०.२३	११.६७

—'इंडियन सूगर इंडस्ट्रीज एनुअल' १९५४-५८ से उद्धृत

तुलनात्मक विवरण

नीचे प्रस्तुत तुलनात्मक विवरण और तालिका से आपको यह भली-भाँति पता चल जाएगा कि पिछले वर्षों में निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर भी हमारे देश में गन्ने में चीनी का अंश अन्य देशों की तुलना में कितनी कम मात्रा में पाया जाता है—

विभिन्न देशों में एक एकड़ भूमि में उत्पन्न होने वाला गन्ना और उससे प्राप्त होने वाली चीनी सम्बन्धी आँकड़े

देश	गन्ने का उत्पादन टनों में	गन्ने का उत्पादन मनों में	चीनी के अंश का प्रतिशत	प्रति एकड़ उत्पादन टनों में	प्रति एकड़ उत्पादन मनों में
क्यूबा	१७.१२	४६५.६	१२.२५	२.०९५	५७.०३
लुईजियाना(अमे.)	१९.८४	५३६.८	८.०६	१.६०२	४३.५८
प्वेर्टोरिको	२४.१६	६५७.७	१२.२३	२.९५६	८०.४४
हवाई	६२.०	१६८९.०	१०.४६	६.४८९	१७६. ६
ट्रिनडाड	—	—	—	—	—
मैक्सिको	१९.५४	५३१.८	९.२०	१.८१७	४९.४४
मार्टीनिको	१७.९३	४८७.८	८.१३	१.४५८	३९.६८
अर्जेनटीना	१३.०५	३५१.१	९.८९	१.२००	३५.१३
ब्राजिल	१५.६८	४२६.८	४.९७	०.७७१	१९.७१
मौरसिस	१९.६३	५३४.३	१२.०८	२.३७०	६४.५१
जावा	५६.२०	१५३०.३	११.४९	६.४४०	१७५.३९
भारत	१४.७०	३९९.९	९.५०	१.३९४	३७.९५
आस्ट्रेलिया	२१.३४	५८०.९	१४.३३	३. ०७	८३.०८

—'इंडिया एट ए ग्लांस' पुस्तक से

यहाँ पर इस बात की जानकारी देना भी परमावश्यक है कि भारत में कुल कितनी भूमि में गन्ने की खेती होती है। यहाँ पर विभिन्न वर्षों में गन्ने की खेती के क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए, उन्हें स्पष्ट करने के उद्देश्य से यहाँ पर १९३९-५६ के आँकड़े प्रस्तुत हैं—

गन्ने के उत्पादन-क्षेत्र में हुआ परिवर्तन

वर्ष	गन्ने की खेती के लिए इस्तेमाल होने वाली भूमि १०००, एकड़ों में
१९३९-४०	३११७
४०-४१	३९८५

वर्ष	गन्ने की खेती के लिए इस्तेमाल होने वाली भूमि १०००, एकड़ों में
४१-४२	२६४४
४२-४३	३०६२
४३-४४	३६०२
४४-४५	३५३१
४५-४६	३२०१
४६-४७	३५२८
४७-४८	४०५६
४८-४६	३७५२
४६-५०	३६२४
५०-५१	४२१७
५१-५२	४७६२
५२-५३	४२७२
५३-५४	३४६८
५४-५५	३६३२
५५-५६ (अनुमान)	३६३०

—'इण्डियन सूगर इण्डस्ट्री एनुअल' से उद्धृत

इस समय लगभग ४० लाख एकड़ भूमि में गन्ने की खेती होती है। चीनी का सबसे अधिक अंश उत्तर प्रदेश के गन्ने में पाया जाता है यद्यपि हाल के कुछ वर्षों में बम्बई राज्य भी इस दिशा में आगे बढ़ रहा है। फिर भी, जैसा कि उक्त आंकड़ों से विदित हो चुका है, भारत के गन्ने में विदेशी गन्ने की तुलना में चीनी का अंश अपेक्षाकृत बहुत कम पाया जाता है।

गन्ने की खेती में सुधार

१६३२ में सरकार द्वारा चीनी उद्योग को संरक्षण प्रदान करने के बाद देश में गन्ने के उत्पादन क्षेत्र में वृद्धि हुई। १६२७-३१ में देश में २८ लाख एकड़ भूमि में गन्ने की खेती होती थी, लेकिन संरक्षण प्रदान करने के बाद गन्ने की खेती का क्षेत्र

बढ़कर ४० लाख एकड़ से भी अधिक पहुँच गया। लेकिन आँकड़ों को देखने से पता चलता है कि भारत में गन्ने की प्रति एकड़ उपज बहुत कम है। यहाँ प्रति एकड़ भूमि में १३ से १४ टन तक गन्ना उत्पन्न होता है जबकि पेरू में, प्रति एकड़ उत्पादन ४१.१४ टन और जावा का उत्पादन ५६.२० टन प्रति एकड़ है। इससे इस बात का अन्दाजा लगाया जा सकता है कि भारत में गन्ने की नस्ल और उत्पादन-विधियों में सुधार करने की कितनी अधिक आवश्यकता है।

परीक्षण और अनुसंधान

१६४४ में भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् की स्थापना के बाद से गन्ने की नस्लों और उत्पादन-विधियों में आशातीत सुधार हुआ है। देश के विभिन्न भागों में गन्ने के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने के लिए अनेक परीक्षण-केन्द्रों की स्थापना हुई है, जिन्होंने कठोर परिश्रम करके अनेकों उत्तम दोगली नस्लों का विकास किया है। कोयम्बटूर का परीक्षण केन्द्र इसके लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इस केन्द्र के प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत में अच्छी नस्ल के बीज तैयार होने लगे हैं और इस प्रकार हर वर्ष १५ से २० करोड़ तक रुपया विदेशों में जाने से बच गया है। आजकल लगभग ६५ प्रतिशत फार्मों में सुधरी हुई नस्ल का गन्ना उगाया जाता है। लेकिन एक निराशाजनक बात यह है कि ऐसी कोई प्रभावशाली व्यवस्था अभी तक नहीं की जा सकी है, जिसके द्वारा इन केन्द्रों के लाभप्रद अनुसन्धानों से किसानों को तुरन्त अवगत कराया जा सके। वस्तुतः जब तक किसानों के हृदय में विश्वास नहीं उत्पन्न किया जाता, ये परीक्षण अधिक सफल नहीं हो सकते। फल यह हुआ है कि आज भी भारतीय गन्ने में चीनी का अंश १३ प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़ पाया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना का उत्पादन लक्ष्य

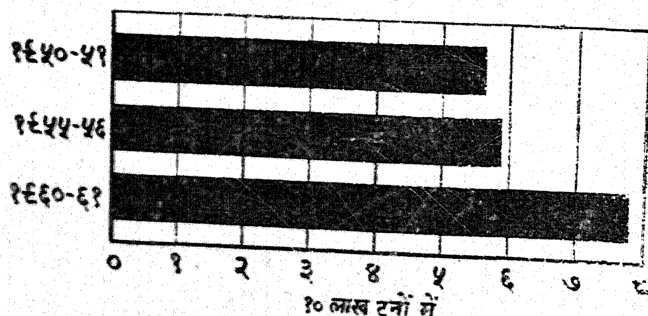
प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत गन्ने का निर्धारित उत्पादन लक्ष्य एक वर्ष पूर्व ही पूरा कर लिया गया था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत सरकार ने चीनी तथा गन्ने सम्बन्धी विभिन्न अनुसन्धान कार्यों और प्रचार कार्य पर काफी बड़ी रकम खर्च करने का निर्णय कर लिया है। केवल उत्तर प्रदेश की सरकार ही द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में विभिन्न विकास कार्यों पर कुल ४ लाख ६६ हजार ६६० रु० खर्च कर रही है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में गन्ना-उत्पादन के क्षेत्र में जो प्रगति हुई है उसका विवरण इस प्रकार है—

गन्ना-उत्पादन सम्बन्धी विकास योजना (१९५४-५५ तक)

राज्य	औसत उत्पादन प्रति एकड़ १९४८-४९ टनों में	विकास योजना क अधीन क्षेत्रों में प्रति एकड़ उत्पादन टनों में	१९५५-५६ का उत्पादन लक्ष्य टनों में	विकास योजना के अधीन क्षेत्र हजारों एकड़ों में
उत्तर-प्रदेश	१२.६	१८.८५	२०.५	३०८. ०
बिहार	१२.०	१८.४०	२०.०	९४. ०
पंजाब	१२.६	२०.०७	२६.०	३३. ०
बम्बई	३१.०	४२. १ :क: दक्षिण का नहरी क्षेत्र २४. ०:ख:कर्नाटक २८. ० :ग: कोल्हापुर	३२४.१	८६. ०
मद्रास	२५.७	३७. ९	३६.५	३६.४६
आंध्र	२५.०	३०.४६	३४.०	५३.४४
मैसूर	१८.८	३१. ४	५३.०	६. ०
पं० बंगाल	१६.१	२१. ०	२२.०	५. ०

—सूगर इण्डस्ट्री एनुअल से उद्धृत

हमारी द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ४० लाख एकड़ भूमि में ही



७७० लाख टन गन्ना उत्पन्न करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। विशेषज्ञों की राय है कि कीटमार औषधियों, रासायनिक खादें और उन्नत उत्पादन-विधियों का प्रयोग करके इस लक्ष्य को प्राप्त करना सम्भव हो सकता है तथा कम से कम ६०० मन प्रति एकड़ तक गन्ना उत्पन्न किया जा सकता है। इस दिशा में निरन्तर प्रयत्न करना परमावश्यक है, क्योकि भारत के चीनी उद्योग का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि प्रति एकड़ अधिक से अधिक गन्ना उत्पन्न करके चीनी का उत्पादन-व्यय घटाया जाए। इस समय चीनी के उत्पादन पर जो लागत बैठती है उसका ६० प्रतिशत भाग तो गन्ने की कीमत के रूप में जाता है। इसलिए इस व्यय में कमी करने की अत्यधिक आवश्यकता है।

भारत में आधुनिक चीनी उद्योग का विकास

भारत में आधुनिक ढंग के चीनी उद्योग को प्रारम्भ करने की दिशा में सर्व-प्रथम प्रयत्न उत्तरी बिहार में १८४१ में कुछ डचों ने किया। १८६६ में अंग्रेजों ने भी इस उद्योग में दिलचस्पी लेना शुरू किया। कई बार असफलता का सामना करने के बाद १६०३ में भारत में चीनी उद्योग की स्थिति बहुत कुछ सुदृढ़ हो गई।

१६२० में भारतीय चीनी उत्पादकों के अनुरोध पर तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने उद्योग की स्थिति की जाँच करने के लिए एक समिति नियुक्त की। उस समय भारत में चीनी मिलों की संख्या २२ थी तथा उनमें से १० उत्तरी बिहार में तथा ५ उत्तर प्रदेश और बिहार के सीमावर्ती इलाके में स्थित थीं। १६३२ में जब भारत सरकार ने चीनी उद्योग को संरक्षण प्रदान किया, मिलों की संख्या बढ़कर ३१ तक पहुँच गई। इनमें से १४ मिलें उत्तर प्रदेश में, १२ बिहार में तथा शेष अन्य राज्यों में थीं। इन मिलों का कुल उत्पादन १ लाख ५६ हजार टन था। उत्तर प्रदेश का उत्पादन ६६ हजार टन तथा बिहार का ४५ हजार टन था। इस प्रकार भारत में तैयार होने वाली कुल चीनी का लगभग ६० प्रतिशत भाग इन दोनों प्रान्तों में ही तैयार होता था।

इस प्रकार संरक्षण प्रदान करने के समय उत्तर प्रदेश और बिहार प्रमुख चीनी उत्पादक केन्द्र थे। उत्तर प्रदेश और बिहार के उद्योगपतियों ने संरक्षण का पूरा-पूरा लाभ उठाया और 'वैकुअम विधि' का उपयोग करने वाली मिलों का उत्पादन बढ़कर १० लाख टन प्रतिवर्ष तक पहुँच गया। १६४० में वैकुअम पैन फैक्टरियों की संख्या इस प्रकार थी—

	३६-३७	३९-४०
१. बंगाल	६	९
२. बिहार	३३	३२
३. उत्तर-प्रदेश	७०	७२
४. पंजाब	५	३

—मेजर इण्डस्ट्रीज ऑफ इण्डिया ५४-५५ से उद्धृत

युद्धपूर्व का उत्पादन

१९३१-३२ से १९३४-३५ तक और ३५-३६ से ३८-३९ तक इन मिलों का उत्पादन इस प्रकार था—

हजारों टनों में

	औसत उत्पादन १९३१-३२ से १९३४-३५ तक	औसत उत्पादन १९३५-३६ से १९३८-३९ तक
बंगाल	४	२०
बिहार	१३२	२४२
उत्तर-प्रदेश	२०१	५१७
पंजाब	३	१५

—इण्डियन इयर बुक से उद्धृत

इस प्रसंग में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि चीनी उत्पादन के क्षेत्र में बिहार की तुलना में उत्तर प्रदेश का पलड़ा दिनों-दिनों भारी पड़ता गया। एक उल्लेखनीय बात और भी दृष्टिगोचर हुई कि पंजाब और बंगाल के चीनी उत्पादन में इस बीच में दुगनी वृद्धि हो गई। १९४०-४१ में बिहार और उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय सरकारों ने चीनी उत्पादन की अधिकतम मात्रा निर्धारित कर दी अतएव इन प्रान्तों का उत्पादन सीमित रहा। संरक्षण प्रदान करने के समय दक्षिण में केवल मद्रास ही ऐसा क्षेत्र था जहाँ चीनी मिलों द्वारा चीनी तैयार करने का कार्य होता था। मद्रास के उत्तरी तटवर्ती इलाके की भूमि गन्ने के उत्पादन के लिए आदर्श थी, अतएव मद्रास का यह इलाका चीनी का उत्पादन प्रमुख केन्द्र बना रहा। युद्ध समाप्त होने के बाद और भारत के विभाजन के पूर्व तक भारत में चीनी मिलों की संख्या और उनका कुल उत्पादन इस प्रकार था—

भारत में चीनी मिलों की संख्या (विभाजन के पूर्व)
१९३८-३९ से ४४-४५ तक

वर्ष	मिलों की संख्या	चीनी का उत्पादन टनों में	आयात टनों में
१९३८-३९	१३२	७,४९,०००	३३१,४००
१९३९-४०	१३८	१८,४८,८००	६६,८३६
१९४०-४१	१४०	१२,७१,०००	४३,२१७
१९४१-४२	१४१	८,६२,८००	३०,४५१
१९४२-४३	१४१	१२,५५,५००	८
१९४३-४४	१४५	१३,४५,७००	१४
१९४४-४५	१३६	१०,६३,३००	३०

—'मेजर इण्डस्ट्रीज ऑफ इण्डिया' १९५४ से उद्धृत

युद्ध समाप्त हो जाने के बाद भारत स्वाधीन हुआ और उसका विभाजन हो गया। अतएव पंजाब का कुछ पश्चिमी क्षेत्र और पूर्वी बंगाल पाकिस्तान के अधिकार में चला गया। विभाजन के तुरन्त बाद भारत में चीनी मिलों की कुल संख्या और उनके उत्पादन सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

मिलों की संख्या और उत्पादन १९४४-४५ से ५५-५६ तक

वर्ष	मिलों की संख्या	चीनी का उत्पादन टनों में	आयात टनों में
१९४४-४५	१३६	१०६३३००	३०
४५-४६	१३८	१०३३८००	
४६-४७	१३५	१००१८००	
४७-४८	१३४	११८५२००	१४३८९
४८-४९	१३६	११२५०००	५
४९-५०	१३९	११५४४००	
५०-५१	१३८	१२२९१००	३५०००
५१-५२	१३९	१५८३७००	
५२-५३	१३४	१४०६२००	५९०००
५३-५४	१३४	१०३९७००	६९३०००
५४-५५	१३६	१७३९६००	५०३०००
५५-५६	१४५	१८०००००	
१९६०-६१	२४०	२३५०६००	

—'इण्डिया एट ए ग्लान्स' पुस्तक से उद्धृत

भारत में चीनी की खपत और उत्पादन

चीनी विकास परिषद् के आँकड़ों के अनुसार १९५०-५१ में भारत में प्रति व्यक्ति पीछे चीनी की खपत ६.७ पौंड, १९५१-५२ में ७.१८ पौंड तथा १९५२-५३ में १०.०४ पौंड थी। गुड़ और चीनी को मिलाकर १९५०-५१ में यह खपत प्रति व्यक्ति पीछे २७.६३ पौंड, ५१-५२ में २७.९५ पौंड, ५२-५३ में २८.८० पौंड और ५४-५५ में केवल २७ पौंड थी। भारत में १९४४-४५ से लेकर १९५४-५५ तक प्रति वर्ष जितनी चीनी खपी, उसके आँकड़े इस प्रकार हैं—

भारत में चीनी की खपत और उत्पादन १९४४-४५ से १९५४-५५ तक

वर्ष	चीनी की खपत टनों में	उत्पादन टनों में	प्रति व्यक्ति खपत पौण्डों में	गुड़ और चीनी की प्रति व्यक्ति खपत पौण्डों में
१९४४-४५	१२३६०००	३३१.४६	८. ०	२२. १
४५-४६	१०४८०००	३३४.५५	६. ०	२२. ०
४६-४७	९७२०००	३३७.६४	५. ९	१७. ५
४७-४८	१०४५०००	३४०.७४	७. ५	१७. २
४८-४९	११८२०००	३४३.८८	८.९६	२०.९६
४९-५०	११८४४००	३४७.००	७. ०	२०.४६
५०-५१	१२०४०००	३६१.००	६ ७०	१७.९१
५१-५२	१२७४०००	३६६.००	७.१८	१७.८८
५२-५३	१७३४०००	३७१.००	१०.०४	१६.००
५३-५४	१९२२०००	३७५.००	१०.९२	१७.९१
५४-५५	१९५००००	३८० ००	१० ००	१७.८८

—मेजर इण्डस्ट्रीज ऑफ इण्डिया' १९५५ से उद्धृत

अन्य देशों की तुलना में भारत में चीनी और गुड़ की खपत बहुत कम है। नीचे की दो तालिकाओं में ससार के कुछ देशों में प्रति व्यक्ति पीछे चीनी की खपत तथा कुल खपत के आंकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं, जिससे स्थिति पूरी तरह स्पष्ट हो जाएगी ?

तुलनात्मक विवरण

संसार के देशों में—

प्रति व्यक्ति पीछे चीनी की खपत पौण्डों में

देशों के नाम	प्रति व्यक्ति पीछे खपत १९४८-४९	प्रति व्यक्ति पीछे खपत १९५१ में	प्रति व्यक्ति पीछे खपत १९५३ में
१. आस्ट्रेलिया	१३०. ०	१२६. ६	११४. ६
२. मिस्र	२९. ६	३०. ०	११३. ५
३. फ्रांस	५५. ०	५६. ५	५५. ३
४. भारत	२६. ५	३६	४४
५. न्यूजीलैण्ड	११६. ०	१०८. ३	११०. २
६. पोलैण्ड	४६. ०	४३. ४	११०. २
७. इंग्लैण्ड	६०. ०	६३. ३	८६
८. अमेरिका	११५. ०	१०३. ६	९६. ६
९. रूस	२६. ६		
१०. जावा			
११. जापान	८	१३. ६	.२४
१२. मैक्सिको	५६	५४. ०	५२. २
१३. पाकिस्तान		५. १	
१४. आयरलैण्ड	८५	११६. ०	११०. ०
१५. क्यूबा	१६८	१२९. ०	१०६. ३
१६. नार्वे	६०. ०		७०. ५

—इण्डियन इयर बुक १९५५ से उद्धृत

संसार के कुछ प्रमुख भागों में चीनी की कुल खपत सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

१० लाख टनों में

महाद्वीप	१९४९-५०	५०-५१	५१-५२	५३-५४	५४-५५
१. उत्तरी और मध्य अमेरिका	९.५०	८.९०	९.४३	९.८५	९.९६
२. दक्षिण अमेरिका	२.७०	२.९०	३.०५	३.३५	३.३९
३. अफ्रीका	१.६०	१.७६	१.६८	१.८६	१.९८
४. यूरोप	११.७०	१३.००	१३.२५	१५.४८	१५.७९
५. एशिया	३.५०	४.५०	४.६२	६.२७	६.४५
६. औसीनिया	०.६४	०.६५	०.६७	०.६२	०.६५
कुल योग	२९.६४	३१.७२	३२.७०	३७.३८	३८.२३

—सूगर इण्डस्ट्री एनुअल' १९५५ से उद्धृत

आंकड़ों का अध्ययन करने से भी पता चलता है कि १९५४-५५ में भारत में चीनी की खपत १९ लाख टन से घटकर १८ लाख टन प्रतिवर्ष ही रह गई जब कि आशा यह की जाती थी कि इस वर्ष कम से कम २० लाख टन चीनी खप जाएगी। भारत में १९५०-५१ में ८६.५ करोड़ रुपए मूल्य की, ५१-५२ में ९६ करोड़ रुपये मूल्य की, ५२-५३ में १४० करोड़ रुपये मूल्य की, ५३-५४ में १५२ करोड़ रुपये मूल्य की तथा ५४-५५ में १५२ करोड़ रुपये मूल्य की चीनी खपी।

लेकिन भारत में प्रति व्यक्ति पीछे चीनी की खपत अन्य देशों की तुलना में कम होने पर भी भारत में प्रतिवर्ष ४८ लाख टन चीनी और गुड़ खपता है, जब कि दक्षिण अमेरिका में प्रतिवर्ष केवल ३३ लाख ९० हजार टन, अफ्रीका में १९ लाख टन, भारत समेत एशिया में ६४ लाख ५० हजार टन और उत्तरी अमेरिका में ९९ लाख ६० हजार टन चीनी खपती है। संसार में कुल जितनी चीनी खपती है उसका १/९ भाग भारत में खपती है। समस्त संसार में ३ करोड़ ८७ लाख २० हजार टन चीनी पैदा होती है, जिसकी १/९ हिस्सा अर्थात् ४५ लाख टन चीनी भारत में उत्पन्न होती है। इस बात के संकेत दृष्टिगोचर हो रहे हैं कि भारत में चीनी का अधिक मात्रा में उपयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। लोग गुड़ की अपेक्षा चीनी को इस्तेमाल करना अधिक पसन्द करते हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत चीनी की खपत में वृद्धि करने का जो नया लक्ष्य निर्धारित किया गया है, उसके आंकड़े इस प्रकार हैं—

द्वितीय पंचवर्षीय योजना का उत्पादन लक्ष्य

वर्ष	उत्पादन १० लाख टनों में	खपत लाखों टनों में चीनी, खाँड और गुड़	प्रति व्यक्ति पीछे खपत
५०-५१	३६१	४४.५८	२७.६६
५१-५२	३६६	४५.१४	२७.६८
५२-५३	३७१	४६.३०	२७.९५
५३-५४	३७५	४८.२२	२८.८०
५४-५५			
अनुमानित लक्ष्य			
६०-६१	४१०	५२.७२	२८.८०

—द्वितीय पंचवर्षीय योजना से उद्धृत

चीनी का आयात और निर्यात

१९४१-४२ तक भारत विदेशों से विशाल परिमाण में चीनी का आयात करता था लेकिन १९४२-४३ में सरकार ने विदेशों से चीनी का आयात बिलकुल बन्द कर दिया जैसा कि निम्न आँकड़ों से भली-भाँति स्पष्ट है—

वर्ष	आयात टनों में
१९३८-३९	३३१,४००
३९-४०	९९,८३९
४०-४१	४३ २१७
४१-४२	८० ४५१
४२-४३	८
४३-४४	१४
४४-४५	३०
४५-४६	
४६-४७	

—'इण्डियन सूगर इण्डस्ट्री एट ए ग्लान्स' से उद्धृत

१९४७-४८ में कुछ खास आवश्यकताओं के कारण सरकार ने विदेशों से १४३८८९ टन चीनी का आयात करने की इजाजत दे दी थी। इस आयात का उद्देश्य देश में चीनी की तात्कालिक कमी की पूर्ति करना था। इसके उपरान्त १९५०-५१ में भारत को पुनः ५५ हजार टन चीनी का आयात करना पड़ा। एक वर्ष छोड़ कर अर्थात् १९५२-५३ में भारत ने विदेशों से पुनः ५९००० टन चीनी मँगाई। १९५२-५३ में गन्ने की कीमत घटा देने के कारण देश में गन्ने का उत्पादन घट गया, जिसके फलस्वरूप देश में कम परिमाण में चीनी तैयार हुई। उत्पादन में कमी होने के फलस्वरूप देश में चीनी की कमी हो गई, जिसकी पूर्ति के लिए भारत को १९५३-५४ में विदेशों से ६.९३ लाख टन चीनी आयात करनी पड़ी। इसके बाद १९५४-५५ में भी सरकार ने लगभग ५.१९ लाख टन चीनी विदेशों से मँगाई ताकि देश में पुनः चीनी की कमी न होने पाए। १९५४-५५ में भारत में १५.९४ लाख टन चीनी का उत्पादन हुआ। आयात की गई चीनी को मिलाकर देश में चीनी का अच्छा खासा स्टाक एकत्र हो गया। यह अनुभव करके कि देश में चीनी का स्टाक आवश्यकता से अधिक हो गया है, सरकार ने १९५५-५६ में चीनी का आयात न करने का निर्णय किया।

भारत की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत देश में चीनी उद्योग के विकास का जो कार्यक्रम तैयार किया गया है, उसका उद्देश्य देश को चीनी उत्पादन के सम्बन्ध में आत्म-निर्भर बनाना है। इस विकास योजना के अन्तर्गत योजना की अवधि-काल में देश में चीनी-उत्पादन का वार्षिक लक्ष्य २२.५ लाख टन निर्धारित किया गया है। यह अनुमान लगाया गया है कि १९६०-६१ तक देश की जनसंख्या ४१ करोड़ तक पहुँच जाएगी। इस जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रतिवर्ष २२.५ टन लाख चीनी पर्याप्त होगी। यह आशा है कि १९६०-६१ के बाद भारत को विदेशों से चीनी आयात करने की आवश्यकता नहीं रह जाएगी। सुलभ आँकड़ों के अनुसार १९४५-४६ से १९५४-५५ तक भारत ने विदेशों से कुल २६ करोड़ रुपये मूल्य की चीनी आयात की।

हमने विदेशों से चीनी का आयात करने पर पिछले वर्षों में विशाल धनराशियाँ व्यय की हैं परन्तु दूसरी ओर बहुत कम मूल्य की चीनी हम विदेशों को निर्यात कर सके हैं। १९५२-५३ से १९५४-५५ तक (अप्रैल से मार्च तक) के तीन वर्षों में हमने विदेशों को कुल ९५ हजार टन चीनी निर्यात की है जिसका मूल्य लगभग ४७२ लाख रुपये बैठता है। इसके अलावा पिछले २३ वर्षों में अर्थात् १९३२-३३ से लेकर १९५५ तक हमने १९.२३ करोड़ रुपये मूल्य की मशीनें विदेशों से आयात की हैं। १९५२-५३ से १९५४-५५ के बीच आयात की गई मशीनों का मूल्य लगभग २.२४ करोड़ रुपया है। १९३२ से १९५५ तक आयात की गई मशीनों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

वर्ष	मूल्य हजारों रुपये में	वर्ष	मूल्य हजारों रुपये में	वर्ष	मूल्य हजारों रुपये में
१९३२-३३	१.३११	४०-४१	४०८७	४८-४९	१५१७९
३३-३४	३३६३८	४१-४२	२०४१	४९-५०	१७४२५
३४-३५	१०५४५	४२-४३	७७३	५०-५१	९९९३
३५-३६	६५७०	४३-४४	८२०	५१-५२	६९४६
३६-३७	९५१६	४४-४५	११०७	५२-५३	६४२४
३७-३८	६९३७	४५-४६	३०४३	५३-५४	६९१४
३८-३९	६१३६	४६-४७	५५४४	५४-५५	९१९८
३९-४०	५०८४	४७-४८	९४६७		

—'सूगर इण्डस्ट्री एट ए ग्लांस' से उद्धृत

सुलभ आँकड़ों के अनुसार भारत सरकार को आयात-कर के रूप में काफी आमदनी हुई है। १९३१-३२ से लेकर अब तक भारत सरकार को आयात कर के रूप में जो आमदनी हुई है उसका विस्तृत विवरण यहाँ दिया जाता है—

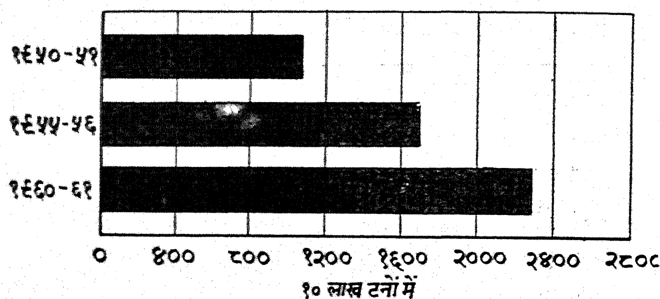
वर्ष	आय रुपयों में	वर्ष	आय रुपयों में
१९३१-३२	८१००७०००	४३-४४	४१४०००
३२-३३	६८४७६०००	४४-४५	१०००
३३-३४	४७२०४०००	४५-४६	१४०००
३४-३५	३८१३५०४०	४६-४७	२०००
३५-३६	३२४१६०००	४७-४८	१०००
३६-३७	५०५२०००	४८-४९	२५५३०००
३७-३८	२५३३०००	४९-५०	४०००
३८-३९	४५२२०००	५०-५१	६८०००
३९-४०	३९६०८०००	५१-५२	८२९१०००
४०-४१	१८२४०००	५२-५३	३०००
४१-४२	१९४०००	५३-५४	१३५३२०००
४२-४३	५६३००	५४-५५	१९५५४१०००

—'इण्डिया एट ए ग्लांस' से उद्धृत

मजदूरों की स्थिति

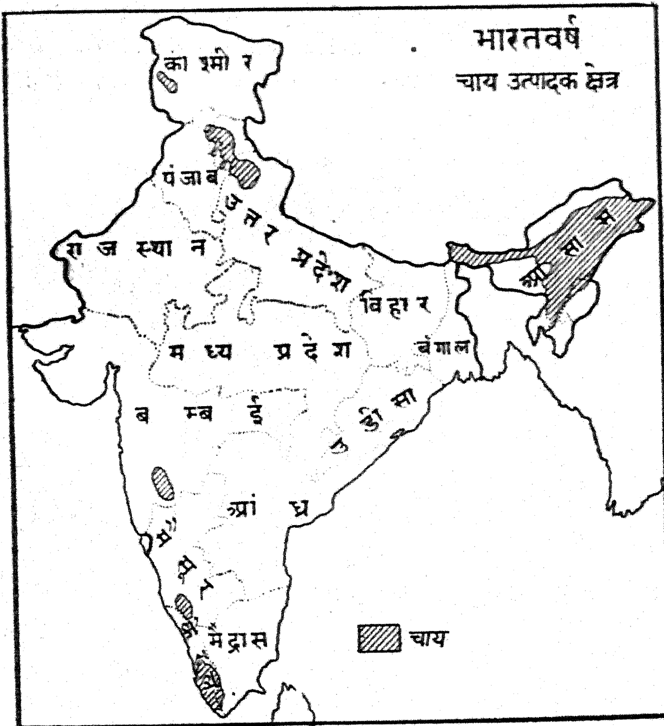
भारत सरकार ने १९५३ में चीना उद्योग में काम करने वाले मजदूरों की स्थिति की जाँच की थी। इस जाँच-पड़ताल से पता चलता है कि १९५३ में भारत के विभिन्न भागों में स्थित १७० चीनी मिलों में कुल मिला कर ९१९९७ व्यक्ति काम करते थे। इन मजदूरों की न्यूनतम मासिक मजदूरी ५५ रुपये थी। इसके अलावा उन्हें बोनस, भत्ते इत्यादि की भी कुछ सुविधाएँ प्राप्त थीं। सभी मिलों में मजदूरों के लिए घरों की तथा डाक्टरी देख-रेख और चिकित्सा की समुचित व्यवस्था थी।

संक्षेप में इस बात की पूरी सम्भावना है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में हम चीनी उत्पादन के निर्धारित लक्ष्य को पूरा कर लेंगे और १९६०-६१ तक देश चीनी के मामले में पूरी तरह आत्म-निर्भर हो जाएगा।



चाय उद्योग

कोई जमाना था जब भारत में घी, दूध की नदियाँ बहती थीं परन्तु यदि अब यह कहा जाय कि भारत में वनस्पति घी और चाय की नदियाँ बहती हैं तो अत्युक्ति न होगी। पहले जब कोई अतिथि घर आता था तो उसे मजबूर करके एक गिलास दूध तो पिलाया ही जाता था परन्तु आज तो अतिथि या दोस्तों के घर में



कदम रखते ही घर वाली को चाय बनाने का आर्डर दे दिया जाता है और सुबह-शाम घर में दूध की जगह चाय के प्याले ही पिए जाते हैं। यदि दोस्त खाने-पीने के मूड में न भी हुए तो भी चाय का एक कप तो वह बिना किसी हुज्जत के पी लेते हैं।

सारांश में चाय भारत में पेय के रूप में अत्यधिक लोकप्रिय हो गई है और बहुत से लोग तो उसे बिना किसी संकोच के 'भारत के राष्ट्रीय पेय' की संज्ञा देने लगे हैं।

चाय का इतिहास

चाय का इतिहास बहुत पुराना है। चीन के लोग बहुत प्राचीन काल से चाय पीने के आदी थे। संसार में जब लोग चाय के नाम से भी अपरिचित थे, अरब और चीन में इसका बहुत प्रचार था। अरब लोगों ने लगभग ९वीं शताब्दी से चाय पीना शुरू किया था। चीन में तो ईसा से २७३७ वर्ष पूर्व से ही चाय का प्रचलन था।

पुर्तगीजों को १६वीं शताब्दी से ही चाय की जानकारी थी परन्तु यूरोप में चाय का प्रचार करने का श्रेय अधिकतर डच लोगों को है। सर्वप्रथम हालैंड में १६१० में और इंग्लैंड में १६४५ में कुछ पौंड चाय का आयात किया गया था।

धीरे-धीरे इंग्लैंड में चाय लोकप्रिय होने लगी। १६६१ में इंग्लैंड में एक पौंड चाय का मूल्य ६० शिलिंग था।

चीन-प्रमुख उत्पादक देश

ओपियम (अफीम) युद्धों के पूर्व (१८३९-१८५७) यूरोपीय देशों को चाय का आयात मुख्यत: चीन से ही करना पड़ता था। अफीम के व्यापार के प्रश्न को लेकर यूरोपीय देशों के साथ चीन की अच्छी-खासी तनातनी चल रही थी। युद्ध के बादल मंडरा रहे थे। इस समय चीन के साथ युद्ध का खतरा देखकर लन्दन के चाय व्यापारियों और ईस्ट इण्डिया कम्पनी को चाय-व्यापार को क्षति पहुँचने का खतरा दीख पड़ा। इसके १० वर्ष पूर्व ही एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने यह सुझाव दिया था कि उत्तर पश्चिमी हिमालय प्रदेश में चाय की खेती की जा सकती है। इसके अलावा १८३० में लेफ्टिनेन्ट चार्ल्सटन नामक एक अंग्रेज ने असम के जंगलों में जंगली चाय के वृक्ष खोज निकाले थे। फिर भी, भारत में चाय की खेती व्यवस्थित ढंग पर शुरू करने का श्रेय विलियम वेंटिक को है। १८३४ में एक चाय समिति नियुक्त की गई और १८३६ तक असम में चाय की परीक्षणात्मक खेती शुरू हो गई और १८३९ में सर्वप्रथम २८० पौंड भारतीय चाय इंग्लैंड पहुँची। वहाँ के निवासियों में इस चाय के प्रति इतनी अधिक उत्सुकता थी कि लोगों ने १६ से लेकर ३४ शिलिंग प्रति पौंड के हिसाब से यह चाय खरीदी जब कि चीनी चाय का भाव ३ शिलिंग ६ पेंस प्रति पौंड था। इसके बाद चीन के साथ यूरोपीय देशों का युद्ध छिड़ जाने के फलस्वरूप भारत में चाय की खेती को खूब प्रोत्साहन मिला और इसी बीच १० लाख पौंड की पूँजी से असम चाय कम्पनी की स्थापना हुई। चाय की खेती का अनुभव न होने के कारण कम्पनी को पहले अपार क्षति हुई लेकिन १८५२ तक उसकी हालत सम्भल गई।

भारत में चाय की खेती के क्षेत्र

इस समय भारत में चाय की खेती उत्तरी बंगाल, असम, त्रिपुरा, मनीपुर, नीलगिरि, पश्चिमीघाट, मैसूर, कुर्ग और ट्रावनकोर में होती है। इसके अलावा छोटा नागपुर, कांगड़ा और देहरादून के कुछ हिस्सों में भी चाय की खेती होती है। इनमें से अधिकांश भागों की जमीन बहुत उपजाऊ है और वर्षा भी खूब होती है। कुल मिलाकर भारत में चाय बगानों की संख्या लगभग १ हजार है। उत्तरपूर्वी क्षेत्र में ८७५ और दक्षिणी पश्चिमी क्षेत्र में ६० बागान हैं। बाकी क्षेत्र में बागानों की संख्या ३५ से अधिक नहीं है। १९४९ में कुल ७७२, ५४३ एकड़ भूमि में चाय की खेती होती थी। इसमें से ७६ प्रतिशत भूमि असम और पश्चिमी बंगाल के दार्जलिंग तथा जलपाई गुड़ी जिलों में, १९ प्रतिशत दक्षिण भारत में और शेष उत्तर प्रदेश, बिहार व पंजाब में।

जलवायु और मिट्टी

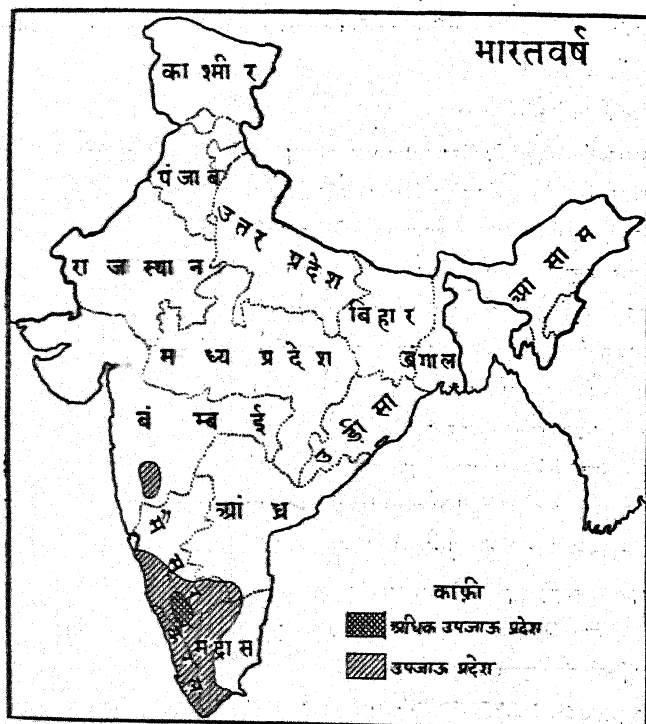
चाय की खेती के लिए गर्म तट जलवायु और गहरी भरभरी मिट्टी की आवश्यकता होती है। पहले बीज से पौध तैयार की जाती है और बाद में उसे मुख्य बाग में लगाया जाता है। लगभग २ साल के बाद पौधों के अनावश्यक हिस्सों को काट दिया जाता है जिससे पत्तीदार झाड़ियाँ विकसित हो सकें। अप्रैल में पानी पड़ते ही पौधों में नयी शाखें फूटने लगती हैं और इसके बाद ही चाय की पत्तियों के चुनने का समय प्रारम्भ हो जाता है। यह क्रिया नवम्बर तक चलती है। कोमल कलियों और पौधों की पत्तियों से अच्छी चाय प्राप्त हो जाती है। औरतों की कुशल उंगलियों से पत्तियों के चुनने का काम बहुत ही बढ़िया ढंग से होता है। चाय तैयार करने के लिए इन पत्तियों को चार प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है और इसके बाद इन्हें सूखाकर शीशे की खोल चढ़े बक्सों में बन्द कर दिया जाता है ताकि इनकी सुगन्ध न नष्ट होने पाए।

देहरादून में १८४२ में नीलगिरि में, १८५३ में और १८५६ में दार्जलिंग में बड़े पैमाने पर चाय की खेती प्रारम्भ हुई। १८५९ तक असम और दार्जलिंग में लगभग ५० कम्पनियों ने चाय की खेती शुरू कर दी थी। तब से भारत में चाय उद्योग का निरन्तर विकास हो रहा है।

बागान जाँच-आयोग की रिपोर्ट

भारत सरकार द्वारा नियुक्त बागान जाँच-आयोग ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि ३० जून, १९५४ को भारतीय चाय-उद्योग में कुल ११३.०६ करोड़ रुपए की पूँजी लगी थी। इनमें १०० एकड़ से कम के बागान शामिल नहीं हैं। उक्त पूँजी में से ४०.५१ करोड़ रुपए भारतीयों और ७२.५५ करोड़ रुपए गैरभारतीयों के हैं। यह

भी ज्ञातव्य है कि विदेशी कम्पनियों में से ब्रिटिश कम्पनियों की पूँजी ६१ करोड़ रुपए की है। भारतीय कम्पनियों की पूँजी २१.६८ करोड़ रुपए की है। इनके अलावा साझेदारी और मालिकाना हक वाली कम्पनियों की पूँजी १४ करोड़ रुपए की है। रिपोर्ट में जांच-आयोग ने यह भी बताया है कि १६५३-५४ से चाय उद्योग में लगाई जाने वाली पूँजी में भारतीय पूँजी का अनुपात निरन्तर बढ़ता जा रहा है। १६३६ में चाय उद्योग में लगी पूँजी में विदेशी कम्पनियों का हिस्सा लगभग ८६ प्रतिशत था। १६५३ में यह घटकर ७७ प्रतिशत रह गया था। तात्पर्य यह कि भारतीय चाय उद्योग में अब भी अधिकांश पूँजी विदेशी व्यवसायियों ने ही लगा रखी है। १६५० और १६५३



के बीच मैनेजिंग एजेंट के कमीशन को शामिल कर लेने पर उत्तरी भारत में १०० पौंड चाय के उत्पादन की औसत लागत १३८.०८ रुपए थी। यह लागत दक्षिण भारत में १२१.५७ रुपए और पश्चिमी भारत में १३५.१८ रुपए थी। आयोग ने यह भी पता लगाया है कि १६५० की तुलना में १६५३ की उत्पादन लागत २.७३ प्रतिशत अधिक थी।

उत्पादन खपत और निर्यात

सुलभ आँकड़ों के अनुसार १९५४ में भारत ने ४५ करोड़ ५८ लाख पौंड चाय विदेशों को निर्यात की। शेष १९ करोड़ ८२ लाख पौंड चाय देश के अन्दर खपी। अर्थात् १९५४ में भारत में ४६ करोड़ ७१ लाख पौंड चाय का उत्पादन हुआ। अभी हाल में भारतीय चाय बोर्ड ने जो जांच-पड़ताल की है, उससे पता चलता है कि भारत में चाय की खपत तेजी से बढ़ रही है। १९५३-५४ के मध्य खपत में २ करोड़ पौंड की वृद्धि हो गई है।

अब तक जो सूचना प्राप्त है उसके अनुसार चाय उद्योग में ६८ करोड़ डालर की पूँजी लगी है। प्रचलित मूल्यों के अनुसार यह पूँजी लगभग २०३ अरब रुपये बैठती है। भारत में सबसे अधिक मजदूर अकेले इसी उद्योग में काम करते हैं। अकेले चाय के बगीचों में ही १० लाख से अधिक मजदूर पत्ती चुनने का कार्य करते हैं। १९०५ से लेकर अब तक चाय के उत्पादन में एवं उत्पादन-क्षेत्र के परिमाण में जो वृद्धि हुई है उसके आँकड़े इस प्रकार हैं—

वर्ष	चाय-उत्पादन का क्षेत्र १०० एकड़ में	उत्पादन १० लाख पौंडों में
१९०५-१९०९ औसत	५३९	२४२
१९१०-१४	५९१	२९०
१९१५-१९	६६२	३७४
१९२०-२४	७०९	३३६
१९२५	७२८	३६४
१९२६	७३९	३९३
१९२७	७५६	३९१
१९२८	७७६	४०४
१९२९	७८८	४३३
१९३०	८०४	३९१
१९३१	८०७	३९४
१९३२	८४०	४३४

वर्ष	चाय-उत्पादन का क्षेत्र १०० एकड़	उत्पादन १० लाख पौंडों में
१९३३	८४१	३८४
१९३४	८४१	३९५
१९३५	८४१	३८९
१९३६	८४२	३९०
१९३७	८४२	४२३
१९३८	८४०	४४७
१९३९	८४१	४६३
१९४०	८४०	४७१
१९४१	८४०	५००
१९४२	८४१	५१०
१९४३	८४३	५३२
१९४४	८४२	५०७
१९४५	८४१	५२८
१९४६	८४१	५९०
१९३७	८४२	६००
१९४८	७७३	५६७
१९४९	७७२.५	५५६
१९५०	६०६	६०६

—'इण्डियन इयर बुक' १९५२ से उद्धृत

नवीनतम आँकड़ों के अनुसार १९५५-१९५६ में भारत में चाय का कुल उत्पादन ६४ करोड़ ४० लाख पौंड था और द्वितीय चवर्षीय योजना के समाप्त होने के समय तक अर्थात् १९६०-६१ तक यह उत्पादन बढ़कर ७० करोड़ पौंड तक पहुँच जाएगा।

प्रमुख चाय निर्यातक देश

१९५३ और १९५४ में विश्व में चाय की खपत क्रमश: १ अरब २२ करोड़ ९० लाख पौंड और १ अरब २८ करोड़ ८० लाख पौंड थी। इन्हीं वर्षों में भारत में चाय का उत्पादन क्रमश: ६१ करोड़ ४१ लाख पौंड और ६४ करोड़ ४१ लाख पौंड

था। भारत की गणना आज प्रमुख चाय-निर्यातक देशों में की जाती है। किसी समय तो चाय के व्यापार में भारत की तूती बोलती थी परन्तु उत्पादन-व्यय में वृद्धि हो जाने और अन्य देशों जैसे श्री लंका, इण्डोनेशिया, अर्जेन्टीना और पाकिस्तान के इस क्षेत्र में प्रविष्ट होने से भारत के चाय निर्यात को कुछ धक्का लगा है। भारत ने १९४८ से १९५१ तक जिन देशों को जितने परिमाण में चाय का निर्यात किया उसके आँकड़े यहाँ पर दिए जा रहे हैं :

चाय का निर्यात (१० लाख पौंडों में)

देश	१९४८-४९	१९४९-५०	१९५०-५१
१. इंग्लेंड	२८१.३	२७६.३	२७८.१
२. कनाडा	१३.६	२६.६	२१.०
३. आस्ट्रेलिया	७.०	१६.९	१६.४
४. ईरान	८.१	१२.	११.४
५. मिश्र	०.८	६.२	३.५
६. श्री लंका	०.३	०.४	०.२
७. अरबिया	७.६.	६.०	७.४
८. चिली	०.४	२.०	२.५
९. रूस	१४.८	११.०	—
१०. आयरलेंड	२१.४	१२.९	२८.०
११. अमेरिका	२३.२	३७.५	३७.६

—'मेजर इण्डस्ट्रीज ऑफ इण्डिया' १९५४-५५ से उद्धृत

चाय उद्योग के विकास के कारण

भारत में चाय उद्योग के विकास के तीन प्रमुख कारण हैं। चाय की व्यापक माँग, चाय-उत्पादन क्षेत्र की प्रचुरता और सस्ते मजदूर। भारत में मजदूरी की दरें काफी कम होने के कारण बहुत कम व्यय पर चाय की खेती की जा सकती है, और यही एक कारण है, जिसकी वजह से अन्य बहुत से देश भूतकाल में भारतीय चाय-उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सके, यद्यपि अब यह बात नहीं रही। पिछले ५० वर्षों में भारत में चाय उद्योग ने इतनी अधिक प्रगति कर ली है कि आजकल उसकी गणना भारत के प्रमुख उद्योगों में की जाती है और भारत से विदेशों को जो वस्तुएँ निर्यात की जाती हैं उनमें, चाय को प्रमुख स्थान प्राप्त है। इस प्रकार चाय

विदेशी मुद्रा अर्जित करने का प्रमुख साधन है। चाय बोर्ड और व्यवसायी इस बात के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं कि अमेरिका जैसे दुर्लभ मुद्रा वाले क्षेत्रों में चाय का और अधिक प्रचार किया जाए और इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर भारतीय व्यवसायियों ने अमेरिका आदि देशों के व्यवसायियों से समझौते भी किए हैं ताकि वहाँ चाय की खपत बढ़ाने के सम्बन्ध में प्रभावशाली ढंग से प्रचार किया जा सके।

भारत में चाय उद्योग के विकास का पता अकेले इसी बात से चलता है कि १८४१ में केवल २५०० एकड़ भूमि में चाय के पौधे उगाए जाते थे।

विदेशों से भारत के लिए दुर्लभ मुद्रा प्राप्त करने के अलावा चाय उद्योग भारत सरकार की आमदनी का भी एक प्रमुख जरिया है। चाय के निर्यात कर और चुंगी से सरकार को हर वर्ष काफी आमदनी होती है। १९५३-५४ में इस मद से सरकार को जो आय हुई उसके आँकड़े इस प्रकार हैं—

वर्ष	निर्यात कर	चुंगी कर : हजारों रुपयों में
१९५३-५४	११६१.९०	२०७१४
१९५४-५५	१९७५.७३	३१५५२

सरकार को आय

इस समय चाय पर ०-६-० प्रति पौंड के हिसाब से निर्यात कर और ०-४-० प्रति पौंड के हिसाब से चुंगी कर लिया जाता है। यह कर चाय के प्रचलित मूल्य को दृष्टि में रखकर लगाया जाता है और स्थिति विशेष के अनुसार घटता और बढ़ता रहता है। मूल्य-निर्धारण का कार्य सरकार करती है। चाय के निर्यात होने पर निर्यातकों को चाय पर वसूल की गई चुंगी की राशि वापस कर दी जाती है। इसके अलावा निर्यात की जाने वाली चाय पर ४ आने प्रति पौंड के हिसाब से एक और कर वसूल किया जाता है। भारतीय चाय वोर्ड भी १ आना प्रति १ हजार पौंड के हिसाब से लाइसेन्स फीस वसूल करता है। इन करों से सामान्यतया सरकार को क्रमशः १७९ लाख और ४५ लाख रुपए की आय होती है। इस धनराशि का उपयोग मुख्यतः चाय बोर्ड द्वारा चाय-उद्योग के विकास के लिए किया जाता है। चाय बोर्ड की स्थापना चाय एक्ट १९५३ के अन्तर्गत की गई और इस पर केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण है। इसके अलावा आय कर के रूप में भी सरकार को १९५६ में ८.९५ करोड़ रुपए की और १९५४ में १९.८६ करोड़ रुपए की आय हुई थी। चाय की ढुलाई

से भी भारतीय रेलों को काफी आय हो जाती है। १९५३-५४ और ५४-५५ में रेल विभाग को चाय की ढलाई से क्रमशः ४.३३ करोड़ और ४.४६ करोड़ रुपए की आमदनी हुई। भारत से विदेशों को चाय ले जाने वाली जहाजी कम्पनियों को हर वर्ष अच्छी खासी आमदनी हो जाती है। १९५३-५४ में जहाजी कम्पनियों ने चाय की ढुलाई से ५१६ लाख रुपए और ५४-५५ में ५०५ लाख रुपए कमाए।

आय कर, बिक्री कर और सड़क कर के रूप में राज्य सरकारों को भी प्रतिवर्ष चाय उद्योग से काफी आय हो जाती है। चाय उद्योग में प्रति वर्ष ३१२ लाख रुपए मूल्य का कोयला खपता है। इसके अलावा सिमेंट और इस्पात आदि आवश्यक वस्तुओं की काफी अधिक खपत चाय-उद्योग में है। हमें जो सूचना सुलभ है उसके अनुसार देश की बीमा कम्पनियों को भी हर वर्ष लगभग ६४ लाख रुपए की आय हो जाती है। इस प्रकार चाय उद्योग अन्य उद्योगों के विकास में भी योग दे रहा है। इन्हीं सब बातों को दृष्टि में रखकर द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत चाय के उत्पादन में और अधिक वृद्धि करने का निश्चय किया गया है परन्तु अकेले उत्पादन में वृद्धि करने से कार्य नहीं पूरा होगा, क्योंकि ऐसी विरोधी शक्तियां भी क्रियाशील हैं जिनके द्वारा चाय उद्योग की आर्थिक स्थिति बड़ी ही अस्थिर और डांवाडोल है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत का चाय-उद्योग विदेशों पर निर्भर है तथा देश में चाय की खपत बहुत कम है। इसलिए उत्पादन वृद्धि के साथ देश में चाय की खपत बढ़ाना भी आवश्यक है।

उद्योग की स्थिति पूर्ण सुदृढ़ नहीं

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के कुछ वर्षों में चाय-व्यवसाय ने कई बड़े उतार-चढ़ाव देखे हैं। आजादी के उपरांत चार वर्ष मुश्किल से व्यतीत हुए थे कि चाय-उद्योग को एक भीषण संकट का सामना करना पड़ा। विभिन्न परिस्थितियों के कारण चाय की माँग एकदम कम हो गई और उसकी कीमत इतनी गिर गई थी कि किसी चाय बाग को बेचने में तनिक भी लाभ नहीं था। उन्हें उत्पादन-व्यय से बहुत कम कीमत पर चाय बेचकर भारी नुकसान उठाना पड़ा। लेकिन शीघ्र ही स्थिति पुनः सुधर गई और चाय का व्यवसाय पुनः चमक उठा। उसने इतना लाभ प्राप्त किया कि चाय-उद्योग के इतिहास में इसका उदाहरण नहीं मिलता। लेकिन यह दशा स्थायी न रही और उद्योग को एक बार पुनः संकट का सामना करना पड़ा। १९५६ के प्रारम्भ में स्थिति पुनः साधारण हो गई और धीरे-धीरे उद्योग फिर संभल गया है। ये सभी परिवर्तन इतने कम समय में हुए कि इनसे अच्छी शिक्षा ली जा सकती है। चाय-उद्योग की उन्नति अथवा अवनति का प्रभाव केवल बागान के मालिकों को ही नहीं

उठाना पड़ता बल्कि इसका परिणाम सभी वर्गों को भुगतना पड़ता है। मालिकों के अलावा मजदूरों को भी इससे बहुत हानि होती है। चाय-उद्योग के संकट के समय बहुत से बाग बन्द कर दिए गए थे और मजदूरों को बेकारी का सामना करना पड़ा था। भारत के विदेशी व्यापार में चाय के निर्यात का बहुत बड़ा स्थान है। सबसे बड़ा चाय-निर्यातक देश भारत ही है। इससे देश को करोड़ों रुपए की रकम विदेशों से मिलती है, जिसकी आजकल देश को अत्यधिक आवश्यकता है। १९५२-५३, १९५३-५४ और ५४-५५ में भारत ने क्रमशः ८०८८, १०२१९ और १४७०६ लाख रुपए की चाय निर्यात की थी। तटकर के रूप में भी सरकार को कम राशि नहीं मिलती। चाय का मूल्य थोड़ा-सा भी बढ़ जाने पर करोड़ों चाय पीने वालों की जेबों पर भी असर पड़ता है।

प्रमुख समस्याएँ

चाय उद्योग पर प्रभाव डालने वाली चार मुख्य बातें हैं—विदेशी बाजार, सरकारी नीति, देश में खपत और मजदूर-मालिकों के पारस्परिक सम्बन्ध। किसी समय चाय के व्यापार में भारत का एकाधिकार सा था परन्तु अब लंका, अर्जेन्टाइना आदि देश भी विदेशों को चाय निर्यात करने के लिए अधिकाधिक प्रयत्नशील हो रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि भारत का चाय-व्यापार विदेशों में निरन्तर घटता जा रहा है। अमेरिका व ब्रिटेन श्रीलंका से चाय का आयात बढ़ा रहे हैं। अमेरिका ने १९५५ में भारत से १९५४ की तुलना में ५९ लाख पौंड कम चाय मंगाई, जबकि श्रीलंका से उसने इसी वर्ष में लगभग ५३ लाख पौंड अधिक चाय मंगाई। आयरलैंड ने भी भारत से पिछले वर्ष कम चाय मंगाई। अन्य देश भी लंका से अधिक मात्रा में चाय मँगा रहे हैं। खेद की बात यह है कि भारत में चाय का उत्पादन तो बढ़ रहा है परन्तु निर्यात घट रहा है। चाय बोर्ड देश के अन्दर चाय की खपत बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है परन्तु अधिक चाय तो देश के अन्दर किसी प्रकार नहीं खपाई जा सकती और इसके साथ ही विदेशी मुद्रा की आवश्यकता का प्रश्न भी सम्बद्ध है। निर्यात घटने का प्रमुख कारण यह है कि अन्य चाय-उत्पादक देश मण्डियाँ प्राप्त करने के लिए जोरों से प्रयत्न कर रहे हैं। यदि चाय अधिकाधिक मँहगी होती गई तो देश में भी चाय की खपत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। इसके साथ ही यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि देश में अच्छे किस्म की चाय की माँग बढ़ती जा रही है तथा घटिया किस्म की चाय की माँग बराबर घटती जा रही है। सरकार की नीति और तट कर का भी चाय-उद्योग पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ रहा है। सबसे पहले श्री लियाकत अली खां ने, जब वह संयुक्त भारत में वित्त मन्त्री थे, चाय पर

कर लगाया था परन्तु तब यह स्पष्ट कर दिया गया था कि यदि इससे निर्यात व्यापार को हानि पहुँची तो यह कर हटा लिया जाएगा। आज न्यूनतम निर्यात कर चार आने प्रति पौंड है, जब कि १९५२ में साधारण चाय की कीमत १-८-० रुपए पौंड थी। भारतीय चाय के मँहगी होने का एक कारण यह भी है कि चाय-उत्पादकों पर सरकृषि आयकर, परिवहन कर तथा चुंगी आदि तरह-तरह के टैक्स लगाती जा रही है। औद्योगिक संघर्ष को देखते हुए सरकार ने उत्पादकों को विवश किया है कि वह मजदूरों को और अधिक रियायतें दें। प्राविडेंट फंड, न्यूनतम वेतन, बोनस इत्यादि के कारण उत्पादन व्यय में काफी अधिक वृद्धि हो गई है। यदि मालिक मजदूरों के आपसी झगड़े शान्तिपूर्ण और सन्तोषजनक ढंग से हल हो जाएँ तो मजदूर लोग अपनी उत्पादन-क्षमता बढ़ाकर उत्पादन व्यय में कमी कर सकते हैं।

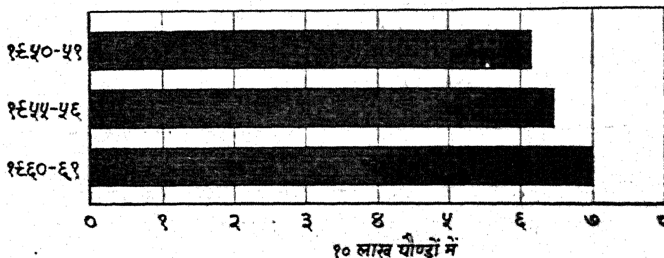
इसके अलावा चाय उद्योग के स्थायी विकास के लिए तीन बातों का होना अत्यधिक आवश्यक है—

१. सस्ती से सस्ती कीमत पर चाय का उत्पादन,

२. व्यवसाय की अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ और स्थायी बनाने की आवश्यकता,

३. उद्योग के संघटन और संचालन के लिए विशेषज्ञों की सहायता।

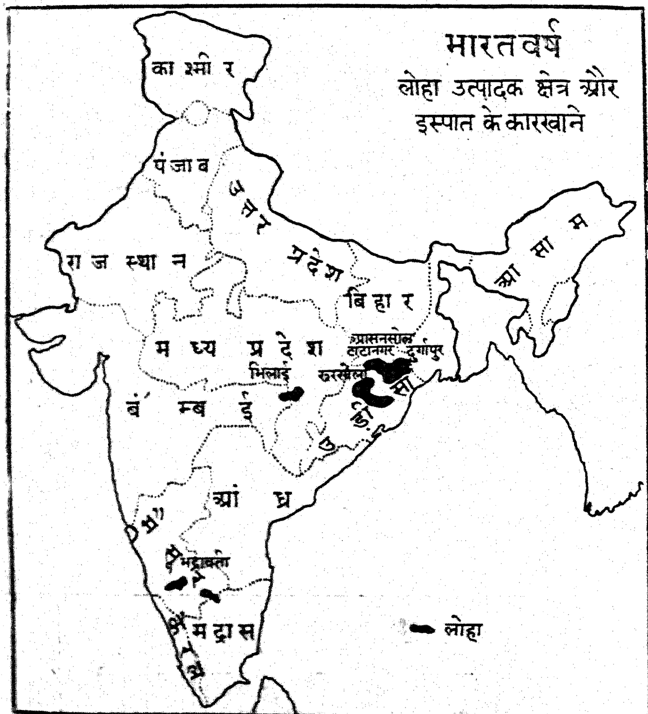
वस्तुतः आवश्यकता तो इस बात की थी कि सरकार एक उच्चस्तरीय कमीशन नियुक्त कर देती, जो चाय उद्योग की स्थिति की जाँच-पड़ताल कर उद्योग की आर्थिक स्थिति सुधारने के सम्बन्ध में सरकार के समक्ष सिफारिशें पेश कर सके। इन सिफारिशों के आधार पर ही सरकार को चाय उद्योग के सम्बन्ध में एक व्यावहारिक और स्थायी नीति अपनानी चाहिए। हर्ष का विषय है कि इस प्रकार का कमीशन सरकार द्वारा स्थापित किया जा चुका है और इसने चाय बागानों की स्थिति के सम्बन्ध में सरकार के समक्ष अपनी रिपोर्ट भी प्रस्तुत कर दी है। इस जाँच कमीशन की रिपोर्ट में चाय बागानों की आर्थिक स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए चाय उद्योग की स्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस रिपोर्ट से सरकार को चाय उद्योग के सम्बन्ध में अपनी नीति निर्धारित करने में निश्चय ही सहायता मिलेगी।



६

भारत में इस्पात उद्योग का विकास

"लोहे और कार्बन की मिश्र धातु को, जो इस्पात के नाम से प्रसिद्ध है, अलग कर दिया जाए तो मानव-जाति के समक्ष एक ऐसा संसार होगा, जिसमें रेलें, जहाज, हवाई जहाज, तरह-तरह के यन्त्र और उपकरण तथा यातायात साधन इत्यादि न रहेंगे और इस प्रकार का समाज आधुनिक जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएँ



तैयार करने में पूर्णतः असमर्थ रहेगा"—ये विचार "ह्वाट इंडस्ट्रीज ओज टु केमिकल साइन्स" पुस्तक के लेखक और प्रमुख धातु-विशेषज्ञ ब्रीनमूर जोन्स ने प्रकट किए थे।

इस्पात युग

संक्षेप में यदि हम इस युग को इस्पात युग भी कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। उद्योग प्रधान और प्रगतिशील राष्ट्रों के जीवन का शायद ही कोई ऐसा पहलू हो, जिसमें इसकी आवश्यकता न पड़ती हो। कृषि, उद्योग, चिकित्सा इन सभी क्षेत्रों में इस्पात किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होता है। भारी से भारी मशीनों से लेकर छोटे से छोटे पुर्जों तक में इसका उपयोग होता है। यदि किसी उद्योग प्रधान राष्ट्र के हाथ से इस्पात निर्माण के साधन छिन जाएँ तो उसकी समस्त उद्योग-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी।

इस्पात तैयार करने की विधियाँ

इस्पात लोहे और कार्बन के मिश्रण से तैयार होता है। साधारण इस्पात में ०.५ प्रतिशत से लगाकर १.५ प्रतिशत तक कार्बन रहता है परन्तु आजकल एक और हल्के किस्म का फौलाद भी तैयार होने लगा है जिसमें सिर्फ ०.१ प्रतिशत से लेकर ०.५ प्रतिशत तक कार्बन होता है। इसके अलावा विशिष्ट प्रकार के इस्पात में निकल, क्रोमियम इत्यादि धातुओं का भी संयोग रहता है। कठोर फौलाद में लगभग ०.६ प्रतिशत कार्बन रहता है। मध्यम श्रेणी के इस्पात में ०.४ प्रतिशत कार्बन मिलाया जाता है। इसके निर्माण के लिए कोक, लोहा, मेंगनीज, क्रोमाइट, चूना, गंधक, डोलामाइट, फायरक्ले, टंगस्टन इत्यादि वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से अधिकांश वस्तुएँ भारत में ही अपेक्षाकृत कम मूल्य पर सुलभ हो जाती हैं। केवल कुछेक वस्तुएँ ही विदेशों से मँगाई जाती हैं।

पूर्व इतिहास

यह बात नहीं कि भारत को इसके पूर्व धातुओं के विषय में कोई ज्ञान न था बल्कि अनेक प्रमाण इस समय भी मिलते हैं जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि प्राचीन काल तथा अंग्रेजों के यहाँ आने के पूर्व तक भारतवासियों को इस्पात तथा अन्य प्रकार की मिश्रित धातुओं का निर्माण करने के सम्बन्ध में पूरी जानकारी थी। दिल्ली में महाराजा पृथ्वीराज के महलों के खंडहरों में यमुना-स्तम्भ (कुतुब मीनार) के पास जो लोहे की कीली गड़ी है, वह इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। सदियों तक वर्षा धूप सहने के बाद भी इस कीली में अभी तक जंग नहीं लगा। विदेशी धातु-विशारद लाख सिर पटककर भी अभी तक यह पता नहीं लगा पाए हैं कि यह किन किन धातुओं के मिश्रण से तैयार की गई है। लेकिन प्राचीन भारत की प्रगति, वैभव और सम्पन्नता अब एक कहानी मात्र बनकर रह गई है। यहाँ तक कि पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा में रंगे हुए बहुत से भारतीय युवक भी आज अपने शानदार और वैभवपूर्ण

अतीत के सम्बन्ध में सन्देहशील हैं। उन्हें यह विश्वास ही नहीं हो पाता कि कोई समय ऐसा भी था जब भारत समस्त संसार का अगुआ एवं प्रगति, वैभव, सभ्यता और संस्कृति का गढ़ था। प्राचीन इतिहास से यह पता चलता है कि भारतीयों और मिस्र के निवासियों को इस्पात तैयार करने का गुर ईसा से कई सौ वर्ष पहले से ही ज्ञात था, परन्तु वे इसका उत्पादन सीमित परिणाम में ही करते थे। उस समय भारत में २ फुट से ४ फुट तक ऊँची तथा मिट्टी से तैयार की गई वृत्ताकार खुली भट्ठियों में लोहे को गलाकर इस्पात बनाया जाता था, हवा पहुँचाने के लिए चमड़े से तैयार की गई धौंकनियों का इस्तेमाल किया जाता था। इस विधि से तैयार इस्पात की यूरोपीय देशों और विशेषतः रोम में बहुत अधिक माँग थी। यह उत्कृष्टतम कोटि का इस्पात माना जाता था। उड़ीसा तथा भारत के कुछ अन्य भागों में इस प्रकार की कुछ भट्ठियाँ अब भी देखी जा सकती हैं, यद्यपि आर्थिक या व्यावसायिक दृष्टि से अब उनका कोई महत्त्व नहीं रहा। यूरोपीय देशों ने प्रारम्भ में इसी प्रकार की भट्ठियों को अपनाया था। धीरे-धीरे इनमें सुधार होता रहा। आधुनिक युग की 'ब्लास्ट फरनेंश' (एक प्रकार की भट्ठी) इसी का उन्नत और उत्कृष्टतम रूप है। राइनलैंड (जर्मनी) में १४५० के आस-पास धौंकनी को चलाने के लिए जल-शक्ति का सफलता पूर्वक उपयोग किया गया। यह आविष्कार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था, जिसका परिणाम बहुत ही दूरगामी हुआ। इस विधि द्वारा भट्ठी में हवा का अत्यधिक दबाव डालना सम्भव हो गया और ऐसी विधि खोज निकाली गई, जिसकी सहायता से गले हुए लोहे को भट्ठी से एक धारा के रूप में निकालना और उसे विभिन्न प्रकार के आकार देना सम्भव हो गया। वस्तुतः आधुनिक इस्पात युग की शुरुआत भी यहीं से होती है। यूरोप ने भारत और मिस्र में प्रचलित भट्ठी को अपनाकर उसमें वैज्ञानिक ढंग पर अनेक सुधार किए और यदि सच पूछा जाए तो यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के लिए मूल आधार इसी ने प्रदान किया। आगे चलकर इस्पात-उत्पादन के बल पर ही यूरोपीय देशों ने संसार के विभिन्न भागों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया और अपने नागरिकों के लिए सुख-सुविधा के अनेक साधन जुटाए। दूसरी ओर भारत से धीरे-धीरे इस महत्त्वपूर्ण उद्योग का लोप होता गया और विदेशी दासता ने तो रहे-सहे साधनों और क्षमताओं पर पानी फेर दिया। कई सौ वर्षों तक विदेशियों की दासता और शोषण का शिकार बनकर यह औद्योगिक और आर्थिक दृष्टि से सर्वथा असहाय और पराश्रित देश बन गया। अंग्रेज जब यहाँ पर आए तो उनका उद्देश्य हर कीमत पर और हर उपाय द्वारा, चाहे उससे देश की जनता और साधन-स्रोतों को कितना ही भयकर नुकसान क्यों न हो, अपने देश को मालामाल करना था और उन्होंने किया भी यही। भारत में अपने पैर मजबूती से जमा लेने के बाद भी वे यह नहीं चाहते थे कि भारत में कोई आधारभूत उद्योग पनपे, और इसीलिए यह जानते हुए कि भारत

में इस्पात जैसे अत्यधिक और महत्त्वपूर्ण आधारभूत उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है, उन्होंने न तो स्वयं कोई दिलचस्पी ली और न भारतीय व्यवसायियों को ही कोई प्रोत्साहन दिया। आपको शायद यह सुनकर आश्चर्य हो कि भारत में जिस मिट्टी में लोहा पाया जाता है वहाँ मिट्टी में लोहे का अंश ६९ प्रतिशत तक है जबकि अमेरिका में यह अंश ५० प्रतिशत और यूरोपीय देशों में केवल ४० प्रतिशत ही है। इसके अलावा, भारत में लोहे और इस्पात के उत्पादन-व्यय का ६० प्रतिशत से ८० प्रतिशत भाग ही कच्चे माल पर व्यय होता है जिसके फलस्वरूप भारत में इस्पात अपेक्षाकृत कम मूल्य पर तैयार किया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम विदेशी दासता और शोषण के शिकार न होते तो हमारा इस्पात उत्पादन आज यूरोपीय देशों से भी कहीं अधिक होता। परन्तु अब तो स्थिति बिलकुल उल्टी है।

आधुनिक इस्पात उद्योग के जन्मदाता

भारत में इस्पात उद्योग के विकास के लिए श्री जमशेद जी टाटा ने जो भगीरथ प्रयत्न किए और सरकारी असहयोग तथा स्थानीय विरोध के बावजूद जिस साहस और दृढ़ निश्चय से उन्होंने इस दिशा में कार्य किया उसके लिए वह समस्त राष्ट्र के कृतज्ञता के पात्र हैं। भारत में इस्पात उद्योग के प्रतिष्ठापक वह ही थे। १९११-१२ में जमशेद जी ने आयरन और स्टील कम्पनी का पहला कारखाना खोला। उस समय बहुत से लोगों ने उनकी खिल्ली उड़ाई और स्पष्ट शब्दों में यह तक कह दिया कि यह कारखाना चल ही नहीं सकता। परन्तु श्री टाटा अपने निश्चय पर हिमालय की तरह अटल रहे और आपत्तियों और कठिनाइयों से तनिक भी न घबराते हुए अपने काम में लगे रहे। रूस को छोड़कर लगभग सभी देशों ने इस्पात-उद्योग के विकास में काफी समय लगाया है। सुलभ सूचना के अनुसार रूस ने २५ वर्षों के अन्दर इस्पात का उत्पादन ४० लाख टन प्रतिवर्ष से बढ़ाकर ४ करोड़ टन प्रतिवर्ष तक पहुँचा दिया।

१९१८ में आसनसोल से कुछ मील दूर स्थित हीरापुर में इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पकी की स्थापना हुई और इसके १८ वर्ष बाद स्टील कार्पोरेशन ऑफ बंगाल के नाम से दूसरी कम्पनी की स्थापना हुई। आगे चलकर ये दोनों कम्पनियाँ एक में मिल गईं। १९२१ में भद्रावती (मैसूर) में भी लोहा और इस्पात तैयार करने का एक कारखाना खोला गया।

लोहे की प्रचुरता

इस प्रसंग में यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है कि बिहार और उड़ीसा की लोहे की खानों का लोहा सर्वोत्कृष्ट है और उसमें लोहे का अंश भी सबसे अधिक पाया जाता है। इस क्षेत्र में लोहे की खानों का पता लगाने के लिए टाटा ने जो विशेषज्ञ नियुक्त किया था उसके अनुसार ४०० मील लम्बी और

२०० मील चौड़ी पट्टी में उत्कृष्ट कोटि का लोहा प्रचुर परिमाण में मौजूद था। इनना लोहा १००० वर्ष तक प्रतिवर्ष १५००००० टन सामान्य लोहा तैयार करने के किए पर्याप्त था। १९३६ में बिहार और उड़ीसा में जितना लोहा प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया था उसके आँकड़े इस प्रकार हैं—

प्रदेश	लोहे का भण्डार	लोहे के अंश का प्रतिशत
सिंहभूमि	१०४७० लाख टन	६४ प्रतिशत
केवन	९८८० लाख टन	६८ प्रतिशत
बोनाई	६४८० लाख टन	६९ प्रतिशत
मयूरभंज	१८० लाख टन	
कुल	२७०१० लाख टन	

लोहे का भण्डार

इसके अलावा, उस समय भारत के विभिन्न प्रान्तों में जितना लोहा प्राप्त होने की सम्भावना थी उसके आँकड़े निम्न हैं। यह आँकड़े भारतीय भूगर्भ पर्यवेक्षण विभाग द्वारा व्यापक जाँच-पड़ताल करके एकत्र किए गए थे।

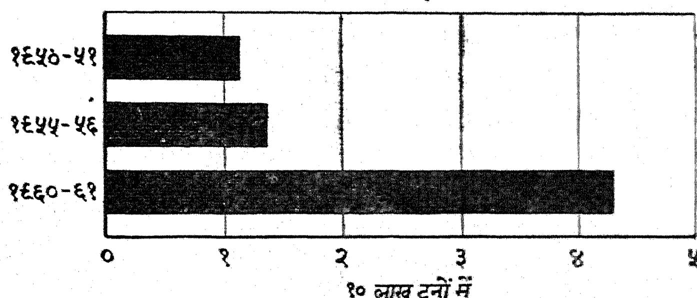
लोहे की किस्म	जिला और प्रान्त	लोहे का भण्डार	प्रतिशत अंश
मैगनेटाइट	सलेम, मद्रास	अपरिमित	५५
लैटराइट	राजमहल की पहाड़ियाँ, बंगाल	विशाल परिमाण में	४३
	जबलपुर (म० प्र०)	४९० लाख टन	५३
क्ले आयरन स्टोन	रानीगंज, बंगाल	४००० लाख टन	३८ से ४६
हेमाटाइट	बिहार और उड़ीसा	२८००० लाख टन	६० से ६८
	चाँदा (म० प्र०)	कम से कम १००० लाख टन	६१ से ६७
	डुग (म० प्र०)	१०० लाख टन	६६
	बाबानुदान हिल्स मैसूर	२५० से ६०० लाख टन	४२ से ६४.५
	कुमायूं (उ० प्र०)	पर्याप्त	३९ से ६०

—लोकलाइजेशन ऑफ इण्डिया से उद्धृत

इस्पात और लोहे का उत्पादन

द्वितीय युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व भारत को अपनी आवश्यकता पूरी करने लायक इस्पात प्राप्त हो जाता था क्योंकि उस समय भारत को इस्पात की कोई बड़ी आवश्यकता भी नहीं थी। यहाँ से विदेशों को ५०००००० टन कच्चा लोहा भेजा जाता था तथा लगभग ३००००० टन इस्पात विदेशों से आयात किया जाता था। इस समय उक्त तीनों इस्पात कारखानों में इस्पात के उत्पादन की स्थिति इस प्रकार थी—

लोहा



देश में स्थित लोहा और इस्पात कारखानों का उत्पादन : १९३६-३७

प्रदेश	लोहे और इस्पात के कारखाने	कच्चे लोहे का वार्षिक उत्पादन (टनों में)	इस्पात उत्पादन क्षमता (टनों में)
उत्तरी भारत और बिहार	टाटा आयरन एण्ड स्टील वर्क्स, जमशेदपुर	११४००००	१०१८०००
बंगाल	स्टील कार्पोरेशन ऑफ बंगाल एण्ड दि इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी	८५००००	२००००० से २५००००
दक्षिण भारत मैसूर राज्य	मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स	२८०००	२००००

नोट—इन सभी कारखानों में १९३९ में प्रतिदिन ४३८३१ मजदूर काम करते थे।

—इण्डियन इयर बुक से

भारत सरकार की नीति

इस्पात और लोहा सप्लाई करने के अलावा उक्त कम्पनियों ने प्लेटें, स्लीपरें, पाइप, तार, मालगाड़ी के डिब्बे और अनेक कृषि-उपकरण तैयार करने का भी कार्य प्रारम्भ कर दिया। १९२१ के बाद से भारतीय उद्योगपतियों के बारम्बार अनुरोध करने पर इस्पात उद्योग की स्थिति और विकास सम्भावनाओं का अध्ययन करने के लिए तीन बार जाँच समितियाँ नियुक्त की गईं। पहली समिति १९२६, दूसरी समिति १९२९ और तीसरी समिति १९४४ में नियुक्त की गई। इसी बीच में इससे सम्बन्धित अन्य छोटे उद्योगों के बारे में भी ३ पूरक और ५ विशेष जाँचें की गईं। इन जाँचों के फलस्वरूप सर्वप्रथम १९३४ में इस्पात उद्योग को ६ वर्ष के लिए सरकारी संरक्षण प्राप्त हुआ, लेकिन अगले वर्षों में युद्ध प्रारम्भ हो जाने के फलस्वरूप इस नीति में संशोधन कर देना पड़ा। १९३९ के बाद से युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए इस्पात का मूल्य निर्धारित करने और उसका वितरण करने का काम सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। युद्धोत्तर काल में भारत की स्वाधीन सरकार ने १९५२ में इस्पात के उत्पादन और वितरण पर लगे कठोर नियन्त्रण को कुछ ढीला कर दिया; फिर भी देश की बढ़ी हुई आवश्यकताओं को पूरा करना कठिन हो गया। इस समय देश में विभिन्न कार्यों के लिए कम से कम प्रतिवर्ष २४ लाख टन इस्पात की आवश्यकता थी, परन्तु कुल उत्पादन १० लाख ९७ हजार टन ही था। इस उत्पादन से सरकार केवल प्रतिरक्षा मन्त्रालय की कुछ माँगों और रेल विभाग की आंशिक माँगों को ही पूरा कर सकी। अतएव यह स्पष्ट था कि या तो सरकार विदेशों से और अधिक मात्रा में इस्पात का आयात करे या स्थानीय कारखानों की उत्पादन-क्षमता में वृद्धि करे।

१९३९ में लोहे की छड़ें, चादरें, नट, वोल्ट, इत्यादि अन्य छोटी-मोटी वस्तुएँ तैयार करने के छोटे-छोटे कारखानों की संख्या लगभग ३२ थी। ये सभी कारखाने कुल मिला कर प्रतिवर्ष १ लाख ४० हजार टन वजन की वस्तुएं तैयार करते थे। १९४२ तक इस प्रकार की मिलों की संख्या १३० तक पहुँच चुकी थी। जब सरकार ने इनके सम्बन्ध में विस्तृत जाँच-पड़ताल की तो पता चला कि इनमें से ७५ मिलें ही ऐसी हैं जो भारत सरकार द्वारा निर्धारित नियमों के अन्तर्गत आती थीं। सरकार इस निष्कर्ष पर पहुँची कि जिन मिलों की आर्थिक स्थिति और प्रबन्ध-व्यवस्था अच्छी न हो, उन्हें बन्द करा दिया जाए। इस समय लगभग २३ मिलें ऐसी हैं जो प्लेटें, तार, फिश प्लेट, कीलें, चादर, नट, वोल्ट, छड़, इत्यादि अनेक प्रकार की

वस्तुएँ तैयार करने का कार्य करती हैं। इनके अतिरिक्त, कुछ और रजिस्टर्ड कम्पनियाँ भी हैं। इन मिलों में तीन पालियों में काम होता है। रजिस्टर्ड मिलों की उत्पादन-क्षमता २६२०० टन और गैर-रजिस्टर्ड कम्पनियों का उत्पादन लगभग २१६००० टन है।

विभाजन के बाद की स्थिति

विभाजन के तुरन्त बाद के वर्षों में भारत को इस्पात प्राप्त करने में बहुत अधिक कठिनाई हुई और उसे हारकर विदेशों से काफी ऊँची कीमतों पर इस्पात आयात करना पड़ा। विभाजन के बाद के वर्षों में देश में इस्पात-उत्पादन की स्थिति इस प्रकार थी—

वर्ष	इस्पात-उत्पादन टनों में
१६४८	८५३८१५
१६४६	८२६२६१
१६५०	६७६१००
१६५१	१०५०१११
१६५२	१०७५१८२
१६५३	१०३००००

देश में इस्पात की माँग

देश के व्यावसायिक और सार्वजनिक क्षेत्र में इस्पात की बढ़ती हुई माँग एवं बाँध-निर्माण तथा इसी प्रकार की विकास योजनाओं को दृष्टि में रखते हुए १६५० में भारत ने विदेशों से ५०० रुपये प्रति टन की दर से ६३६८२ टन इस्पात का आयात किया। विकास योजनाओं की आवश्यकता पूरी करने के लिए अगले वर्ष उसे और अधिक परिमाण में इस्पात मँगाना पड़ा। यह वह समय था जब कोरिया में युद्ध छिड़ चुका था। फिर भी भारत सरकार ने ६०० रुपये प्रति टन तक की ऊँची कीमत पर बड़ी कठिनाई से १२६६१ टन इस्पात प्राप्त किया। इसके उपरान्त १६५२ में १६५००० टन तथा १६५३ में २३२००० टन इस्पात आया। अमेरिकी सहायता मिशन द्वारा भी इस्पात खरीदने के लिए १ करोड़ ६८ लाख डालर सुलभ किए गए। १६५२-५३ में देश के विभिन्न क्षेत्रों में इस्पात की माँग इस प्रकार थी—

(टनों में)

	१९५२	१९५३
सरकारी माँग		
प्रतिरक्षा मन्त्रालय	१६७०००	१५००००
गृह-निर्माण एवं सामुदायिक विकास योजनाएँ	१५३०००	२२३०००
शरणार्थियों के लिए गृह-निर्माण	२४०००	२६०००
गैर-सरकारी माँग		
औद्योगिक उपयोग	१०६०००	९२०००
इस्पात उद्योग से सम्बन्धित उद्योगों के लिए	२८७००	३१३०००
अन्य गैर-सरकारी उद्योगों के लिए	५८०००	४९०००
कृषि	१३३०००	११५०००
राज्य	४९०००	४२०००
	१०४७०००	११३९०००
	५००००	१५००००
कुल योग	१०९७०००	११८९०००

खपत की स्थिति

(टनों में)

औसत युद्ध-पूर्व खपत	१०००
युद्धोत्तरकालीन कृषि माँगें	२५०
निर्माण कार्य	२५५
युद्धोत्तर-काल रेल विकास जल विद्युत	३००
योजनाएँ, सड़क एवं पुल निर्माण प्रान्तों में	४०
	२०
	२००
कुल खपत	२०२५

—प्रथम पंचवर्षीय योजना से

प्रति व्यक्ति खपत

इस्पात के उत्पादन और खपत के सम्बन्ध में एक यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि भारत में इस्पात की प्रति व्यक्ति औसत खपत अन्य बहुत से देशों से कम है यद्यपि उत्पादन-व्यय अन्य देशों से काफी कम है। जहाँ अमेरिका में प्रति व्यक्ति इस्पात की खपत १२३७ टन, इंग्लैण्ड में ६२८ टन और रूस में ३०६ टन है, वहाँ भारत में इस्पात की प्रति व्यक्ति खपत केवल ११ टन है। इसी से आप इस बात का अन्दाजा लगा सकते हैं कि औद्योगीकरण की दिशा में देश को अभी कितनी बड़ी मंजिल तय करनी है।

भारतीय योजना आयोग ने इस्पात के महत्त्व और उसकी बढ़ती हुई आवश्यकता को पूरी तरह अनुभव कर यह निर्णय किया कि विदेशों से इस्पात का आयात जारी रखने के साथ-साथ सरकार मौजूदा इस्पात के कारखानों के विकास में योग दे तथा अपने नियन्त्रण और देख-रेख में नए इस्पात कारखानों का निर्माण करे। इस निर्धारित लक्ष्य को दृष्टि में रखकर सरकार के सहयोग से टाटा आयरन एण्ड स्टील, इण्डियन आयरन एण्ड स्टील और मैसूर के इस्पात कारखानों ने अपनी उत्पादन-क्षमता के विकास के लिए बड़ी-बड़ी योजनाएँ तैयार की हैं।

टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी ने विकास कार्यों पर ४३ करोड़ रुपया खर्च करने की योजना तैयार की है। इन योजनाओं को कार्यान्वित करने पर इस्पात का उत्पादन ७५०००० टन प्रतिवर्ष से बढ़कर ९४०००० टन तक पहुँच जाएगा। १९५३-५४ में यह उत्पादन ७८०००० टन था। १९५७ में निर्धारित लक्ष्य से अधिक उत्पादन हुआ। इस समय कम्पनी इस्पात उत्पादन को २० लाख टन प्रति वर्ष तक पहुँचाने की एक योजना पर विचार कर रही है। नवीनतम समाचारों के अनुसार उसने प्रसिद्ध अमेरिकी इस्पात फर्म हेनरी जे. काइजर कार्पोरेशन के साथ एक समझौता किया है। इस समझौते के अनुसार जमशेदपुर में इस्पात का एक नया कार-खाना खोलने पर १३ करोड़ रुपया खर्च किया जाएगा। कार्पोरेशन के इंजीनियर ही इस कारखाने का डिजाइन तैयार करेंगे और उसे खड़ा करेंगे। इस कारखाने के निर्माण से भारत की मौजूदा इस्पात-उत्पादन की क्षमता ४५ प्रतिशत बढ़ जाएगी और टाटा कारखाने का इस्पात उत्पादन २० लाख टन प्रतिवर्ष तक पहुँच जाएगा, जैसा कि इसके पूर्व मैं जिक्र कर चुका हूँ। प्राप्त सूचना के अनुसार, २॥ वर्ष के अन्दर यह कारखाना तैयार हो जाएगा। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निर्धारित १३ लाख टन प्रतिवर्ष उत्पादन का लक्ष्य पहले ही प्राप्त किया जा चुका है।

इंडियन आयरन एण्ड स्टील कार्पोरेशन

कार्पोरेशन ३२ करोड़ रुपया खर्च कर अपने उत्पादन में दुगनी वृद्धि करने की योजनाओं को मूर्त रूप देने के लिए प्रयत्नशील है। दिसम्बर १९५४ में उसका कुल इस्पात उत्पादन ५४०००० टन प्रति वर्ष था। यह आशा है कि १९५८ तक कार्पोरेशन ७ लाख टन इस्पात प्रति वर्ष तैयार करने लगेगा। विकास योजना को कार्यान्वित करने के लिए इसे विश्व बैंक की ओर से २६ करोड़ रुपए का ऋण भी दिया गया है।

मैसूर आयरन एण्ड स्टील कम्पनी

मैसूर आयरन एण्ड स्टील कम्पनी अपने पके हुए लोहे का उत्पादन २५००० टन प्रति वर्ष से बढ़ कर ५२००० टन प्रति वर्ष तक बढ़ाने में सफल हो गई है। इसके अलावा, भारत सरकार कम्पनी के इस्पात उत्पादन को २५००० टन प्रति वर्ष से बढ़ाकर १ लाख टन प्रति वर्ष तक पहुँचाने की योजना पर भी विचार कर रही है। इस कारखाने में मिश्रित इस्पात, औजारों के बनाने में काम आने वाला इस्पात तथा जंग न खाने वाला इस्पात भी तैयार किया जाएगा।

तीन बड़े कारखानों का निर्माण

इस्पात उत्पादन में वृद्धि करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड नाम से एक सरकारी कम्पनी खड़ी की है ताकि इसके तत्वावधान में ऐसे कारखाने खड़े किये जा सकें जिनमें प्लेट, चादरें तथा इसी प्रकार की इस्पात की अन्य वस्तुएँ तैयार की जा सकें। इस दिशा में भारत सरकार अब तक तीन विभिन्न देशों के साथ तीन विभिन्न स्थानों पर इस्पात के कारखान खोलने के सम्बन्ध में सम-झौता कर चुकी है। प्रत्येक इस्पात कारखाने की उत्पादन-क्षमता लगभग २० लाख टन प्रति वर्ष होगी। पहला कारखाना रूरकेला (उड़ीसा राज्य) में स्थापित किया जा रहा है। इसका ठेका दो जर्मन फर्मों मैसर्स फ्राइड क्रप और मैसर्स डिमैन ए० जी० को दिया गया है। इस योजना पर ७३ करोड़ रुपया खर्च होने का अनुमान है। दूसरा इस्पात कारखाना भिलाई (मध्य प्रदेश) नामक स्थान में एक रूसी फर्म द्वारा खड़ा किया गया है। तीसरा इस्पात कारखाना स्थापित करने के सम्बन्ध में ब्रिटेन की एक फर्म से समझौता हुआ है और बंगाल में दुर्गापुर नामक स्थान पर उसका निर्माण हो रहा है।

इन तीनों कारखानों के निर्माण का कार्य निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार चल रहा है। १९५६-५७ में इस विभाग के काम की समीक्षा के अनुसार प्रतिमान निश्चित कर दिए गए हैं मुख्य यंत्रों और सामान के लिए आर्डर दे दिए गए हैं और निर्माण

कार्य की शुरुआत कर दी गई है। दो विख्यात जर्मन फर्मों-क्रुप और डीमाग—की सहायता से रूरकेला इस्पात कारखाने का निर्माण किया गया है।

भिलाई इस्पात कारखाना

रूस सरकार द्वारा भिलाई इस्पात कारखाने की विस्तृत योजना पेश कर देने के वाद अप्रैल १९५६ में भारत ने यंत्र और सामग्री के लिए आर्डर दिया। सामान्य व्यापारिक शर्तों पर रूस से पाइप, क्रेन इत्यादि देने के लिए अन्य ९ समझौते किए गए। कारखाने से ६० मील दूर डल्ली राजहारा में कच्चे लोहे की खानों के विकास के लिए सोवियत विशेषज्ञों की सहायता से एक विस्तृत योजना तैयार की गई है। भिलाई से १२ मील दूर झाल में चूने के पत्थरों का भण्डार मिला है और इस स्थान तक एक रेल लाइन बिछाई जा रही है। यह कारखाना भी बनकर तैयार हो गया है।

दुर्गापुर इस्पात कारखाना

दुर्गापुर में इस्पात का कारखाना स्थापित करने के लिए प्रमुख ब्रिटिश इस्पात फर्मों के समूह से अक्तूबर, १९५६ में एक समझौता किया गया और कारखाने के निर्माण में काफी प्रगति हो चुकी है।

कारखानों के लिए कर्मचारी

इन इस्पात कारखानों को चलाने के लिए दक्ष और योग्य व्यक्ति सुलभ करने की योजना चालू है। यह अनुमान है कि तीन इस्पात कारखानों को चलाने के लिए भारत को १२० अनुभवी इंजिनियरों, १२०० योग्यता-प्राप्त इंजिनियरों, १०,००० दक्ष कर्मचारियों और ७००० कम दक्ष कर्मचारियों की आवश्यकता होगी।

९० इंजिनियरों का एक दल रूस के इस्पात कारखानों में प्रशिक्षण प्राप्त किया है। १०९ अन्य इजिनियरों और ४८७ दक्ष अधीक्षकों को प्रशिक्षण के लिए १९५७-५८ में रूस भेजा गया था। ६८ इंजीनियरों के एक दल ने पश्चिमी जर्मनी में प्रशिक्षण प्राप्त किया है। अभी हाल में अमेरिका के साथ हुए एक विशेष समझौते के अन्तर्गत अमेरिका में ८०० भारतीय इंजीनियरों को इस्पात-निर्माण की प्रक्रियाओं में विशेष प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई है। इस योजना के अन्तर्गत १०० इंजिनियरों का पहला दल अमेरिका से प्रशिक्षण प्राप्त कर वापस आ चुका है।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, विभिन्न इस्पात कारखानों की विकास योजनाओं के अमल में आने पर भारत का प्रतिवर्ष इस्पात उत्पादन २३ लाख टन तक पहुँच जाएगा तथा नये इस्पात कारखानों के निर्माण से १९६०-६१ तक भारत सरकार ६० लाख टन इस्पात प्रति वर्ष तैयार करने की स्थिति में हो जाएगा। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस्पात उत्पादन का यही लक्ष्य निर्धारित है। यह आशा की जाती है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के समाप्त होते-होते भारत इस्पात के मामले

में बहुत कुछ आत्म-निर्भर हो जाएगा। संक्षेप में इस समय देश में इस्पात-उत्पादन और इस्पात उद्योग की स्थिति इस प्रकार है—

भारत के इस्पात उद्योग पर एक दृष्टि

इस्पात कारखाने	पक लोहा (पिग आयरन)		बिक्री योग्य इस्पात	
	पंचवर्षीय योजना के पूर्व की वार्षिक उत्पादन दर टनों में	दिसम्बर १९५४ के आँकड़ों पर आधारित वार्षिक उत्पादन दर टनों में	पंचवर्षीय योजना के पूर्व की वार्षिक उत्पादन दर	दिसम्बर, ५४ के आँकड़ों पर आधारित उत्पादन दर टनों में
१. टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड	१०३१०००	१२६७२००	७२७०००	८८५७०००
२. इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी	७०००००	७२००००	२२५०००	५४७२०४
३. मैसूर गवर्नमेंट आयरन एण्ड स्टील वर्क्स	२५०००	५२०००	२२०००	२५०००
४. हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड (१९५४) रूरकेला उड़ीसा	उत्पादन शुरू		उत्पादन शुरू	
५. स्टील प्लान्ट भिलाई	उत्पादन शुरू		उत्पादन शुरू	
६. स्टील प्लान्ट दुर्गापुर	निर्माणावस्था में		निर्माणावस्था में	
कुल योग	१६५६०००	२०३९२००	९७४०००	१४५७८०४

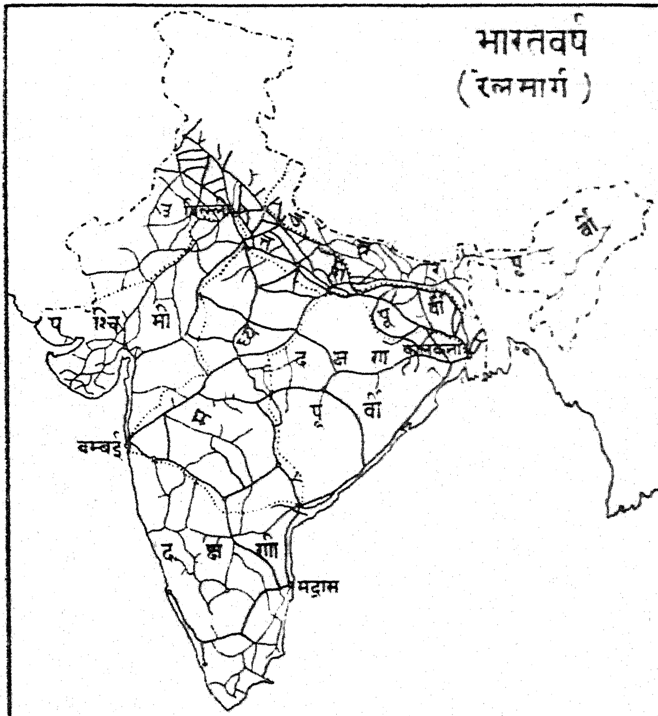
इसमें छोटे पैमाने पर उत्पादन करने वाली फैक्टरियाँ शामिल नहीं हैं।

—मेजर इण्डस्ट्रीज ऑफ इण्डिया एनुअल १९५४-५५ से उद्धृत

७

रेल उद्योग

आज भी जब कभी मैं छक-छक करती और धुँआ उगलती हुई रेलगाड़ी को लोहे की दो पटरियों पर दौड़ते देखता हूँ, मुझे अनायास ही हिन्दी के उपन्यास सम्राट् मुन्शी प्रेमचन्द की एक कहानी का स्मरण हो जाता है। कहानी का नाम तो मुझे स्मरण नहीं। परन्तु उसका कुछ अंश मैं आज भी भूल नहीं पाया हूँ।



किसी सज्जन की लड़की का ब्याह था। द्वारचार और भेंट-मिलाई की रसम होने के बाद मण्डप में पाणिग्रहण संस्कार प्रारम्भ हो चुका था। कुछ बराती, जिनकी दिलचस्पी विवाह संस्कार में नहीं थी, अलग बैठकर गपशप हाँकने लगे। उस समय

भारत में रेलों को चले बहुत समय नहीं हुआ था। जहाँ कहीं सभा, सोसाइटी जमती, या चार लोगों की महफ़िल लगती, घूम फिर कर रेलगाड़ी की महिमा और फिरंगियों की सूझ-बूझ की चर्चा छिड़ जाती। इस महफिल में भी इधर-उधर की चर्चा चलते-चलाते बात रेलगाड़ी पर आ अटकी। जिसने जो तबियत में आई, सुनाना शुरू किया और फिरंगियों की महिमा और शक्ति के बखान होने लगे। लड़की के एक बहनोई, जो बिचारे कम पढ़े-लिखे थे और बहुत सीधे-सादे थे, महफिल में आ बैठे और बहुत देर तक लोगों की बातें सुनते रहे। आखिर उनके पास बैठे एक बराती से न रहा गया। उन्होंने कहा, क्यों साहब! आप क्यों चुप बैठे हैं, कुछ अपनी भी कहिए न। लड़की के जीजा ने झेंपते हुए कहा, आप विद्वानों के सामने भला मैं क्या बोल सकता हूँ, परन्तु फिर भी एक बात बड़े आश्चर्य की है।

"वह क्या ?" वह सज्जन उत्सुकतावश बोले। इस बीच कुछ और लोग भी उनकी तरह मुखातिब हो गए। "हाँ हाँ, कहिए न साहब, आपकी तकरीर भी होनी चाहिए।"

"बात यह है साहब," अपना स्वर ऊँचा करते हुए लड़की के बहनोई ने कहा, "मैं यह अभी तक नहीं समझ पाया हूँ कि इतना भारी और इतना अधिक बोझा खींचने वाला यह रेल का इंजन बिना गिरे लोहे की दो पटरियों पर कैसे दौड़ लेता है।" इतना सुनना था कि सारी मण्डली हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई और लड़की के बहनोई साहब परेशान कि आखिर मैंने कौन सी ऐसी बात कह दी जिस पर यह लोग इतने हँस रहे हैं।

तात्पर्य यह कि लोगों में रेलों के प्रति कौतूहल और विस्मय की इतनी अधिक भावना थी कि जब कभी लोग रेलगाड़ी के आने की आवाज सुनते, हाथ का काम-काज छोड़ रेल की पटरी के किनारे आ एकत्र होते।

पूर्व इतिहास

जरा उस दिन की कल्पना कीजिए जब (१६ अप्रैल १८५३) को बम्बई और थाना के मध्य बिछाई गई २१$\frac{3}{4}$ मील लम्बी रेल-लाइन पर पहली रेलगाड़ी दौड़ी थी। कहते हैं उस दिन बम्बई और थाना के मध्य स्थित इस रेल लाइन के दोनों ओर लोहे के अजीबो-गरीब दानव को देखने के लिए ग्रामीण आबाल, वृद्ध, वनिताओं की भीड़ उमड़ पड़ी थी। और जब लोहे का वह दानव धुँआ उगलता और गर्जता हुआ उनके पास से गुजरता तो बच्चे भय से भाग खड़े होते, महिलाएँ विस्मय और कौतूहल से उसे ताकती रह जातीं और पुरुष यह सोचने लगते कि क्या ही अच्छा हो यदि वह इस पर एक बार सवारी कर पाते।

वस्तुतः, भारत में रेल-लाइन बिछाने का प्रस्ताव सर्वप्रथम १८४५ में रखा गया था, परन्तु इस प्रस्ताव को १८५३ के पूर्व कार्यरूप में परिणत न किया जा सका। सबसे पहली रेल-लाइन लार्ड डलहौजी के शासनकाल में १८५३ में बम्बई और थाना के मध्य बिछाई गई। इसके तीन वर्ष बाद १८५६ में हावड़ा और हुगली के बीच दूसरी रेल-लाइन और १८५६ में मद्रास में तीसरी रेल-लाइन बिछाई गई।

१६ अप्रैल १९५३ को भारतीय रेलों का शताब्दी समारोह मनाया जा चुका है। इस अवसर पर नई दिल्ली में एक रेल-प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था जो अपने ढंग की एक अभूतपूर्व प्रदर्शनी थी। यह पहला अवसर था जब भारत के जन-साधारण को भारतीय रेलों के विकास के बारे में विस्तृत और प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करने का सर्वप्रथम अवसर प्राप्त हुआ।

१०० वर्षों में आश्चर्यजनक प्रगति

इन १०० वर्षों के अन्दर भारत में रेलों का आश्चर्यजनक ढंग से विकास हुआ है। प्राप्त सूचना के अनुसार, इस समय भारत में कुल मिलाकर ११७७००० वर्ग मील क्षेत्र में ३४२७५ मील लम्बी रेल लाइनें बिछाई जा चुकी हैं। इस समय भारत की रेल यातायात व्यवस्था एशिया में सबसे बड़ी है। विभिन्न भारतीय रेल लाइनों पर कुल मिला कर ६२७३ स्टेशन हैं। सोनपुर (बिहार) स्टेशन का प्लेटफार्म संसार में सबसे अधिक लम्बा है। इसकी लम्बाई २४१५ फुट है। अभी तक जो सूचना सुलभ है, उसके अनुसार भारतीय रेलों में १० लाख से अधिक व्यक्ति काम करते हैं जिनको वेतन, इत्यादि देने पर प्रतिवर्ष रेल-प्रशासन को १२६८९ करोड़ रुपए खर्च करने पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त, भारतीय रेलें देश की विभिन्न व्यावसायिक कम्पनियों से प्रति वर्ष ९३ करोड़ रुपए मूल्य का माल खरीदती हैं। भारत के विभिन्न भागों में स्थित रेल लाइनों पर प्रति मिनट लगभग २३४० यात्री और प्रतिदिन लगभग ३,१३०,००० यात्री सफर करते हैं। भारतीय रेलों के पास इस समय सवारी गाड़ी के इतने डिब्बे हैं कि उन्हें जोड़ कर १२५ मील लम्बी रेल गाड़ी तैयार हो सकती है। कुल मिलाकर इस समय भारत के पास ८५०० इंजन, २१ हजार यात्री डिब्बे, और २०५००० माल गाड़ी के डिब्बे हैं। सरकार ने कुल मिलाकर भारतीय रेलों में ८६८ करोड़ रुपए की पूंजी लगा रखी है। प्रशासन की सुविधा के लिए भारतीय रेलों को ६ क्षेत्रों में विभक्त कर दिया गया है।

इतनी प्रगति के बावजूद भारत में रेलों का अभी बहुत अधिक विकास करना है और जब तक भारत रेल के इंजन, यात्री गाड़ी के डिब्बे, मालगाड़ी के डिब्बे तथा

रेलों के इंजनों के मामले में पूरी तरह आत्मनिर्भर नहीं हो जाता, तब तक देशों में रेल यातायात व्यवस्था का समुचित ढंग से विकास नहीं हो सकता।

इंजिनों के निर्माण की समस्या

प्रारम्भ में रेल के इंजनों का आयात इंग्लैंड तथा अन्य यूरोपीय देशों से होता रहा। १६३६ में भारत सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों की एक समिति ने यह सिफारिश की कि भारत में रेल के इंजन तैयार करने की दिशा में प्रयत्न किए जाने चाहिएँ। लेकिन उस समय तक युद्ध प्रारम्भ हो चुका था, अतएव इस दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हो सकी।

एक साहसिक प्रयत्न

युद्ध समाप्त होने के बाद इस दिशा में सर्वप्रथम कदम १६४५ में उठाया गया और टाटा लोको एण्ड इंजीनियरिंग नामक कारखाने की स्थापना की गई। इसका उत्पादन लक्ष्य ५० इंजन और ५० बौयलर प्रति वर्ष निर्धारित किया गया। सरकार ने यह भी निर्णय किया कि कंचनपाड़ा स्थित रेलवे वर्कशाप का विस्तार किया जाए ताकि उसमें प्रति वर्ष १२० इंजन और ५० अतिरिक्त बौयलर तैयार किए जा सकें। लेकिन इस बीच विभाजन हो जाने के फलस्वरूप इस योजना को कार्यान्वित करने की दिशा में कोई प्रगति नहीं की जा सकी। विभाजन के बाद भारतीय रेलवे बोर्ड ने पुनः इस प्रश्न पर विचार किया और १६४८ में यह सिफारिश की कि महिमाराम (बंगाल) नामक स्थान पर रेल के इंजन तैयार करने का एक कारखाना स्थापित किया जाए।

टाटा इंजीनियरिंग एण्ड लोकोमोटिव कम्पनी ने १६४५ में सरकार के साथ एक समझौता किया, जिसमें यह तय पाया गया कि तीन वर्षों के अन्दर इंजिनों का निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया जाए। परन्तु प्रशिक्षण प्राप्त कारीगरों के अभाव और आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस योजना को कार्यान्वित करने में बहुत कटिनाई हुई। अतः विवश होकर कम्पनी को सरकार से आर्थिक सहायता देने के लिए प्रार्थना करनी पड़ी। सरकार ने कम्पनी के २ करोड़ रुपए के शेयर खरीद लिए। १६५० में कम्पनी ने क्रौसमैफिक नामक एक जर्मन फर्म से समझौता किया और इस फर्म ने १६५१ से मीटर गाज रेल लाइन पर चलने वाले इंजनों का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया।

चितरंजन लोकोमोटिव कारखाने की स्थापना

महिमाराम नामक स्थित चितरंजन लोकोमोटिव कारखाने का निर्माण १ नवम्बर १६४८ से प्रारम्भ हुआ। इस कारखाने में सर्वप्रथम इंजन २६ जून १६५०

को वन कर तैयार हुआ। सरकार ने इंग्लैंड की एक फर्म के साथ समझौता किया जिसने कारखाना खोलने के लिए आवश्यक परामर्श और टैक्निकल सहायता सुलभ करने का भार स्वीकार कर लिया। यह निर्णय किया गया कि धीरे-धीरे रेल इंजन के अधिकाधिक पुर्जे भारत में ही तैयार किए जाएँ। अब हमने इस लक्ष्य को लगभग प्राप्त कर लिया है। १९५४ में इस कारखाने में जो ९० इंजन तैयार हुए इसके लग-भग सभी भाग भारत में ही तैयार हुए हैं। नवीनतम सूचना के अनुसार कारखाने से १००वाँ इंजन वन कर निकल चुका है। अब तक हमें जो आँकड़े सुलभ हैं उनके अनुसार चितरंजन कारखाने के उत्पादन सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

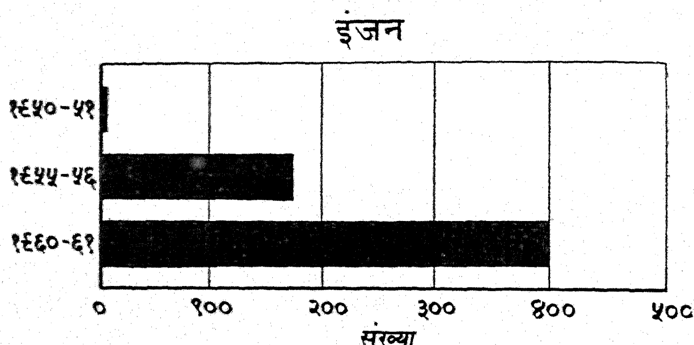
वर्ष	इंजनों की संख्या	पुर्जे तैयार करने के सम्बन्ध में प्राप्त लक्ष्य
१९५०	३	—
१९५१	३३	३०%
१९५२	४४	६०%
१९५३	६६	८०%
१९५४	९०	१००%

अभी तक विदेशों से जितने इंजन मँगाए जाते रहे हैं, उनके आँकड़े इस प्रकार हैं—

वर्ष	इंजनों की संख्या	पुर्जे तैयार करने के सम्बन्ध में प्राप्त लक्ष्य
१९४८-४९	१४९	४.५४ लाख रु०
१९४९-५०	४३२	१९.०३ लाख रु०
१९५०-५१	२२०	३.० लाख रु०
१९५१-५२	८०	
१९५२-५३	२०७	२०.८० लाख रु०
१९५३-५४	३१३	

जब चितरंजन कारखाने और टेलको कम्पनियाँ पूरी शक्ति से इंजनों का निर्माण करने लगेंगी तो भारत में प्रतिवर्ष २०० से भी अधिक रेल के इंजन तैयार होने लगेंगे। नवीनतम सूचना के अनुसार, इस उत्पादन-लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया है और इस बात की आशा है कि प्रति वर्ष लगभग ३०० इंजन तक तैयार हो सकेंगे।

इस प्रकार, द्वितीय पंचवर्षीय योजना के काल में भारत रेल-इंजनों के मामले में पूरी तरह आत्म-निर्भर हो जाएगा, ऐसी आशा है। इससे न केवल भारत अपनी इंजनों की आवश्यकता पूरी कर सकेगा, बल्कि प्रति वर्ष लगभग ८ करोड़ रुपए बराबर की विदेशी मुद्रा भी बचा सकेगा।



डिब्बों के निर्माण का उद्योग

द्वितीय महायुद्ध के दिनों में रेलगाड़ी का सफर करना मानो एक आफत मोल लेना था। उन दिनों रेलगाड़ियों की भीड़-भाड़ और रेल-पेल का स्मरण कर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। रेलगाड़ियों में डिब्बे थोड़े होते थे और यात्रियों की संख्या का कोई ठिकाना न था। अतएव गाड़ी के स्टेशन पहुँचने पर वह रेल-पेल मचती कि होश-हवास गायब हो जाते। दरवाजों से घुसने की जगह न मिलती तो लोग खिड़कियों से फाँदकर अन्दर घुसते और गाड़ी छूटने पर इस बात का शुक्र मनाते कि चलो खड़े होने के लिए तो जगह मिल गई। जो बेचारे किसी भी प्रकार अन्दर न घुस पाते, पायदानों पर लटकते चलते। उन्हें यह सन्तोष रहता कि चलो थोड़ा बहुत खतरा उठा कर भी उनकी यात्रा पूरी तो हो जाएगी। डिब्बों के अन्दर भी भीड़-भाड़ की हद होती। २० या ३० आदमियों कि डिब्बे में १०० आदमी ठूँस-ठूँसकर भरे होते। जाड़े में तो किसी प्रकार काम चल जाता, परन्तु गर्मियों में तो डिब्बों के अन्दर बैठ कर भी प्राण होठों पर आ जाते। इतनी भी जगह न मिलती कि आदमी दरवाजे से उतर कर या खिड़की के पास पहुँच कर अपने सूखे होठों को पानी से तर कर सकता।

यात्री डिब्बों की भारी कमी

तथ्य यह था कि वह लड़ाई का जमाना था। देश में इतने अधिक यात्री डिब्बे नहीं थे कि बढ़ती हुई माँग को पूरा किया जा सके। इसके अतिरिक्त, देश के अन्दर बड़े पैमाने पर यात्री डिब्बों का निर्माण करने की भी कोई व्यवस्था नहीं थी। युद्ध जारी रहने के कारण विदेशों से डिब्बे मँगाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। लिहाजा जो कुछ था उसी से काम चलाना पड़ता था। सरकार इतनी परेशान थी कि उसने जनता से आवश्यकता पड़ने या अत्यधिक आवश्यक होने पर ही सफर करने की बार-म्बार अपीलें कीं, परन्तु उनका भी कोई असर न पड़ा।

मालगाड़ी के डिब्बों के लिए भी इसी प्रकार की तबाही मची रहती थी। यद्यपि मालगाड़ी के डिब्बे अपेक्षाकृत अधिक संख्या में थे और देश में कई कम्पनियाँ उनका निर्माण भी कर रही थीं, परन्तु इसके बावजूद भी व्यापारियों को वैगन प्राप्त करने के लिए महीनों रेल विभाग और स्टेशन मास्टरों का मुख ताकना पड़ता। माल बाबू की खुशामद कर और उनका कमीशन देने पर ही बड़ी मुश्किल से उन्हें वैगन मिल पाता था।

स्थिति में सुधार

आज न तो रेलगाड़ियों में इतनी भीड़-भाड़ है और न मालगाड़ी के डिब्बों की ही कोताही है। फिर भी, किसी भीड़-भाड़ के अवसर पर रेल यात्रा अब भी बहुत कष्टदायक होती है। देश के विशाल आकार और रेल-व्यवस्था के प्रसार को दृष्टि में रखते हुए यह कहने में कोई संकोच नहीं कि अभी देश में यात्री-रेलगाड़ियों और मालगाड़ियों के डिब्बों की अत्यधिक कमी है।

यात्री डिब्बों और वैगनों की संख्या मे वृद्धि

अतएव रेल के इंजन तैयार करने के साथ-साथ यात्री-डिब्बे और मालगाड़ी के डिब्बे प्रचुर परिमाण में तैयार करने की समस्या भी देश के सामने है। पिछले २० वर्षों से भारत में रेल के डिब्बे तैयार करने की ओर कुछ न कुछ प्रयत्न किए जा रहे थे, यद्यपि प्रतिकूल परिस्थितियो के कारण द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक इस प्रयत्न में कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। इस समय भी चार कम्पनियाँ मुख्यत: वैगन (मालगाड़ी के डिब्बे) बनाने का कार्य कर रही हैं। इसके अलावा, देश के विभिन्न भागों में स्थित रेलवे वर्कशापों में भी वैगन तैयार किए जाते हैं। इस समय

देश में ६००० मालगाड़ी के डिब्बे प्रति वर्ष तैयार हो रहे हैं। यह आशा है कि इनका उत्पादन २० से लेकर २५ प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकेगा। युद्धोत्तर काल में देश में वगनों के उत्पादन की स्थिति इस प्रकार थी—

वर्ष	संख्या	वर्ष	संख्या
१९४८-४९	२५२०	१९५०-५१	२९२४
१९४९-५०	—	१९५१-५२	२९२५

डिब्बों का आयात

इसके अलावा, युद्धोत्तर काल में भारत ने विदेशों से भी मालगाड़ी के डिब्बे मँगाए ताकि देश में मालगाड़ी के डिब्बों की तात्कालिक कमी को कुछ हद तक दूर किया जा सके। १९४८-५६ के मध्य विदेशों से मँगाए गए मालगाड़ी के डिब्बों सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

वर्ष	आयात संख्या	वर्ष	आयात संख्या
१९४८-४९	८	१९५२-५३	१७४४
१९४९-५०	३४८	१९५३-५४	५४६०
१९५०-५१	३३३	१९५४-५५	४७४०
१९५१-५२	२४६९	१९५५-५६	४७४०

यात्री गाड़ियों के डिब्बे

इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक रेलवे वर्कशापों में ही सीमित तौर पर सवारी गाड़ी के डिब्बों का निर्माण होता रहा। बड़े पैमाने पर विदेशों से रेलगाड़ी के डिब्बे मँगाने की सरकारी नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। रेलवे वर्कशापों में डिब्बों के ढाँचे तैयार किए जाते और विदेशों से पहिया, धुरी, फ्रेम, बिजली का सामान, डायनमों, इत्यादि मँगाए जाते थे। इस प्रकार, नाम करने के लिए यहाँ पर भी कुछ डिब्बे तैयार होते रहे। लेकिन युद्धोत्तर काल में, जब भारत स्वाधीन हुआ तो देश में इन वस्तुओं को तैयार करने की दिशा में भी प्रयत्न शुरू हुए और कई कम्पनियों ने सवारी गाड़ी के डिब्बे तैयार करने का कार्य बड़े पैमाने पर प्रारम्भ कर दिया। इन कम्पनियों के नाम इस प्रकार हैं—

१. हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट लिमिटेड,
२. इण्डियन स्टैन्डर्ड वैग को० लिमिटेड,
३. मैसर्स ब्रैकवेल को० लिमिटेड।

हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट कम्पनी में प्रति वर्ष १०० से लेकर १५० तक डिब्बे तैयार होते हैं। ये सभी फर्में मिलकर प्रति वर्ष २५० बोगियाँ (सवारी गाड़ी के डिब्बे) तैयार करती हैं तथा रेलवे वर्कशापों में भी प्रति वर्ष कुल मिलाकर ५०० डिब्बे तैयार हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, टेलको (टाटा लोकोमोटिव एण्ड इंजीनियरिंग कम्पनी) भी अब प्रति वर्ष ४०० बोगियों का निर्माण करने में समर्थ है। १९४८-५६ में देश में बोगियों और उसके विभिन्न भागों के उत्पादन सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

वर्ष	बोगियाँ	फ्रेम
१९४८-४९	२३८	११४
१९४९-५०	३३७	१५४०
१९५०-५१	८७९	५८४
१९५१-५६	४३८०	

प्रथम पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में देश में ४३८० बोगियों का निर्माण हुआ तथा विदेशों से लगभग १२९४ बोगियाँ मँगाई गई। पंचवर्षीय योजना में निर्धारित लक्ष्य के अनुसार इस अवधि में ५५१४ बोगियों (डिब्बों) और ३०२१ वैगनों की आवश्यकता थी। १९५१-५६ के मध्य बोगियों के आयात विषयक आँकड़े इस प्रकार हैं—

आयात सम्बन्धी आँकड़े : १९५१-५६

वर्ष	आयात संख्या
१९५१-५२	९८
१९५२-५३	२७४
१९५३-५४	२९२
१९५४-५५	३१५
१९५५-५६	३१५

पेरम्बूर का नया कारखाना

इसके अतिरिक्त, भारत सरकार ने पेरम्बूर (मद्रास) में रेल के डिब्बे तैयार करने के लिए ४ करोड़ रुपए की लागत से एक कारखाना खड़ा कर लिया है जिसमें उत्पादन कार्य का श्री गणेश १९५५ में हो गया है। यह विश्वास किया जाता है कि अगले ५ वर्षों में इस कारखाने की उत्पादन-क्षमता प्रति ६ घण्टे पीछे एक डिब्बे तक पहुँच जाएगी और तब न केवल भारत बोगियों के मामले में आत्म-निर्भर हो जाएगा बल्कि एशिया के अन्य देशों की माँगें भी पूरी कर सकेगा। यह कारखाना न केवल दक्षिण-पूर्वी एशिया में अत्यधिक आधुनिक और विशालतम है, बल्कि दुनिया के सबसे बड़े कारखानों में भी गिना जाता है। इस कारखाने में लगी मशीनें किसी एक देश से प्राप्त नहीं हुई हैं, बल्कि अधिकांश जर्मनी से तथा शेष ब्रिटेन और चेकोस्लोवाकिया से आई हैं। कुछ मशीनें भारत में भी बनी हैं। इस्पात की चादरें अमेरिका से आ रही हैं तथा जोड़ इत्यादि कार्यों का संचालन एक स्विस विशेषज्ञ की देख-रेख में होता है। संक्षेप में, यह एक आदर्श कारखाना है जो यातायात के क्षेत्र में भारत को आत्म-निर्भर बनाने में आगामी ५ वर्षों में महत्त्वपूर्ण योग देगा।

रेलें यातायात का मुख्य साधन

आज भारत में रेलें यातायात का एक मुख्य साधन बन गई हैं। शायद बहुत कम देशों में सफर करने और माल ढोने के लिए रेलों का इतना अधिक इस्तेमाल होता हो। आज भारत में ८० प्रतिशत माल रेलों द्वारा ही गन्तव्य स्थानों को भेजा जाता है तथा ७० प्रतिशत यात्री रेलों द्वारा ही सफर करते हैं। १९५५ में प्रतिदिन औसतन ३६ लाख यात्री रेलों से सफर करते थे। इस समय रेलों में लगभग ९११ करोड़ रुपए की पूंजी लगी थी। ३१ मार्च, १९५५ को समाप्त होने वाले वर्ष में रेलों से कुल २८६.९८ करोड़ रुपए की आमदनी हुई थी। भारतीय रेलों में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या लगभग १० लाख है। पिछले १०० वर्षों में भारतीय रेलों ने जो प्रगति की है उसका पता निम्न तालिका से भली-भाँति चलता है—

रेलों की प्रगति

भारतीय रेलों की प्रगति : १८५३ से १९५३ तक

(लाखों रुपयों में)

वर्ष	सफर मीलों में	पूंजी	कुल आमदनी	खर्च	आय
१८५३	२०	३८	०.९०	४१	०.४९
१८६३	२५०७	५३००	२२०	१३३	८७
१८७३	५६९७	९१७३	७२३	३७८	३४५
१८८३	१०४४७	१४८३१	१६३९	७९७	८४२
१८९३	१८४५९	२३३१८	२४०८	११३५	१२७३
१९०३	२६९५६	३४१११	३६०१	१७११	१८९०
१९१३-१४	३४६५६	४९५०९	६३५९	३२९३	३०६६
१९२३-२४	३८०३९	७१७९३	१०७८०	६८४५	३९३५
१९३३-३४	४२९५३	८८४४१	९९५८	६९५४	३००४
१९४२-४४(अ)	४०५१२	८५८५४	१९९३२	११४११	८५२१
१९४७-४८(ब)	३३९८५	७४२२०	१८३६९	१६३९४	१९७५
१९४८-४९	३३८६१	७७५८८	२३४१२	१८४०६	५००६
१९४९-५०	३४००२	८१३०७	२५८३२	२०७२३	५१०९
१९५०-५१	३४०७९	८३८१८	२६४६२	२१४३९	५०२३
१९५१-५२	३४११९	८६१५५	२९४१४	२२७५९	६६५५
१९५२-५३	३४२७५	८६८५५	२७२८८	२१९९९	५२२९
१९५३-५४	३४४०६	८७८४५	२७२८१	२११९९	४०८२

—इण्डिया १९५६ से उद्धृत

(अ) १९३७ में बर्मा रेलवे भारतीय रेलों से अलग हो गई।

(ब) भारत और पाकिस्तान का विभाजन।

सरकार द्वारा नियन्त्रण

१९४४ में सरकार ने समस्त रेलों का प्रबन्ध अपने हाथों में लिया। इसके पूर्व विभिन्न रेल-लाइनों का संचालत विभिन्न कम्पनियाँ और सरकार मिलजुल कर

करती थीं। कुछ ऐसी रेल-लाइनें थीं, जिनका स्वामित्व एवं संचालन सरकार के हाथ में था। कुछ रेल लाइनों का संचालन कम्पनियाँ करती थीं, यद्यपि उनका स्वामित्व सरकार को प्राप्त था। कुछ ऐसी भी रेल लाइनें थीं जिनका स्वामित्व और संचालन, दोनों ही गैर-सरकारी कम्पनियों के हाथों में था। कुछ देशी राज्यों ने अपनी सीमाओं के अन्दर रेल-यातायात की व्यवस्था की हुई थी। प्रबन्ध-व्यवस्था और कुशल संचालन की दृष्टि से इस प्रकार का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजन वांछनीय नहीं था।

रेलों का पुनर्गठन

अतएव पुनर्गठन की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए रेलवे-बोर्ड ने १९५० में रेलों का वर्गीकरण करने के सम्बन्ध में एक योजना तैयार की जो १९५१ और १९५२ में क्रियान्वित कर दी गई। इसके पूर्व भारत में ३५ विभिन्न रेल-लाइनें थी। नई योजना के अन्तर्गत भारत की समस्त रेल-लाइनों को ६ क्षेत्रों में बाँट दिया गया। भारतीय रेलों को इस नई योजना के अन्तर्गत जिन ७ भागों में बाँटा गया है उनका संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

क्षेत्र	स्थापना की स्थिति	कौन-कौन-सी रेलवे लाइनें शामिल की गईं	प्रधान कार्यालय	लम्बाई मीलों में, ३१ मार्च, १९५५ तक
१. दक्षिणी	१४ अप्रैल, १९५१	मद्रास एण्ड साउथ मरहठा, साउथ इंडिया एंड मैसूर रेलवे	मद्रास	कुल=६०५८६२ बड़ी लाइन १७८४.८१ मीटर ४१७९.१२ छोटी ९५७०
२. मध्य	५ नवम्बर, १९५१	ग्रेट इंडिया पेनि० रेलवे, निजाम स्टेट सिंधिया और धौलपुर रेलवे	बम्बई	कुल=५६३२.१२ बड़ी लाइन ४०९३ ०८ मीटर ७७२.४९ छोटी ७७६.५५
३. पश्चिमी	५ नवम्बर, १९५१	बम्बई बड़ौदा और से० इंडिया, सौराष्ट्र कच्छ, राजस्थान और जयपुर	बम्बई	कुल=५६२१.४२ बड़ी लाइन १३९८.०५ मीटर ३५५७.९७ छोटी ७७४.४०

क्षेत्र	स्थापना की स्थिति	कौन-कौन-सी रेलवे लाइनें शामिल की गईं	प्रधान कार्यालय	लम्बाई मीलों में, ३१ मार्च, १९५५ तक
४. उत्तरी	१४ अप्रैल, १९५२	पूर्वी पंजाब, जोधपुर बीकानेर, इस्ट इंडिया रेलवे के तीन भाग	दिल्ली	कुल = ६०५१.६४
				बड़ी ३९१७.३६
				मीटर २००६.३५
				छोटी १२७.९३
५. उत्तरी पूर्वी	१४ अप्रैल, १९५२	अवध एण्ड तिरहुत, असम, फतेहगढ़ जि० (बम्बई) बड़ौदा एन्ड सेन्ट्रल इण्डिया	गोरखपुर	कुल = ४७९९.९२
				बड़ी २.१५
				मीटर ४७४३.५९
				छोटी ५४.१८
६. पूर्वी (अ)	१ अगस्त, १९५५	पूर्वी भारत (ऊपर के तीन डिविज़न छोड़कर,	कलकत्ता	कुल = २३२१
				बड़ी २३०४
				मीटर ———
				छोटी १७
७. दक्षिण पूर्वी	१ अगस्त, १९५५	बंगाल नागपुर रेलवे	कलकत्ता	कुल = ३३०९
				बड़ी २४७४
				मीटर ———
				छोटी ९२५

—इंण्डिया १९५६ से उद्धृत

लम्बाई, पूँजी, आय,

भारतीय रेलों के सम्बन्ध में कुछ उल्लेखनीय तथ्य (१९५३-५४)

१. लाइनों की कुल लम्बाई (मीलों में)	३४४०५.५८
(क) बड़ी लाइन (५½′)	१५८३१ ९०
(ख) मीटर लाइन (३′ और ३⅜″)	१५२५९.५२
(ग) छोटी लाइन (२′७ और २′)	३३१४.१६
२. रेलों में लगी हुई पूंजी (करोड़ रु० में)	८७८.४५
३. कुल आय (करोड़ रुपयों में)	२७२. ८ (क)
४. खर्च (करोड़ रुपयों में)	२३१.९९

५. ग्राय (खर्च काटकर) (करोड़ रु० में)	४०.८८
६. यात्रियों की संख्या (करोड़ में)	
(१) एयर कण्डीशन क्लास	४६३००
(२) प्रथम श्रेणी	१२७६०५००
(३) द्वितीय श्रेणी	४२५७४००
(४) इण्टर क्लास	१८४६०६००
(५) तीसरी श्रेणी	११८४८३६४००
७. किराया से ग्राय (करोड़ों रुपयों में)	१०१.३५
८. माल (लाख टनों में)	९९३.६१
९. माल की ढ़ुलाई से ग्राय (रुपयों में)	१४५.३९

विदेशी रेलों की तुलना में भारतीय रेलें

भारत में रेल मार्गों की कुल लम्बाई ३४ हजार ७०५ मील है। ग्रब तक एशिया में भारत का रेल उद्योग सबसे बड़ा है तथा संसार में इस दृष्टि से इसे चौथा स्थान प्राप्त है।

पूरे देश में लगभग ५५० मील का ही रेल-मार्ग ऐसा रह गया है जिसे निजी कम्पनियाँ चलाती हैं। बाकी पूरी रेल-व्यवस्था सरकार के ग्रधीन है। संसार की जिन रेलों का राष्ट्रीयकरण हुग्रा है, उनमें भारतीय रेलों का दूसरा स्थान है। पहला स्थान रूस की रेल का है। रेल मार्गों की लम्बाई के हिसाब से भारत की रेल-व्यवस्था एशिया में सबसे बड़ी है। दूसरा स्थान चीन ग्रौर तीसरा स्थान जापान का है। नीचे रेल मार्गों की लम्बाई के हिसाब से भारतीय रेलों की तुलना विदेशों की कुछ रेल लाइनों के साथ की गई है—

भारत	३४,७०५ मील
जापान	१२ ४५६ मील
चीन (ग्रनुमानित)	१९,००० मील
पाकिस्तान	७,०८२ मील
ब्रिटेन	१९,१५१ मील
कनाडा	४१,१५८ मील
ग्रमेरिका	२,२४,८१६ मील
दक्षिण ग्रफ्रीका (१९५३-५४)	१ ४१३ मील
फ्रांस	२५ ६०० मील
ग्रास्ट्रेलिया (१९५३-५४)	२६,६३३ मील

विस्तार की आवश्यकता

इस तालिका से पता चलता है कि भारत की रेल-व्यवस्था संसार के कितने ही देशों से व्यापक और विस्तृत है, लेकिन इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना होगा कि भारत के क्षेत्रफल और जनसंख्या के हिसाब से अभी बहुत थोड़े क्षेत्र में ही रेलें चल रही हैं। क्षेत्रफल के हिसाब से भारत में प्रत्येक १००० वर्ग मील में सिर्फ २७ मील की दूरी में ही रेल चलती है। कनाडा में यह औसत १२, फ्रांस में १२०, जापान में ८७ और अमेरिका में ७४ है। जनसंख्या के हिसाब से १ लाख की आबादी पर सिर्फ ९ मील में ही रेल चलती है। अमेरिका में यह औसत १३८, ब्रिटेन में ३७, कनाडा में २७, फ्रांस में ६० और जापान में १४ है।

पश्चिमी देशों की तुलना में भारत में रेल मार्ग बहुत कम है। इसको ध्यान में रखते हुए अगर यह तुलना की जाए कि साल भर में कितने यात्री और कितना माल कितनी दूर ढोया गया तो भारत का स्थान विदेशों से नीचे नहीं पड़ेगा। यहाँ पर सन् १९५४-५५ के आंकड़े दिए जाते हैं।

देश	यात्री	यात्री मील	माल ढुलाई (टनों में)	टन-मील
भारत	१३,००,२२४	३,८६,४९,३१२	१,१५,११७	२,७०,१८,६३७
ब्रिटेन	९,९१,१९३	२,०७,१२,०००	२,८३,४९८	२,२०,२९,४८७
कनाडा	२७,३८८	२७,५३,९५१	१,३३,५४४	५,६५,५०,०४८
अमेरिका	४,३९,३५६	२,०२,८६,००८	२२,९७,९९६	५४,९२,५८,८००
फ्रांस	५,००,३००	१,६५,०९,८०१	१,६६,५२८	२,५४,०४,०३६
जापान	३५,४६,९९५	५,१९,१९,०१२	१,४७,१५२	२,४१,१७,८७२
दक्षिणी अफ्रीका	२,७५,०३९	अप्राप्य	६२,४४५	१,५२,३४,६००

ऊपर की तालिका से यह स्पष्ट है कि आलोच्य वर्ष में सिर्फ जापान की रेलों में ही अधिक यात्रियों ने यात्रा की। अमेरिका और कनाडा में रेल-यात्रियों की संख्या कम होने का एक कारण यह है कि वहाँ अधिकांश लोग मोटर द्वारा अथवा वायुयान द्वारा यात्रा करते हैं।

प्रति व्यक्ति पीछे रेल यात्रा का औसत

१९५४-५५ के जो आँकड़े ऊपर दिए गए हैं, उनसे यह भी विदित होता है कि उस साल भारत में प्रति व्यक्ति पीछे रेल यात्रा का औसत १०३ मील रहा। ब्रिटेन

में यह औसत ४०८ मील, जापान में ५९९ मील, फ्रांस में ३८५ मील, अमेरिका में १८० मील और कनाडा में १८१ मील रहा। भारतीय रेलों ने १९५४-५५ में प्रत्येक व्यक्ति पीछे सिर्फ ७२ टन माल ढोया। अमेरिका में यह औसत ३७२२, कनाडा में ३३८२, ब्रिटेन में ४३५, फ्रांस में ५९३, जापान में २८५ और दक्षिण अफ्रीका में ११५८ टन रहा।

रेल यात्रा पर प्रति व्यक्ति व्यय

नीचे जो तालिका दी जा रही है, उससे यह पता चल जाएगा कि १९५३-५४ में किस देश में प्रति-व्यक्ति राष्ट्रीय-आय क्या थी, प्रत्येक व्यक्ति ने रेल-यात्रा पर कितना खर्च किया और इन दोनों का परस्पर क्या अनुपात था—

देश	प्रति व्यक्ति आय (रु० में)	रेल यात्रा पर प्रति व्यक्ति व्यय, रु० में	रेल यात्रा पर राष्ट्रीय आय का प्रतिशत खर्च
१. आस्ट्रेलिया	४३७३	४९	१.१
२. कनाडा	६२३८	२७	०.४
३. फ्रांस	३३२३	४०	१.२
४. भारत	२८४	३	१.१
५. इटली	१४२१	१५	१.१
६. जापान	९१०	१८	२.०
७. ब्रिटेन	३८८०	३०	०.८
८. अमेरिका	९१००	२५	०.३

उक्त आंकड़ों से पता चलता है कि भारत का एक औसत नागरिक दूसरे देशों के नागरिकों से रेल-यात्रा पर कम रुपए खर्च नहीं करता।

कर्मचारियों की दक्षता

नीचे दी गई एक और तालिका से पता चलेगा कि सन् १९५४-५५ में भारतीय रेलों में यातायात का काम करने वाले कर्मचारियों तथा विदेशी रेलों के कर्मचारियों ने कितना काम किया। इससे यह स्पष्ट है कि जापान को छोड़कर भारतीय रेलों के कर्मचारियों के काम का प्रतिशत विदेशी रेलों से कहीं अधिक है।

प्रति कर्मचारी पीछे

देश	यात्रियों की संख्या	यात्री-मील	माल ढुलाई (टनों में)	टन-मील
भारत	१३४२	३६,८८२	११६	२७,८८०
अमेरिका	४१३	२७,५०६	२,१५८	५ १५,८७८
ब्रिटेन	१७१७	३५,८८५	४६१	३८,२७१
कनाडा नेशनल				
रेल—	१५०	१२,३७३	६६७	२,७६,४३५
पैसफिक रेल—	१०६	१४,७२६	६२३	२,७१,८२४
जापान(१६५३-५४)	७६३८	१,१६,१६२	३२६	५५,३१७
फ्रांस	१२६०	४२,५६६	४२६	६५,४६८

द्वितीय पंचवर्षीय योजना और रेलें

पहली योजना की अवधि में भारतीय रेलों का फिर से सुधार करने का यत्न किया गया। इस काल में मुख्यत: पुराने इंजनों, डिब्बों और अन्य साज-सामान के बदलने का काम हुआ है। फिर रेलों में लोग सफर भी अधिक करने लगे और माल भी अधिक आने-जाने लगा। रेलों ने इस दुहरे भार और दायित्व को सँभालने और निभाने का प्रयत्न किया।

पहली पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत रेलों के विकास के लिए ४ अरब रुपए की व्यवस्था की गई थी, परन्तु अनुमानत: कुल व्यय इस रकम से ३२ करोड़ रुपया अधिक हुआ। दो अरब चालीस करोड़ रुपया तो केवल इंजन आदि खरीदने में ही खर्च हो गया। इस धन से १५८६ इंजन खरीदे गए।

युद्ध के समय रेल की कुछ लाइनें बन्द कर दी गईं थीं और उनकी पटरियाँ भी उखाड़ दी गईं थीं। केन्द्रीय परिवहन मंडल ने जिन लाइनों को दुबारा खोलने की सिफारिश की थी, उनमें से एक को छोड़कर सभी रेल लाइनें खोली जा चुकी हैं। इस अवधि में सात और लाइनें खोलने की मंजूरी दी गई थी। बारह लाइनों का काम पूरा हो गया है। कुछ और नई लाइनें भी बिछाई जा रही हैं।

जैसा कि इंजन-निर्माण से सम्बन्धित अध्याय में बताया जा चुका है, चितरंजन कारखाने ने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है। पिछले वर्षों में इस कारखाने ने ३३७ इंजनों का निर्माण किया, जो निर्धारित उत्पादन लक्ष्य से २५ प्रतिशत अधिक था। पैराम्बूर का रेल के डिब्बे बनने का कारखाना भी खूब तरक्की कर रहा है।

पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि में रेल कारखानों में अनुमानतः ३४१५ सवारी डिब्बे, हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्टरी में ७०६, डिब्बे और निजी कारखानों में २३० डिब्बे बनकर तैयार हुए। इसके अलावा गैर-सरकारी निर्माताओं ने इन पाँच वर्षों में ४१२०० माल के डिब्बे तैयार करने का निश्चय किया है। आयोजन के अन्तिम वर्ष में माल के डिब्बों का उत्पादन बढ़ कर १५ हजार डिब्बे प्रति वर्ष हो गया।

भावी कार्यक्रम

यद्यपि रेल के इंजन और डिब्बे काफी बड़ी संख्या में तैयार हुए हैं, परन्तु फिर भी बहुत से पुराने घिसे हुए इंजन और डिब्बे अब भी चल रहे हैं। इस समय बड़ी लाइन के ३२ प्रतिशत और छोटी लाइन के २६ प्रतिशत इंजन और दोनों के १७.१७ प्रतिशत माल के डिब्बे घिस चुके हैं। यही हालत बड़ी लाइन के २४ प्रतिशत और छोटी लाइन के २६ प्रतिशत सवारी डिब्बों की है।

सराहनीय कार्य

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी रेलों ने बहुत सुन्दर कार्य कर दिखाया है। सन् १९५१-५२ में रेलों ने ९ करोड़ ६७ लाख टन और १९५५-५६ में ११ करोड़ ५० लाख टन माल ढोया है।

रेलों की आर्थिक स्थिति में भी इस दौरान काफी मजबूती आई है। १९५१-५२ में रेलों की असली आय २ अरब ९४ करोड़ १४ लाख रुपए तथा १९५५-५६ में ३ अरब १४ करोड़ १० लाख रुपए थी। आयोजन के प्रथम तीन वर्षों में कार्य संचालन का व्यय बढ़ा और १९५३-५४ में यह ८९.०२ प्रतिशत तक पहुँच गया। परन्तु चौथे वर्ष स्थिति पुनः सँभल गई और यह व्यय घट कर ८१.७४ हो प्रतिशत गया।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य

यह सामान्यतया लोगों को विदित है कि दूसरी योजना की अवधि में रेलों के विकास के लिए जो धन राशि माँगी गई थी उसमें कुछ कमी कर दी गई है। रेलों

के विकास के लिए ११ अरब २५ करोड़ रुपया स्वीकार किया गया है, जिसमें से पौने चार अरब रुपया रेल विभाग को स्वयं लगाना है। अब यह इजाजत भी मिल गई है कि यदि इस बीच रेलों की आय बढ़ गई तो रेल विभाग मार्ग विकास कार्यों पर और धन भी व्यय कर सकेगा।

११.२५ अरब रुपयों से १५ प्रतिशत अधिक मुसाफिर और ४ करोड़ ७० लाख टन अधिक माल ढोने की व्यवस्था की जा सकेगी। इसमें वह ५० लाख टन माल भी शामिल है, जिसकी ढुलाई की व्यवस्था प्रथम पंचवर्षीय योजना के अवधि-काल में नहीं हो सकी।

माल ढोने की ताकत बढ़ने से इस्पात उद्योग की वृद्धि के लिए आवश्यक ढाई करोड़ टन कोयले और अन्य कच्चे माल की ढुलाई की समस्या भी हल हो जाएगी। इसके अलावा, ६० लाख टन कोयला और ४० लाख टन सिमेंट भी ढोया जा सकेगा। परन्तु राष्ट्र के व्यापार से सम्बद्ध सामग्री की ढुलाई का प्रबन्ध बहुत कम रहेगा।

हर वर्ष यात्री के लिए सुलभ स्थान में तीन प्रतिशत वृद्धि करने की व्यवस्था की जाएगी, परन्तु जिस ढंग से रेलों में सफ़र करने वालों की संख्या बढ़ रही है, उसे दृष्टि में रखते हुए यह व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं है।

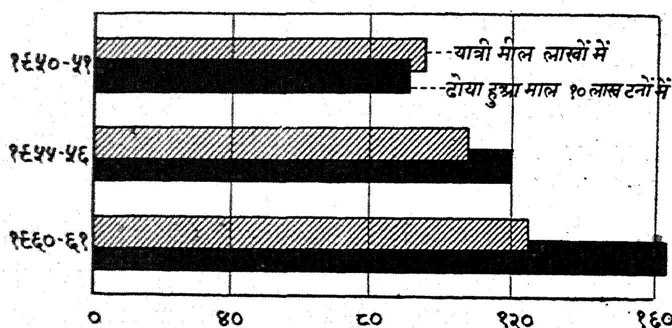
अर्थाभाव के कारण नई रेल की लाइनें बिछाने का काम बड़े पैमाने पर करना सम्भव नहीं दीखता। अभी लगभग ८५० मील में लाइनें बिछाने का ही विचार है। इस्पात और कोयला उद्योग के लिए इन लाइनों की सख्त आवश्यकता है। यात्री और माल के परिवहन के लिए जो लाइनें बिछाई जाएँगी, उनमें मुजफ्फरपुर, दरभंगा, रामशाही बिन्नागुड़ी, करामेत, बसीरहाट और गुना-उज्जैन लाइनें मुख्य हैं। बाद में अधिक धन मिलने पर और लाइनें बिछाना भी सम्भव होगा।

धन का वितरण

रेलों के लिए ११२५ करोड़ रुपए की जो व्यवस्था की गई उसे निम्नलिखित ढंग पर व्यय किया जाएगा। ३८० करोड़ रुपए डिब्बे खरीदने पर, लगभग ६.६ करोड़ रुपए नई रेल लाइनें बिछाने पर और १०० करोड़ रुपए रेल लाइनों को सुधारने और उन्हें मजबूत बनाने पर खर्च होंगे। दोहरी रेल-लाइनें बिछाने, छोटी लाइनों की जगह बड़ी लाइनें बिछाने तथा प्रमुख रेल मार्गों के पुनर्निर्माण पर १६६ करोड़ रुपया खर्च किया जाएगा। पुराने रेल के कारखानों के पुनर्निर्माण तथा नए रेल कारखाने बनाने के लिए ६५ करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई है। ८५० मील की लम्बी रेल लाइनों

पर बिजली की रेल चलाने पर ८० करोड़ रुपए खर्च किए जाएँगे। भारत में अभी केवल २४० मील लम्बी लाइनों पर ही बिजली की रेल चलती है।

रेलें

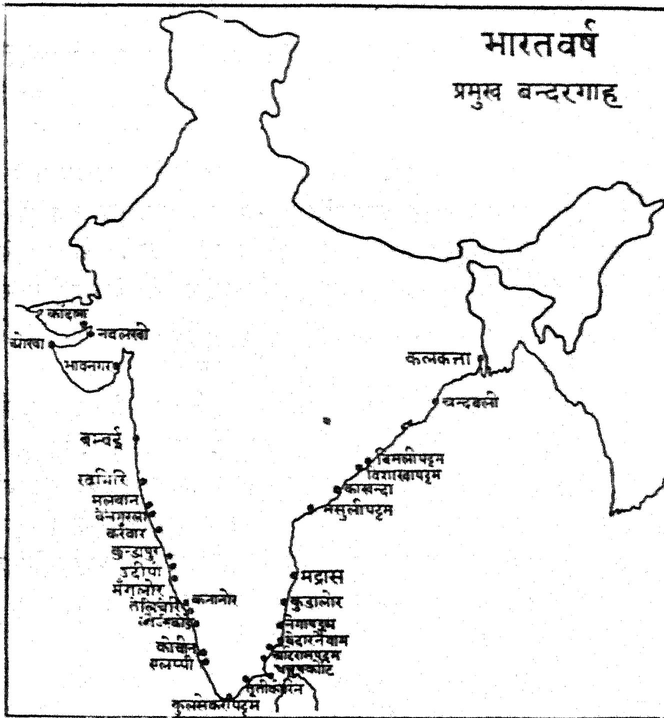


कई स्थानों पर डिजेल इंजन चलाने का प्रश्न भी विचाराधीन है। दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में रेल-यात्रियों की सुविधाओं को बढ़ाने का काम भी जारी रहेगा। रेल-कर्मचारियों के लिए मकान बनाने तथा उनकी कल्याण योजनाओं के लिए भी ५० करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई है।

८

भारत में जलयानों का निर्माण

भारत के लिए जहाज कोई नई चीज नहीं। प्राचीन काल से ही भारत में जहाजों का बड़े पैमाने पर उपयोग होता रहा है। भारत के सुन्दर और मजबूत जहाज महासागरों के वक्ष पर शान के साथ भारतीय ध्वज लहराते हुए द्वीप द्वीपान्तरों में जाते थे और व्यापार करने के साथ-साथ वहाँ भारत की सभ्यता और संस्कृति के



बीज बो आते थे। यह कहना कठिन है कि भारत में जहाजों का प्रयोग कब से हो रहा है परन्तु निश्चित प्रमाणों के आधार पर हम असंदिग्ध रूप से यह कह सकते हैं कि आर्य सभ्यता के प्रसार के बहुत समय पूर्व से ही भारत में जहाजों का इस्तेमाल

होता रहा है। प्रमाणों के आधार पर हम यह कह सकने की स्थिति में हैं कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय भी जहाजों और नौकाओं का उपयोग होता था। मोहनजो-दड़ो और हड़प्पा की खुदाई में एक मोहर ऐसी मिली थी, जिस पर एक जहाज की सुन्दर आकृति बनी थी। इसी प्रकार मिट्टी के बरतन के एक टुकड़े पर भी जहाज का चित्र बना पाया गया। ये चित्र इस बात की भली-भाँति पुष्टि करते हैं कि सिन्धु घाटी की सभ्यता को मानने वाले लोग जहाजों का उपयोग करते थे और इसी आधार पर यह कल्पना भी असंगत न होगी कि विदेशों के साथ उनके व्यापारिक सम्बन्ध भी थे।

पूर्व इतिहास

बौद्ध साहित्य के अध्ययन से भी तत्कालीन विदेशी व्यापार, जहाजरानी और जहाज-निर्माण उद्योग की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ना है और इस सम्बन्ध में कई मनोरंजक बातें ज्ञात होती हैं। उस समय भारत के व्यापारी महासागरों को पारकर दूर-दूर देशों में व्यापार करने जाते थे। समुद्र पार करने के लिए जहाज बड़ी संख्या में बनते थे और उस समय जहाज-निर्माण उद्योग अत्यन्त उन्नत दशा में था। समुद्दवणिक जातक में एक ऐसे जहाज का उल्लेख आता है, जिसमें वर्धकियों के एक हजार परिवार बड़ी सुगमता से बैठकर सुदूरवर्ती किसी द्वीप पर चले गए थे। उन्होंने भारी ऋण के बोझ से मुक्ति पाने के लिए यह यात्रा की थी। जरा कल्पना कीजिए कि वह जहाज कितना बड़ा होगा जिसमें एक हजार परिवार सुगमता के साथ यात्रा कर सकें। वलाहस्य जातक में ५०० व्यापारियों का उल्लेख है, जो जहाज टूट जाने पर श्रीलंका के तट पर जा लगे थे और जिन्हें पथभ्रष्ट करने के लिए वहाँ के निवासियों ने अनेक प्रकार के प्रयत्न किए थे। सुप्पारक जातक में ७०० व्यापारियों का उल्लेख है, जिन्होंने एक साथ समुद्र यात्रा के लिए प्रस्थान किया था। महाजनक जातक में चम्पा से सुवर्णभूमि को प्रस्थान करने वाले एक जहाज का वर्णन मिलता है, जिसमें बहुत से व्यापारी माल लाद कर व्यापार के लिए जा रहे थे। इस जहाज पर सात सार्थवाहों का माल लदा था और इसने सात दिन में ७०० योजन की दूरी तय की थी। महाउमग्ग जातक में जहाज बनाने के उद्योग की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। भगवान बुद्ध अपने प्रिय शिष्य आनन्द को ३०० जहाज तैयार कराने का आदेश देते हैं। यह आदेश इस बात का सूचक है कि उस समय इस प्रकार के जहाजी घाट और निर्माण केन्द्र थे, जहाँ प्रचुर परिमाण में जहाजों का निर्माण किया जाता था। इसी प्रकार, बौद्ध साहित्य में अन्यत्र भी अनेक स्थानों पर जहाजों के समुद्री

व्यापार का उल्लेख मिलता है। इन जहाजों द्वारा भारत का श्रीलंका, सुवर्णभूमि, फारस और बेबीलोन के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था। सुवर्णभूमि के साथ जहाजों द्वारा व्यापार करने का उल्लेख तो बार-बार मिलता है। इसी प्रकार श्रीलंका की ओर जाने वाले जहाजों के सम्बन्ध में अनेक निर्देश मिलते हैं। चम्पा और बनारस की गणना उस समय नदी पर स्थित अच्छे बन्दरगाहों में की जाती थी जहाँ से जहाज पहले नदी में उतरते और तदुपरान्त समुद्र में जाते थे। इस समय मारुकच्छ और मारुकच्छ पत्तन नामक दो जहाजीघाट और बन्दरगाह अत्यधिक प्रसिद्ध थे। इतिहास के सम्बन्ध में थोड़ी भी जानकारी रखने वाले व्यक्ति यह जानते हैं कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के पास एक अच्छी शक्तिशाली नौसेना थी जिसमें कई हजार जहाज और असंख्यों नौकाएँ शामिल थीं तथा भारत समुद्रों का राजा माना जाता था। द्वीप-द्वीपान्तरों तक में भारत की नौसेना की धाक जमी हुई थी। यह तो बहुत पुरानी बात है और बहुत से भारतीयों को शायद इस सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी है। मुसलमानों के शासनकाल में भी हमारे देश में जहाजों का अभाव न था। यहाँ से माल लादकर जब भारतीय जहाज यूरोप और इंग्लैंड आदि देशों में पहुँचते थे तो इन सुन्दर, कलात्मक और अत्यधिक मजबूत जहाजों को देखने के लिए बन्दरगाहों पर अच्छी-खासी भीड़ एकत्र हो जाती थी और लोगों के मन में ईर्ष्या के साथ-साथ यह लालसा जग उठती थी कि काश ! हमारे पास भी इतने मजबूत और सुन्दर जहाज होते। यह बात उस समय की है जब यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के लक्षण भी दृष्टिगोचर नहीं हुए थे।

विदेशी शासन और भारत का पतन

लेकिन समय ने पलटा खाया। भारत को बुरे दिन देखने पड़े। एक बार पुनः भारत को विदेशी आक्रमण का शिकार होना पड़ा। यह आक्रमण प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष हुआ। फिरंगी व्यापारियों को देखकर कोई यह कल्पना भी नहीं कर पाया था कि एक दिन अपनी कूटनीति, धूर्तता और कौशल के बल पर वे इस विशाल देश के भाग्य-विधाता बन बैठेंगे। एक ओर तो भारत को विदेशी फिरंगियों का गुलाम बनना पड़ा जिसके फलस्वरूप देश के उद्योग-धन्धे चौपट हो गए। दूसरी ओर, भाप चालित इंजन के कारण उद्योगों और यातायात के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व क्रान्ति हो गई। जब से भाप से चलने वाले जहाज समुद्र में उतरने लगे, पाल से चलने वाले जहाज धीरे-धीरे लोप होते गए और अब तो उनको कोई पूछता भी नहीं।

सिंधिया कम्पनी का साहसिक प्रयास

प्रथम महायुद्ध के समय अंग्रेज सरकार को यह आवश्यकता अनुभव हुई कि संकटकाल में भारत एवं पूर्वी देशों के साथ व्यापार जारी रखने के लिए शक्तिशाली जहाजी बेड़े का होना परमावश्यक है। युद्धकाल में देश में कई विदेशी स्टीमशिप कम्पनियाँ स्थापित की गई, लेकिन युद्ध समाप्त होने पर धीरे-धीरे उन्होंने अपना बोरिया बिस्तर यहाँ से बाँध लिया। फिर भी, सिंधिया नैविगेशन नामक एक भारतीय कम्पनी अपार कठिनाइयों का सामना करते हुए भी मैदान में जमी रही। इस कम्पनी की स्थापना श्री बालचन्द हीराचन्द ने १९१९ में की थी।

नए घाट का निर्माण

युद्धोत्तरकालीन मन्दी के दिनों में इस कम्पनी को बड़ा घाटा हुआ और इसकी लगभग आधी पूँजी नष्ट हो गई। लेकिन फिर भी यह किसी प्रकार अपना काम चलाती रही। १९३३ में इस कम्पनी ने जहाज-निर्माण के लिए उपयुक्त स्थल खोजने की ओर ध्यान दिया। इसी बीच में द्वितीय महायुद्ध आ गया। अनेक प्रयत्न करने पर भी जब कम्पनी को मनचाहा स्थान न मिल सका तो हारकर उसने विशाखापट्टनम नामक स्थान इसके लिए चुन लिया। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने १ जुलाई १९४१ को इस घाट की नींव रखी थी। स्वेज-नहर और हांगकांग के बीच यह पहला घाट है जहाँ जहाजों का निर्माण करना सम्भव हो सका। १९४२ में हवाई हमलों की आशंका से काम रोक दिया गया, लेकिन इस सम्भावना के कम होते ही पुनः काम चालू हो गया और १९४६ तक घाट पूरी तरह बनकर तैयार हो गया। इसी बीच भारत भी विदेशी दासता से मुक्त हो गया। सरकार ने तुरन्त इस ओर ध्यान दिया और जहाज निर्माण उद्योग का अध्ययन करने के लिए १९४७ में एक समिति नियुक्त की जिसने जहाज-निर्माण उद्योग को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता पर बल देते हुए यह सिफारिश की यदि भारत सरकार यह चाहती है कि देश के तटवर्ती समस्त व्यापार के लिए, पड़ोसी देशों के साथ अपने ७५ प्रतिशत व्यापार के लिए, ५० प्रतिशत विदेशी व्यापार के लिए और पूर्व में ३० प्रतिशत व्यापार के लिए भारतीय जहाजों का इस्तेमाल किया जाय तो यह आवश्यक है कि भारत के पास कम से कम २० लाख टन वजन के जहाज हों।

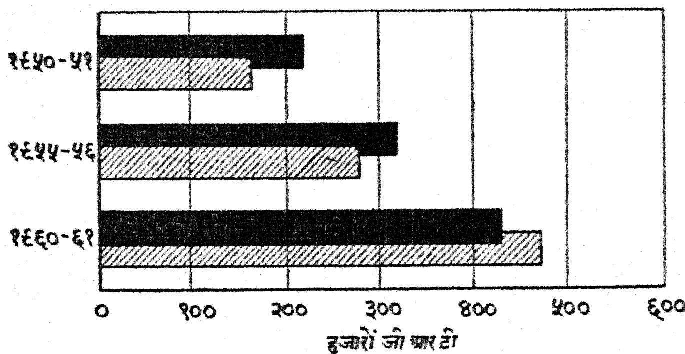
भारत निर्मित प्रथम जहाज

१४ मार्च, १९४८ को भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने विशाखापट्टनम के जहाजी घाट में निर्मित सर्वप्रथम जहाज 'जल ऊषा' को समुद्र में

उतारा। १६५२ तक यह जहाजी घाट भारत सरकार की माँग पर ८ लदुहे जहाजों का निर्माण कर चुका था। इस जहाजी घाट पर १५००० टन वजन का और ५५० फुट लम्बा जहाज बनाया जा सकता है। इसके अलावा सरकार ने कम्पनी को तीन और जहाज बनाने का आर्डर दिया था जो अब तक तैयार होकर समुद्र में उतारे भी जा चुके हैं। कम्पनी इस प्रकार की योजना बना रही है जिसमें एक साथ ६ या ७ जहाजों का निर्माण हो सके। कम्पनी ने एक फ्रांसीसी विशेषज्ञ की सेवाएँ भी प्राप्त की हैं जिसने यह सिफ़ारिश की है कि कारखाने को साधन-सम्पन्न बनाने के लिए लगभग ३ करोड़ रुपया और खर्च किया जाए। १६५१ में सरकार ने जहाज-निर्माण उद्योग को अपने हाथ में ले लिया और कम्पनी के २/३ हिस्से खरीद लिए। शेष १/३ हिस्से सिंधिया कम्पनी के ही पास रहे। १ मार्च, १६५३ को हिन्दुस्तान शिपयार्ड नामक नई कम्पनी से सारा कार्य भार सम्भाल लिया। इस कम्पनी ने सर्वप्रथम तीन जहाज—'जल पद्म', 'जल बालक' और 'जल पुत्र' तैयार किए। दो जहाज सिंधिया नैविगेशन को और १ भारत लाइन्स को बेच दिया गया। जहाजों की दूसरी किस्त भी तैयार होकर समुद्र में उतारी जा चुकी है। इस समय कम्पनी १ करोड़ रुपये खर्च कर एक सूखा घाट तैयार करने के लिए प्रयत्नशील है। १६५५ की समाप्ति पर भारत के पास २ लाख ५६ हजार टन वजन के ६१ जहाज थे। इनका उपयोग तटवर्ती व्यापार के लिए किया जा रहा है। १६५३-५४ में तटवर्ती व्यापार से जहाजी कम्पनियों ने कुल मिलाकर ११.६३ करोड़ रुपया कमाया था।

हिन्दुस्तान जहाजी घाट पर बनने वाला प्रथम यात्री-भारवाही जहाज 'अन्दमान' अगले मास बनकर तैयार हो जाएगा।

जहाजी यातायात



इस जहाज में केबिन श्रेणी के ६६ तथा डैक के ५५० यात्रियों को ले जाने की व्यवस्था है। इसमें विस्तृत सार्वजनिक भवन, खेल की सुविधाएँ, अस्पताल, कंटीन आदि की उतम व्यवस्था है।

हिन्दुस्तान जहाजी घाट में अब तक १६ जहाज बन चुके हैं। सबसे बड़ा जहाज जो अब तक इस घाट पर बना है, 'स्टेट ऑफ कच्छ' है। इसकी लम्बाई ४४५ फुट तथा चौड़ाई ६१ फुट है। इस जहाजी घाट पर वर्ष में ४ जहाज बन सकते हैं।

समुद्री मार्ग

भारत के जहाज इस समय ६ विदेशी समुद्री मार्गों पर चलते हैं। ये समुद्री मार्ग इस प्रकार हैं—भारत और यूरोप महाद्वीप के बीच, भारत और मलाया, भारत और पूर्वी अफ्रीका, भारत और फारस तथा भारत और आस्ट्रेलिया। इनमें से चार मार्गों पर तो बहुधा माल ढोया जाता है। केवल दो मार्गों पर यात्रियों को लाने और ले जाने की व्यवस्था है।

व्यापारिक और सामरिक पोतों की आवश्यकता

विदेशी व्यापार के अलावा अपने ४ हजार मील लम्बे समुद्रतट की रक्षा करने के लिए लड़ाकू जहाजों की अत्यधिक आवश्यकता है। अभी इस प्रकार के जहाजों के निर्माण की कोई व्यवस्था नहीं है और भारत अधिकांशतः इंग्लैंड आदि देशों से ही इन्हें खरीद रहा है। दूसरे जहाजों की कमी होने के कारण भारत को ६ वर्षों में केवल विदेशों से खाद्य-पदार्थ मँगाने के लिए ढुलाई के रूप में १०८.३ करोड़ रुपया देना पड़ा है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना का निर्माण कार्यक्रम

प्रथम पंचवर्षीय योजना में भारतीय जहाजी कम्पनियों को १४.९४ करोड़ रुपए का ऋण प्रदान किया गया ताकि वे और अधिक जहाज प्राप्त कर सकें और १९५५-५६ तक भारत के पास ६ लाख टन वजन के जहाज हो जाएं। इसके अलावा, विशाखापट्टनम के जहाजी घाट के और अधिक विकास के लिए १२ करोड़ रुपये की धनराशि मंजूर की गई थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति के अवसर पर जो स्थिति थी उसका पता निम्न आँकड़ों से चलता है—

निर्माण लक्ष्य

(टनों में)

	प्रथम योजना के पूर्व	प्र० पं० यो० की समाप्ति	द्वि० यो० के० अन्त में
१. तटवर्ती और निकटवर्ती क्षेत्र में	२१७२०२	३१२२०२	४१२२००
२. विदेशों के लिए	१७३५०५	२८३५०५	४०५५०५
३. ट्रैम्स	—	—	६००००
४. टैंकर	—	५०००	२३०००
५. साल्वेज टग	—	—	१०००
कुल	३९०७०७	६००३०३	९०१३०७

—द्वितीय पंचवर्षीय योजना से उद्धृत

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निर्धारित धनराशि

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत जहाजों के निर्माण और जहाजरानी के विकास के लिए ४५ करोड़ रु० की धनराशि निर्धारित की गई है जिसमें से ८ करोड़ रुपए की धनराशि प्रथम पंचवर्षीय योजनाकाल का बचा हुआ है। इसके अलावा, अण्डमान और निकोबार द्वीपों में जहाजरानी को प्रोत्साहन देने के लिए १.५ करोड़ रुपए मंजूर किए गए हैं। यह भी उम्मीद है कि इसी अवधि में जहाजी कम्पनियाँ भी १० करोड़ रुपया खर्च करेंगी। स्वीकृत कुल राशि में से २० करोड़ रुपया ईस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन में और एक नई कार्पोरेशन में लगाया जायगा। केन्द्रीय सरकार इस सम्बन्ध में भी विचार कर रही है कि जिन शर्तों पर जहाजी कम्पमियों को ऋण दिया जाता है वे और अधिक उदार बना दी जाएँ। जहाजी कम्पनियाँ चाहती हैं कि सरकार ब्याज की दर कम कर दे, ऋण के भुगतान की अवधि बढ़ा दे और ऋण-राशि बढ़ा दे। इसके अलावा, जहाजों के संतुलन इत्यादि कार्यों के सम्बन्ध में भारतीयों को आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए भी प्रथम पंचवर्षीय योजना में ११२ लाख रुपए स्वीकार किए गए थे जिससे कलकत्ता में जहाजी कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए एक कालेज खोला गया। इस कार्य पर प्रथम पंचवर्षीय योजना में लगभग ९५ लाख रुपए खर्च हुए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में ७० लाख रुपए खर्च

करके एक इंजीनियरिंग कालेज स्थापित किया जाएगा और ५ लाख रुपया कलकत्ता स्थित कालेज के विस्तार पर खर्च होगा।

जहाजी घाटों और बन्दरगाहों का विकास

भारतीय जहाजरानी और जहाज-निर्माण उद्योग के विकास के लिए देश में उत्तम जहाजी घाटों और बन्दरगाहों का होना भी आवश्यक है। भारत के विभाजन के बाद भारत के ३५०० मील लम्बे समुद्रतट पर केवल ६ बड़े बन्दरगाह हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कोचीन, विशाखापट्टनम और कांडला। विभाजन के समय इन बन्दरगाहों में केवल २ करोड़ टन माल को चढ़ाने-उतारने की व्यवस्था थी, लेकिन कांडला के निर्माण के उपरान्त अब इन बन्दरगाहों पर कुल २ करोड़ ६० लाख टन माल चढ़ाया-उतारा जा सकता है—

	आने वाले जहाजों की संख्या	जहाजों का वजन, लाख टनों में	आयात, लाख टनों में	निर्यात, लाख टनों में	आय, लाखों रुपयों में
कलकत्ता	१४१६	८६.११	२७.२३	५३.३६	—८२.६६
बम्बई	२०००	१३७.८०	४७.७५	१६.५१	— ४.७८
मद्रास	१०३७	६५.६७	१६.४१	४.६५	+४१.६६
कलकत्ता	१०३४	२६.८८	१२.३४	३.२४	+ ७.४३

—इंडिया, १९५६ से

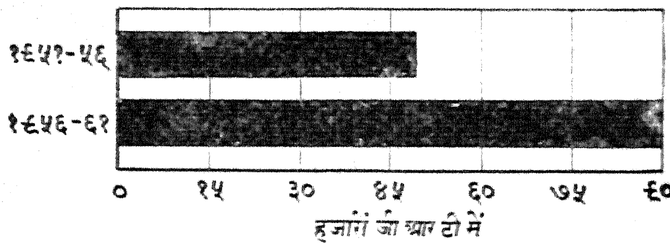
बन्दरगाहों के विकास पर व्यय

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कलकत्ता के बन्दरगाह के विकास पर १६.६ करोड़ रुपए, बम्बई बन्दरगाह के विकास पर २६.३ करोड़ रुपए, मद्रास बन्दरगाह पर ६.२ करोड़ रुपए, कोचीन बन्दरगाह पर ४ करोड़ रुपए और कांडला बन्दरगाह के विकास पर १४ करोड़ रुपए खर्च करने की योजना है।

इसके अलावा, भारत में लगभग १५० छोटे-छोटे बन्दरगाह हैं। इनमें से १८ बन्दरगाह ऐसे हैं जिनका विकास किया जा सकता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना

में छोटे बन्दरगाहों के विकास के लिए २.४१ करोड़ रुपए की धनराशि निर्धारित की गई थी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इनके विकास पर ५ करोड़ रुपए खर्च किए जाएँगे। समुद्र में प्रकाश स्तम्भों के निर्माण के लिए भी द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ४ करोड़ रुपए की धनराशि निर्धारित की गई है।

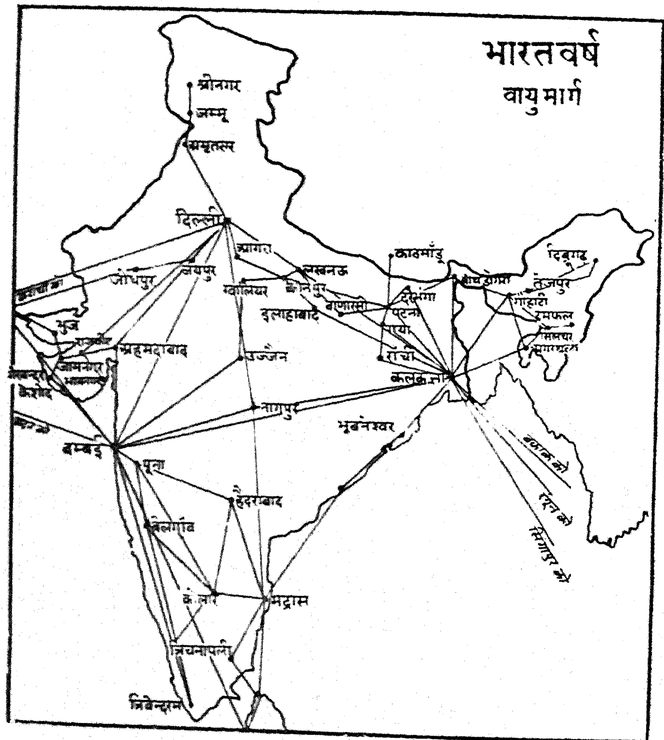
पोत-निर्माण



६

भारत में वायुयानों का निर्माण और नागरिक उड्डयन का विकास

कोई समय था जब दूरस्थ स्थानों तक पहुँचने में यात्रियों को महीनों लग जाते थे और लोग परिवार और स्वजनों का मोह त्यागकर ही लम्बी यात्राओं



पर पैर रखते थे। परन्तु अब पर्यटन और भ्रमण का इच्छुक व्यक्ति कुछ ही दिनों में अपनी यात्रा समाप्त कर घर वापस लौट सकता है। मनुष्य के लिए हवाई जहाज ने संसार के विभिन्न देशों के मध्य विद्यमान दूरी को अत्यधिक कम कर दिया है।

संक्षेप में, आज का विश्व एक शताब्दी पूर्व के विश्व से कहीं अधिक छोटा और संकुचित हो गया है। मनुष्य द्वारा आविष्कृत इस आश्चर्यजनक साधन ने समय और सीमाओं का अतिक्रमण कर दिया है। अधिक नहीं, यदि आपको चार दिन का ही अवकाश मिल जाए तो कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और दिल्ली की सैर कर आनन्दपूर्वक घर लौट आने में आपको किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा।

एक विस्मयजनक वस्तु

कुछ समय पूर्व तक आकाश में घरघराहट की आवाज सुनकर नगरों और कस्बों के निवासी हाथ का काम छोड़कर उस समय तक गगनगामी यान को विस्मयपूर्ण मुद्रा में ताकते रहते, जब तक वह आँखों से ओझल न हो जाता और यदि दुर्घटनावश कभी कोई वायुयान कहीं आस-पास उतरने के लिए बाध्य हो जाता तो उसे देखने के लिए अच्छी-खासी भीड़ एकत्र हो जाती थी। परन्तु अब वह बात नहीं रही। दिल्ली जैसे नगरों में हवाई अड्डों के पास रहने वाले व्यक्ति जब आधी रात को घरघराहट की तेज आवाज सुनकर हड़बड़ाकर उठ बैठते हैं तो आँख न झपकने तक यही सोचते रहते हैं कि कहीं ऐसे स्थान पर घर लिया जाए जहाँ रात को भर नींद सोया जा सके।

एक अति प्राचीन विद्या और विज्ञान

यह बात नहीं कि भारत वायुयानों या वायुयान निर्माण विद्या से सर्वथा अपरिचित रहा है; परन्तु तथ्य तो यह है कि भारतीयों को प्राचीन काल में भी वायुयान निर्माण विधियों तथा उससे सम्बन्धित अन्य समस्त विज्ञान की सूक्ष्मतम और विस्तृत जानकारी रही है। अभी हाल में मिले कुछ लिखित प्रमाणों से इस बात की पूरी तरह पुष्टि भी हुई है। इसी विषय पर लिखी गई एक प्राचीनतम पुस्तक 'वैमानिक शास्त्र' में वायुयान तैयार करने, उसे उड़ाने, हवाई दुर्घटनाओं और उनके कारणों तथा वायु-युद्ध इत्यादि बातों का सूक्ष्मतम और गहन विवेचन किया गया है। इसी वैमानिक-शास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर बम्बई के एक प्रमुख वैज्ञानिक ने वायुयान तैयार कर चौपाटी के मैदान में उड़ाकर भी दिखाया था। उस समय तक राइट ब्रदर्स के नाम से संसार पूरी तरह अपरिचित था। परन्तु गुलाम देश की आवाज और प्रतिभा गुलामी की जंजीरों में जकड़कर रह गई और संसार को यह भी ज्ञात न हो सका कि राइट ब्रदर्स के पूर्व भी कोई वायुयान उड़ाकर दिखा चुका है।

द्वितीय महायुद्ध और वायुसेना का संघटन

परन्तु यह तो अब एक पुरानी कहानी हो गई है और समस्त संसार यही मानता है कि मानव जीवन और विश्व-राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों में क्रान्ति लाने वाले इस महान आश्चर्यजनक यन्त्र का आविष्कार अमेरिका के राइट बन्धुओं ने किया था और द्वितीय महायुद्ध के पूर्व इस आश्चर्यजनक यन्त्र के बारे में भारत-वासियों को बहुत कम जानकारी थी। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत में हवाई जहाज बहुत कम दीख पड़ते थे। लेकिन द्वितीय महायुद्ध के दौरान में जापान का मुकाबला करने के लिए पश्चिमी मित्र राष्ट्रों ने भारत को अपना एक प्रमुख सैनिक अड्डा बनाया और सैनिक कार्यों तथा संकटकाल में सेनाओं के उपयोगार्थ कई हवाई अड्डों का निर्माण किया। इन हवाई अड्डों पर अमेरिकी वायुयान भारी संख्या में एकत्र किए गए ताकि अवसर पड़ने पर जापानियों के विरुद्ध शीघ्रतापूर्वक प्रभावशाली ढंग से सैनिक कार्यवाही की जा सके। इसी बीच यहाँ पर कुछ फर्मों को हवाई जहाज के छोटे-मोटे पुर्जे बनाने के लिए लाइसेन्स प्रदान किए गए। इसके पूर्व स्थिति यह थी कि प्रत्येक हवाई जहाज को मरम्मत और सफाई इत्यादि के लिए भी विदेशों को भेजना पड़ता था जिस पर बहुत अधिक खर्च बैठता था।

साहसिक प्रयास

देश में हवाई जहाजों का निर्माण करने की दिशा में सबसे पहला कदम उठाने का श्रेय हीराचंद वालचंद नामक प्रमुख भारतीय व्यवसायी को है। यह कहना पड़ेगा कि यह साहसपूर्ण कदम उठाकर उक्त व्यवसायी ने देश की महान् सेवा की है। उनके प्रयत्नों और परिश्रम के फलस्वरूप मैसूर में हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्टरी की स्थापना हुई लेकिन आगे चलकर कई कारणों से वह इस कम्पनी को चलाने में असमर्थ हो गए और मैसूर सरकार और तत्कालीन भारत सरकार ने मिलकर १९४० में बंगलौर में हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्टरी की नए सिरे से स्थापना की। द्वितीय महायुद्ध के दौरान में यह कम्पनी पूरी तरह अमेरिकियों के नियंत्रण में चली गई, जिन्होंने यहाँ पर युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बड़े पैमाने पर आधुनिकतम मशीनें और यन्त्र फिट किए। युद्ध के दौरान इस फैक्टरी में लगभग १५००० भारतीय कर्मचारी काम करते थे जिन्हें हवाई जहाज के निर्माण से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में विस्तृत टैक्निकल प्रशिक्षण और जानकारी प्राप्त हुई। जब द्वितीय महायुद्ध समाप्त हुआ और कम्पनी भारत सरकार को सौंपी गई तो वह पहले से कहीं अधिक सुव्यवस्थित और साधन-सम्पन्न थी।

इस समय तक इस फैक्टरी का मुख्य कार्य विदेशों से आए पुर्जों और ढांचे के टुकड़ों को जोड़कर हवाईजहाज तैयार करना तथा उनकी आवश्यक मरम्मत, सफ़ाई और देख-रेख करना था। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इस फैक्टरी में कई हारलों पी० सी० ५ए० और एच० ७५ ए-५ वायुयान जोड़कर तैयार किए गए।

वायुयान फैक्टरी पर सरकार का नियंत्रण और सर्वप्रथम भारतीय विमान

युद्धोत्तरकाल में मैसूर सरकार और भारत सरकार ने पूरी तरह इस फैक्टरी पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया और अगस्त १९५१ में सर्वप्रथम एक इंजन वाला वायुयान बनकर तैयार हुआ जो आजकल एच० टी-२ के नाम से विख्यात है। इस वायुयान की पूरी डिजाइन इस फैक्टरी में ही बनकर तैयार हुई है और इसे तैयार करने का प्रमुख श्रेय फैक्टरी के प्रमुख इंजीनियर डा० वी० एम० घाटे को है।

ग्लाइडरों और वैम्पायर जेट हवाईजहाजों का निर्माण

इस समय यह फैक्टरी विशाल परिमाण में एच० टी-२ का निर्माण करने की योजना बना रही है। इसके अलावा, भारतीय वायुसेना के लिए प्रशिक्षक वायुयान और ग्लाइडर बनाने की दिशा में भी यह प्रयत्नशील है। इस बात के लिए भी यथा-शक्ति प्रयत्न किए जा रहे हैं कि फैक्टरी में वैम्पायर किस्म के जेट विमान तैयार होने लगें। नवीनतम समाचारों के अनुसार इस दिशा में काफी अधिक प्रगति की जा चुकी है। लेकिन जब तक देश में हवाईजहाज के इंजन तैयार नहीं होने लगते, भारत को इन क्षेत्र में विदेशों पर निर्भर रहना पड़ेगा। वह समय अभी कुछ दूर है जब भारत में हर प्रकार के हवाई-जहाजों के इंजनों का निर्माण किया जा सकेगा। निश्चय ही वह दिन भारत के लिए बहुत महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक होगा। लेकिन इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि देश में हवाईजहाज के पुर्जे तैयार करने वाले सहकारी उद्योगों का भी विकास हो ताकि वे पुर्जे तैयार कर हवाई जहाजों के शीघ्रता-पूर्वक निर्माण में योग दे सकें। हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्टरी केवल निर्माण कार्य ही अपने हाथ में रखना चाहती है और इसका और अधिक विस्तार करने के लिए उसने बैरकपुर में हवाई जहाजों की मरम्मत इत्यादि करने के लिए एक नई वर्कशॉप खोली है।

भारत के अन्दर नागरिक हवाई उड्डयन का जिस तेजी के साथ विकास हो रहा है और सरकार इस दिशा में जो प्रोत्साहन और सहायता दे रही है उसे दृष्टि में रखते हुए तो हमें यही आशा है कि अनेकों विघ्न-बाधाओं के रहते हुए भी

भारत हवाई जहाज उद्योग का पूर्ण विकास करने में अन्ततोगत्वा सफल हो जाएगा और इस प्रकार देश की सुरक्षा और यातायात व्यवस्था को सुदृढ़ और सुव्यवस्थित बनाने के साथ-साथ एक बहुत बड़ी धनराशि विदेशों के हाथ में जाने से बचाई जा सकेगी क्योंकि अभी भारत को अपनी सेनाओं और नागरिक उड्डयन व्यवस्था के लिए लगभग सभी वायुयान विदेशों से मंगाने पड़ते हैं और प्रत्येक वायुयान की कीमत कई लाख रुपए बैठती है।

नागरिक उड्डयन सुविधाओं का विकास

वर्तमान युग में प्रत्येक देश के लिए सुव्यवस्थित और सुसंगठित वायु यातायात व्यवस्था सैनिक और आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व रखती है। भारत जैसे विस्तृत और विशाल जनसंख्या वाले देश में दूरस्थ और दुर्गम स्थानों तक पहुँचने के लिए वायुयान विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। भारत के लिए एक दूसरी महत्त्वपूर्ण सुविधा यह है कि यहाँ मौसम वर्ष भर हवाई उड़ानों के लिए अनुकूल रहता है। भारत में यातायात साधन के रूप में वायुयानों का व्यापक पैमाने का उपयोग द्वितीय महायुद्ध के समय से हुआ, यद्यपि इसके पूर्व १९३० में इसकी शुरूआत हो गई थी। १९३० में दिल्ली उड्डयन प्रशिक्षण क्लब के वायुयान दिल्ली से कराँची, बम्बई और मद्रास के लिए डाक ले जाते थे। १९३३ में भारत में तीन नागरिक उड्डयन कम्पनियों ने हवाई सर्विस प्रारम्भ कर दी थी। १ दिसम्बर १९३३ को भारत और बर्मा के बीच एक हवाई सर्विस शुरू की गई थी। १९३९ तक भारत और बर्मा तथा श्रीलंका स्थित २० नगरों में भारत हवाई सर्विस के जहाज नियमित रूप से उतरते थे। जैसा कि मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ, भारत में यात्रा के लिए वायुयानों का उपयोग द्वितीय महायुद्ध के दौरान में बड़े पैमाने पर किया गया। इस समय सैनिकों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्रतापूर्वक पहुँचाने तथा असम और बर्मा के दुर्गम मोर्चों पर रसद और युद्धोपयोगी सामग्री ले जाने के लिए हवाई जहाजों का खूब इस्तेमाल हुआ, लेकिन इसी बीच में असैनिक कार्यों तथा यात्राओं के लिए भी हवाई जहाजों का उपयोग प्रारम्भ हुआ और युद्ध के अन्तिम वर्षों तक भारत में कई स्थानों के बीच नियमित हवाई सर्विस शुरू हो गई थी। पिछले ७ या ८ वर्षों में भारत में हवाई यातायात का इतनी तेजी से विकास हुआ कि सरकार यह अनुभव करने लगी कि देश की हवाई यातायात व्यवस्था को सुव्यवस्थित और सुसंगठित किया जाए और इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर १९५३ में वायु-यातायात का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

नागरिक उड्डयन सेवा का राष्ट्रीयकरण

इस निर्णय के फलस्वरूप ८ हवाई कम्पनियों को मिलाकर दो कार्पोरेशन—इंडियन एयरलाइन्स कार्पोरेशन और एयर इंडिया इण्टरनेशनल की स्थापना की। इंडिया एयरलाइन्स कार्पोरेशन को देश के अन्दर तथा एयर इंडिया को भारत और अन्य देशों के बीच हवाई सर्विस चलाने का कार्य सौंपा गया। कार्पोरेशनों की स्थापना के पूर्व प्रत्येक कम्पनी के अपने इंजीनियर, उड़ाके और कर्मचारी थे तथा प्रबन्ध-व्यवस्था भी अलग-अलग थी। इसमें कई गुना अधिक खर्च बैठता था। १ अगस्त, १९५३ को इन कार्पोरेशनों की स्थापना हो जाने के बाद इस अनावश्यक और दुहरी व्यवस्था का अन्त हो गया।

कार्पोरेशन की प्रबन्ध-व्यवस्था

इंडिया एयर लाइन्स कार्पोरेशन के संचालक बोर्ड में ६ सदस्य और एक अध्यक्ष हैं। इन सभी की नियुक्ति भारत सरकार ने की है लेकिन दैनिक प्रबन्ध-व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों में निर्णय करने और आवश्यक निर्देश देने के लिए कार्पोरेशनों का बोर्ड पूर्णतः स्वतन्त्र है। सरकार केवल नीति विषयक आदेश ही देती है। राष्ट्रीयकरण के पूर्व कम्पनियों में काम करने वाले लगभग सभी कर्मचारियों को कार्पोरेशन में नौकर रख लिया गया है।

हवाई सर्विसों की उड़ानें

१९५३ में भारतीय कार्पोरेशनों के हवाई जहाजों ने सूचित मार्गों पर १ करोड़ ८० लाख मील की उड़ान भरी, ४ लाख यात्रियों को तथा ९ करोड़ २० लाख पौंड माल को ढोया। इसके अलावा, अनुसूचित हवाई उड़ानों में इन वायुयानों ने ४० लाख मील की उड़ान भरी : लगभग ९२ हजार यात्रियों ने इनके द्वारा सफर किया तथा ७ करोड़ २० लाख पौंड माल ढोया। इस प्रकार, १९५३ में भारतीय वायु कार्पोरेशन के हवाई जहाजों ने लगभग १ करोड़ ३० लाख मील की उड़ान भरी।

हवाई जहाजों की संख्या

१९५४ में इंडियन एयर लाइन्स कार्पोरेशन के पास ९६ हवाई जहाज थे। इनमें से ७२ डकोटा, ३ स्काई मास्टर (चार इंजन वाले), १२ वाइकिंग (दो इंजन

वाले) और छोटे किस्म के ६ हवाई जहाज थे। कार्पोरेशन ने १९५५ में विदेशों से कई नए जहाज भी मँगाए जिनकी ठीक-ठीक संख्या ज्ञात नहीं। इसके अलावा, कार्पोरेशन ने कई नए हवाई मार्ग भी खोले हैं और देश के अन्दर स्थित मुख्य नगरों के लिए रात्रिकालीन हवाई डाक सर्विसें भी चलाई हैं। इन रात्रिकालीन सर्विसों में यात्रीगण भी कम किराया देकर सफर कर सकते हैं।

एयर इंडिया इण्टरनेशनल

इस कार्पोरेशन ने भी अपने कार्यक्षेत्र में विस्तार किया है तथा अपने हवाई जहाजों को आधुनिक रूप प्रदान किया है। इस समय कार्पोरेशन भारत और इंग्लैंड के मध्य छः साप्ताहिक हवाई सर्विसें और भारत और नैरोबी के मध्य दो साप्ताहिक सर्विसें चलाता है। बम्बई और सिंगापुर तथा बम्बई से बैंकौक, टोकियो और आस्ट्रेलिया के लिए भी हवाई सर्विसें प्रारम्भ कर दी गई हैं।

इस समय एयर इंडिया इण्टरनेशनल के पास ४ कौंस्टलिएशन तथा २ सुपर कौंस्टलिएशन किस्म के विमान हैं तथा ३ अन्य विमानों के लिए आर्डर दिया जा चुका है। ये विमान १९५५ के प्रारम्भ तक मिल जाने वाले थे। इस प्रकार १९५५ में कार्पोरेशन के पास ९ उत्तम कोटि के विमान हो गए थे।

जुलाई-दिसम्बर १९५४ तक की प्रतिवेदन रिपोर्ट अनुसार सूचित और अनुसूचित वायुसेनाओं ने पहली छमाही की अपेक्षा दूसरी छमाही में अधिक मीलों की उड़ान की और अधिक माल ढोया। इस बीच सिंगापुर और हांगकांग के लिए हवाई सर्विस शुरू की गई तथा इस बीच में कोई दुर्घटना नहीं हुई। इस अवधि में कार्पोरेशन के विमानों ने १३० लाख मील की उड़ान भरी, २८२४०५ यात्रियों ने सफर किया तथा ९८७ लाख पौंड माल तथा ६१ लाख पौंड डाक ढोयी गई। दूसरी छमाही में रात की हवाई सर्विसों से ११७६७ यात्री, ६१०८६३ पौंड माल तथा १८०७०६७ पौंड डाक ढोयी गई जबकि पहली छमाही में केवल १४६२६ यात्रियों ने सफर किया था तथा केवल ६७३७२२ पौंड माल और १६८५६०४ पौंड डाक ढोई गई थी। १९५५ में भारतीय हवाई जहाजों ने २ करोड़ ६० लाख मील की उड़ान भरी, ५ लाख यात्रियों ने यात्रा की तथा १० करोड़ ३० लाख टन माल ढोया गया। निम्न आँकड़ों से १९४७ से लेकर १९५५ तक के बीच हुई प्रगति पर प्रकाश पड़ता है।

वर्ष	उड़ान हजारों मीलों में	यात्री संख्या हजारों में	माल हजारों पौंडों में	डाक हजारों पौंडों में
१९४७	६३६२	२५५	५६४८	१४०५
१९४८	१२७४६	३४१	११९४८	१५८३
१९४९	१५०६८	३५७	२८५००	५०३२
१९५०	१८८९६	४५३	८०००७	८३५६
११५१	१९४९८	४४६	८७६६५	७१८२
१९५२	१९५६२	४३४	८६०३८	८३७७
१९५३	१९२०२	४०४	८४८२०	८८४६
१९५४	१९७९८	४३८	८६४००	१०६७४
१९५५	२०३४०	४५८	९८२०६	११,११२

—'इण्डिया एट ए ग्लांस' पुस्तक से उद्धृत

हवाई अड्डों तथा टैक्निकल प्रशिक्षण की व्यवस्था

हवाई सर्विसों के विकास के साथ-साथ हवाई अड्डों, इंजीनियरों सम्वादवाहक साधनों, मौसम सूचक यन्त्रों तथा वायु यातायात सम्बन्धी अन्य यन्त्रों की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। इस समय नागरिक उड्डयन विभाग के पास ७७ हवाई अड्डे हैं। इनमें से तीन अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिरक्षा-मन्त्रालय से कुम्भीर और रूपसी हवाई अड्डे भी ले लिए गए हैं तथा चंडीगढ़,कांडला और उदयपुर में तीन नए हवाई अड्डों का निर्माण हो रहा है।

रेडियो टेलीफोन व्यवस्था तथा हवाई जहाजों से सम्बन्धित सम्वादवहन व्यवस्था में भी सुधार और विस्तार किया जा रहा है।

प्रशिक्षण की व्यवस्था

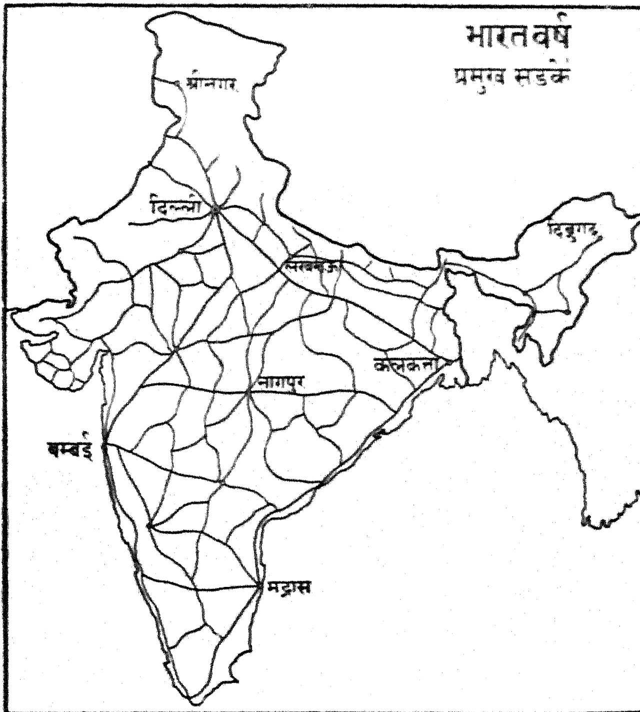
इसके अलावा, इंजीनियरों, उड़ाकों तथा हवाई जहाज सम्बन्धी अन्य टैक्निकल कार्यों का प्रशिक्षण देने के लिए इलाहाबाद में एक प्रशिक्षण केन्द्र का संचालन भी किया जा रहा है। इस प्रशिक्षण-केन्द्र में १९५३ तक ९ व्यक्तियों ने डकोटा वायु-यान उड़ाने की तथा १३ व्यक्तियों ने वायु यातायात नियन्त्रण अधिकारियों की, १४ ने वायुयान रखाव इंजीनियरिंग, ७ ने रेडियो ऑपरेटर तथा बिजली सम्बन्धी कार्यों की शिक्षा ली। ३१ दिसम्बर, १९५४ को उक्त केन्द्र में ८४ प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे।

इसी बीच में भारत के विभिन्न स्थानों में स्थित ११ नागरिक उड्डयन-क्लबों ने ३७ अ श्रेणी के और १६ ब श्रेणी के चालकों को प्रशिक्षण दिया। इसके अलावा, २० व्यक्तियों ने ग्लाइडर उड़ाने की शिक्षा भी ली। भारत सरकार की ओर से नागरिक उड्डयन क्लबों को समुचित सहायता दी जा रही है। भारत सरकार ने उड्डयन सम्बन्धी सुविधाओं के विस्तार पर प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में लगभग ८ करोड़ रुपए खर्च किए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस कार्य पर १२.५ करोड़ रुपया खर्च किया जाएगा। इसके अलावा, भारत सरकार ने इंडिया एयरलाइन्स कार्पोरेशन को १६ करोड़ रुपया और एयर इंडिया इण्टरनेशनल को १४.५ करोड़ रुपया देने का निश्चय किया है। यह धनराशि सहायता के तौर पर दी जाएगी।

१०

भारत में मोटर उद्योग

जरा कल्पना कीजिए उस दिन की, जब आज से १०० वर्ष पूर्व जर्मनी के एक छोटे से नगर में श्री डेनवर नामक एक जर्मन इंजीनियर ने अपनी आश्चर्यजनक चार पहियों वाली गाड़ी का प्रदर्शन किया था। संसार में पैट्रोल से चलनी वाली यह पहली गाड़ी थी। सड़क के दोनों ओर खड़ी जनता विस्मित और हर्षमुग्ध होकर



डेनवर की आश्चर्यजनक कृति को देख रही थी और जर्मन इंजीनियर के मुख पर विजय की हलकी मुस्कान खेल रही थी। वैसे तो वैज्ञानिक कुछ समय पूर्व से मोटर-गाड़ी बनाने की दिशा में प्रयत्नशील थे, परन्तु पैट्रोल-चालित मोटरगाड़ी के आविष्कार का श्रेय सर्वप्रथम इसी जर्मन इंजीनियर को प्राप्त हुआ।

मोटर गाड़ियों के स्वरूप में तेजी से सुधार

इन १०० वर्षों के अन्दर मोटर गाड़ियों ने न जाने कितने रूप-रंग बदले हैं और राष्ट्रों की यातायात-व्यवस्था विशेषतः सड़क यातायात के विकास में कितना योग दिया है, इसकी सहज कल्पना नहीं की जा सकती। आगे चलकर मैं इस विषय पर प्रकाश डालूँगा कि मोटर उद्योग के विकास में यदि सड़कों ने सहायता पहुँचाई है तो दूसरी ओर मोटर उद्योग के विकास के फलस्वरूप विभिन्न देशों की सड़कों में कितना सुधार और विस्तार हुआ है। वर्तमान युग में जब कि किसी राष्ट्र की प्रगति का अन्दाजा उसकी यातायात-व्यवस्था को दृष्टि में रखकर लगाया जाता है, यह आसानी से समझ में आ जाता है कि देश के लिए मोटर गाड़ी-निर्माण उद्योग कितना अधिक महत्त्व रखता है। मोटर गाड़ी के आविष्कार का महत्त्व किसी प्रकार भी भाप-चालित जहाज, रेल के इंजन या हवाई जहाज के आविष्कार से कम नहीं। कुछ मानों में इसने रेलों को भी मात कर दिया है। ऐसे दुर्गम स्थानों में जहाँ रेल की लाइन बिछाना भी सम्भव नहीं, पहुँचने के लिए मोटर गाड़ियों का ही प्रयोग किया जाता है। मोटर गाड़ियाँ दुर्गम पहाड़ों, वनों और नदियों को पार करते हुए हमें अल्प समय में गन्तव्य स्थान तक पहुँचा देती हैं और दूरस्थ और दुर्गम स्थानों से माल लाने और वहाँ माल पहुँचाने में भी बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। वस्तुतः मोटर गाड़ियों ने यातायात और व्यापार के क्षेत्र में एक क्रान्ति कर दी है। पहले सड़कों द्वारा भी गन्तव्य स्थान तक पहुँचने में दिन और सप्ताह लग जाते थे, परन्तु आज इन तीव्रगामी थल-यानों पर चढ़कर आप ६० मील से भी अधिक रफ्तार से लम्बी से लम्बी यात्रा कर सकते हैं। व्यापारी और व्यवसायी भी अब आसानी से और शीघ्रतापूर्वक अपना माल बड़ी मण्डियों और व्यापारिक-केन्द्रों तक पहुँचा सकते हैं। देश की सुरक्षा की दृष्टि से भी इनका बहुत महत्त्व है। युद्धकाल में सैनिकों और रण-सामग्री एवं रसद ढोने के लिए इनका बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है। द्वितीय महायुद्ध में तो सैनिकों और रसद को यथास्थान पहुँचाने के लिए मोटर गाड़ियों और ट्रकों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया गया। संक्षेप में, आज घोड़ों और खच्चरों का स्थान मोटर गाड़ियों और ट्रकों ने ग्रहण कर लिया है।

संक्षेप में, देश की अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए आज सभी प्रकार की मोटर गाड़ियों की बड़ी संख्या में आवश्यकता है। पश्चिमी देशों की तुलना में हमारे देश में मोटर गाड़ियों की संख्या बहुत कम है। भारत में हर १५०० व्यक्तियों में से एक के पास मोटर गाड़ी है जब कि फ्रांस में हर २५ व्यक्ति पीछे, इंग्लैण्ड में हर

१६ व्यक्ति पीछे, कनाडा में हर ८ व्यक्ति पीछे तथा अमेरिका में हर ४ व्यक्ति पीछे एक मोटर गाड़ी है।

भारत में मोटर उद्योग की शुरुआत

भारत में मोटर उद्योग की शुरुआत वस्तुतः १९२६ से हुई यद्यपि इसके पूर्व थोड़ा बहुत काम यहाँ होता था। १९२८ में जनरल मोटर्स कम्पनी ने बम्बई में मोटर के विभिन्न भागों को जोड़कर मोटर गाड़ी तैयार करने का एक कारखाना खोला। इसके कुछ समय बाद फोर्ड कम्पनी ने भी १९३० में मद्रास में इसी प्रकार का एक कारखाना स्थापित किया। १९३१ में बम्बई और कलकत्ता में भी इस कम्पनी की शाखाएँ खुल गईं, लेकिन मोटर गाड़ी के सभी पुर्जों को देश में ही तैयार करने का महत्वपूर्ण कार्य सर्वप्रथम १९४४ में हिन्दुस्तान मोटर्स लिमिटेड और प्रीमियर मोटर्स लिमिटेड ने प्रारम्भ किया। इस समय मोटर उद्योग और उसके कल-पुर्जों के निर्माण से अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित कारखानों की संख्या १५ है।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक भारत अधिकांश मोटरों और मोटर गाड़ियों को यूरोप आदि देशों से मँगाता था और इस पर उसे प्रतिवर्ष २० करोड़ रुपए से भी अधिक धनराशि खर्च करनी पड़ती थी। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त जी० डी० बिड़ला और बालचन्द हीराचन्द ने मोटर उद्योग के विकास में विशेष दिलचस्पी ली और उनके ही सतत प्रयत्नों के फलस्वरूप २० करोड़ रुपए की स्वीकृत पूँजी से हिन्दुस्तान मोटर्स कम्पनी की स्थापना हुई। इसके अलावा १० करोड़ रुपए की स्वीकृत पूँजी से प्रीमियर आटोमोबिल कम्पनी भी खड़ी की गई। लेकिन इनके कार्य में सबसे बड़ी बाधा टैक्निकल जानकारी का अभाव था। १९५४ तक मोटर-उद्योग से सम्बन्धित विभिन्न कारखानों में ७० करोड़ रुपए की पूंजी लगी हुई थी।

उद्योग की स्थिति की जांच

कई कम्पनियों ने १९४९-५० में ही मोटरों का निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया था ताकि विदेशों से भारत को कम से कम मोटरों का आयात करना पड़े। इनमें हिन्दुस्तान, प्रीमियर, अशोक और स्टेंडर्ड इत्यादि कम्पनियाँ मुख्य हैं। सरकार ने १९४९ में यह निर्णय किया था कि मोटर के छोटे-छोटे पुर्जे और हिस्से देश के अन्दर ही बनाए जाएँ। फलस्वरूप १ अप्रैल, १९५० से उन पुर्जों पर आयात कर बढ़ा दिया गया जिनका निर्माण देश के अन्दर शुरू हो गया था। १९५० में मोटर उद्योग की स्थिति की जाँच करने के लिए और तटकरों के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए एक विशेष समिति की स्थापना की गई। समिति ने जो रिपोर्ट दी, उसे

सरकार ने स्वीकार कर लिया और आवश्यक कदम भी उठाए, परन्तु उनसे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। अतः १९५२ में सरकार ने पुनः एक तटकर कमीशन नियुक्त किया जिसने अप्रैल, १९५३ में अपनी रिपोर्ट में कुछ ठोस और दूरगामी सुझाव प्रस्तुत किए। इस रिपोर्ट के अनुसार १२ कम्पनियाँ मिलकर प्रतिवर्ष ८४,०१४ मोटर गाड़ियाँ तैयार करती थीं। १९५१ में २१,५७७ और १९ २ में १४,८७३ मोटर गाड़ियाँ तैयार हुई थीं तथा अगस्त तक ९,४२६ मोटरें और १०,३६२ ट्रक और बसें इत्यादि बिकी थीं।

समिति ने अपनी रिपोर्ट में हिन्दुस्तान मोटर्स कम्पनी द्वारा की गई प्रगति की सराहना की परन्तु इस बात पर खेद प्रकट किया कि अभी भी अधिकांश पुर्जे विदेशों से ही मँगाए जा रहे हैं। समिति ने कहा कि मोटर और मोटर गाड़ियों का उत्पादन बढ़ाकर २५ हजार प्रतिवर्ष तक पहुँचाया जा सकता है। रिपोर्ट में इस बात पर भी जोर दिया गया कि मोटर उद्योग से सम्बन्धित अन्य सहायक उद्योगों की स्थापना की जाए और कुछ समय के लिए उन्हें विशेष सुरक्षा प्रदान की जाए। मुख्यतः चार प्रकार की गाड़ियों को बनाने पर जोर दिया गया और यह सिफारिश की गई कि भारतीय तटकर कानून की ७५:९:, ७५:१०:, ७५:११: और ७५:१२वीं: धाराओं में संशोधन कर दिया जाए और सभी पुर्जों पर ४० प्रतिशत तटकर वसूल किया जाए। पारस्परिक सहयोग, मिश्रित इस्पात धातु का निर्माण, कच्चे माल पर लगने वाले तटकर में कमी, निर्यात को प्रोत्साहन, सरकारी विभागों द्वारा भारतीय कम्पनियों द्वारा निर्मित मोटर गाड़ियों की खरीद, रेल के भाड़े में कमी, लाइसेंस देने में सख्ती, अनुसन्धान-कार्य को प्रोत्साहन और विकास परिषद् की स्थापना—ये उक्त कमीशन की महत्त्वपूर्ण सिफारिशों में शामिल थीं। भारत सरकार ने इनमें से अधिकांश सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। यह प्रसन्नता का विषय है कि पिछले ५ वर्षों में भारत के मोटर उद्योग ने आशातीत प्रगति की है और अधिकांश पुर्जे अब भारत में ही तैयार होने लगे हैं। पहले भारत को विदेशों से करोड़ों रुपए मूल्य के पुर्जे आयात करने पड़ते थे।

विदेशों से आयात

भारत युद्ध के पूर्व और उसके बाद भी विदेशों से बहुत बड़ी संख्या में मोटरों, ट्रकों और बसों को आयात करता था। निम्न आँकड़ों पर दृष्टि डालने से यह बिलकुल स्पष्ट हो जाएगा—

वर्ष	मोटर गाड़ी टैक्सियों सहित	मोटर बसें, लारी इत्यादि	कुल संख्या	मूल्य लाख रुपयों में
१९५०-५१	८४३३	४९०३	१३३३६	६३७
१९५१-५२	९९६३	४७१२	१४६७५	७७६
१९५२-५३	५१६४	३६३७	८८०१	५६३
१९५३-५४	५८१६	४१८९	१०००५	६०८
१९५४-५५	१०५४६	४५१६	१५०६२	१०८३
१९५५-५६	८०२१	६२४९	१४२७०	६३७

—औद्योगिक विकास कार्यक्रम से उद्धृत

१९५४ में भारत सरकार द्वारा देश की कुछ प्रमुख मोटर कम्पनियों को देश के अन्दर ही विभिन्न प्रकार की मोटर गाड़ियाँ तैयार करने के लाइसेंस दिए गए, जिसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

भारत की मोटर निर्माता कम्पनियों की संख्या और उत्पादन पर एक दृष्टि

फर्म का नाम	स्थिति	किस प्रकार की गाड़ियां तैयार करने का लाइसेंस प्राप्त है		एक पारी में उत्पादन की दर
		मोटर गाड़ी	ट्रक	
१. हिन्दुस्तान मोटर्स	कलकत्ता	हिन्दुस्तान-१४ स्टूडीबेकर (भारी) मोरिस माइनर (बेबी)	(हलरी) स्टूडीबेकर	९०००
२. प्रीमियर-आटोमोबिल	बम्बई	डौज (भारी) फिएट-११०० (हल्की)	डौज फार्गो	५०००
३. स्टैंडर्ड मोटर प्रौडक्टस	मद्रास	स्टैंडर्ड (मझोली) वैनगार्ड (हल्की)		३०००

फर्म का नाम	स्थिति	किस प्रकार की गाड़ियाँ तैयार करने का लाइसेंस प्राप्त है		एक पारी में उत्पादन की दर
		मोटर गाड़ी	ट्रक	
४. अशोक लीलैंड	मद्रास		लीलैंड ५ टन और इससे अधिक (डिजेल)	३०००
५. टाटा लोको-मोटिव इंजी-नियरिंग कम्पनी	जमशेदपुर		टाटा मरसीड्स डिजेल	६०००
६. महिन्दर एण्ड महिन्दर	बम्बई		विलीज यूनि-वर्सल जीप	३०००
				२६०००

—औद्योगिक विकास कार्यक्रम से उद्धृत

प्रथम पंचवर्षीय योजना और मोटरों का उत्पादन

सरकार की सावधानी से देश के मोटर उद्योग को कोई हानि नहीं पहुँचने पाई, संकट का समय पार हो गया और प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक देश में प्रतिवर्ष २५ हजार मोटर गाड़ियों का निर्माण होने लगा। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में विभिन्न प्रकार की मोटर गाड़ियों के उत्पादन और बिक्री सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार थे—

वर्ष	मोटर	ट्रक	कुल उत्पादन	कुल बिक्री
१९५१	१२३८५	९८८४	२२२६९	२२३९३
१९५२	६९५२	८३३९	१५२९१	१५७१५
१९५३	४९३६	८९९०	१३९२६	९४००
१९५४	५४३५	९०२७	१४४६२	१३८१३
१९५५	१०२९७	१२७८७	२३०८४	२३०६५

—औद्योगिक विकास कार्यक्रम से उद्धृत

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निर्धारित लक्ष्य

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि समाप्त होते-होते मोटर गाड़ियों का उत्पादन ५७ हजार प्रतिवर्ष तक पहुँच जाएगा । यह आशा है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक भारत न केवल मोटर गाड़ियों के मामले में आत्म-निर्भर हो जाएगा, बल्कि कम लागत पर मोटरगाड़ियों का निर्माण भी कर सकेगा । द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उत्पादन का जो लक्ष्य निर्धारित किया गया है वह इस प्रकार है—

उत्पादन-लक्ष्य

	१९६०-६१
१. मोटर	१२०००
२. ट्रक	४००००
३. जीप और स्टेशन वैगन	५०००
कुल	५७०००

अब तक जो अनुमान लगाए गए हैं उनके आधार पर भारत को निकट भविष्य में हर वर्ष ४० हजार गाड़ियों की आवश्यकता होगी, अर्थात् विदेशों को भी मोटर गाड़ियाँ निर्यात करना भारत के लिए सम्भव हो जाएगा ।

सहायक उद्योगों का विकास

मोटर उद्योग के विकसित होने का प्रभाव अन्य सहायक उद्योगों पर भी पड़ेगा, जैसे रबड़ उद्योग, कांच उद्योग, चमड़ा उद्योग, वायरलेस उद्योग तथा बैटरी उद्योग इत्यादि । इन सहायक उद्योगों के विकास के फलस्वरूप बहुत से लोगों को काम मिल सकेगा । यह आशा की जाती है कि लगभग १ लाख ५० हजार व्यक्तियों को इस उद्योग में काम मिल सकेगा । द्वितीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक यह संख्या बढ़कर ३ लाख तक पहुँच जाने की आशा है ।

अन्य देशों में इंजीनियरिंग उद्योगों ने मोटर उद्योग के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है । वहाँ मोटर गाड़ियों के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण पुर्जे अन्य कम्पनियों से प्राप्त हो जाते हैं जब कि भारत में मोटर उद्योग में संलग्न कम्पनियों को ही समस्त पुर्जों का निर्माण करना पड़ता है । हाल के वर्षों में भारत ने इस दिशा में भी कुछ प्रगति की है । इनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय नाम मद्रास स्थित इंडियन पिस्टन

लिमिटेड का है। यह कम्पनी बहुत ही उत्तम और वैज्ञानिक ढंग से पिस्टनों, पिस्टन रिंगों, सिलेंडरों इत्यादि का निर्माण करती है। विदेशी विशेषज्ञों ने भी कम्पनी द्वारा उत्पादित सामग्री और पुर्जों को उत्तम कोटि का घोषित किया है। बंगलोर स्थित मोटर इंडस्ट्रीज को० लिमिटेड और बम्बई स्थित आटो एक्सेसरीज के नाम भी उल्लेखनीय हैं। ये कम्पनियाँ उत्तम कोटि के 'स्पार्क प्लग' तैयार करती हैं। लेकिन अभी इस क्षेत्र में बहुत अधिक मार्ग तय करना शेष है। देश के इस्पात-उत्पादन में वृद्धि होने से भी इस उद्योग के विकास में बहुत सहायता मिलेगी।

देश में मोटरों की खपत

भारत में इस समय ३ लाख से भी अधिक बसें और मोटरें इस्तेमाल हो रही हैं। यदि एक मोटर का औसत जीवन-काल ११ वर्ष का मान लिया जाए तो हर वर्ष बेकार गाडियों के स्थान की पूर्ति करने के लिए केवल २८ हजार मोटर गाड़ियों की जरूरत पड़ेगी। यदि देशवासियों की आय में वृद्धि हो जाए और देश की यातायात व्यवस्था अधिक विकसित हो जाए तो मोटर गाड़ियों और ट्रकों की माँग में भी वृद्धि हो सकती है। इस स्थिति में देश में प्रतिवर्ष ३२००० गाड़ियाँ तक खप जाएँगी। लेकिन १९५४ के आँकड़ों से विदित होता है कि देश में उस वर्ष केवल १३ हजार मोटर गाड़ियाँ ही बिकीं। यह स्थिति उत्साहप्रद नहीं कही जा सकती। बड़े पैमाने पर मोटर गाड़ियों का उत्पादन प्रारम्भ करने के लिए यह आवश्यक है कि देश में हर वर्ष कम से कम २५ हजार गाड़ियों की माँग हो। भारत में हर वर्ष जितनी मोटर गाड़ियों की माँग रहती है उसका ७५ प्रतिशत भाग अमेरिका की जनरल मोटर्स कम्पनी एक दिन में तैयार करती है। क्रिमलर नामक दूसरी मोटर कम्पनी दो दिन में जितनी गाड़ियाँ बनाती है उनसे हमारी वर्ष भर की माँग पूरी हो सकती है। इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए हम उत्पादन और खपत की गम्भीर समस्या को अच्छी तरह समझ सकते हैं। भारत की मोटर कम्पनियाँ कम मूल्य पर मोटरें तैयार करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील हैं, लेकिन इसके साथ ही यह परमावश्यक है कि सरकार इस दिशा में कुछ ठोस कदम उठाए। इस दिशा में प्रस्तुत किए गए कुछ सुझाव इस प्रकार हैं—

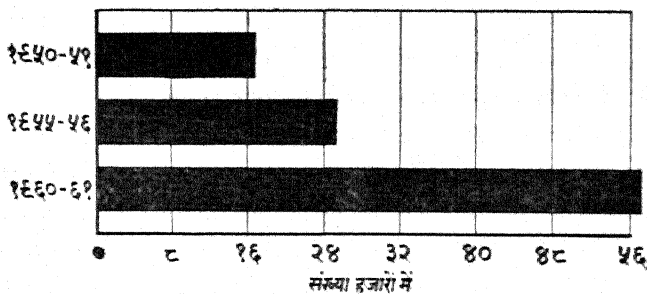
१. भारत सरकार अपनी यातायात नीति में संशोधन करे। इसमें सन्देह नहीं कि सड़क यातायात के राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप माँग काफी घट गई है।

२. भारत के विभिन्न प्रान्तों की सरकारों को ट्रकों का लाइसेंस देने में अधिक उदार नीति बरतनी चाहिए।

३. बिक्री-कर की दर घटाई जाए ताकि लोगों को मोटरें खरीदने के लिए प्रोत्साहन मिले। बिक्री-कर की वर्तमान दर बहुत अधिक है।

४. ट्रकों इत्यादि पर लगने वाले सड़क-कर को समाप्त करने के सम्बन्ध में भी सरकार को विचार करना चाहिए ताकि ट्रक चलाने वालों पर बहुत अधिक आर्थिक बोझ न पड़े।

५. सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सुझाव सड़कों की संख्या बढ़ाने का है। वस्तुतः एक प्रकार से मोटर उद्योग का विकास सड़कों के विकास पर आधारित है। देश में अच्छी सड़कें जितनी अधिक संख्या में होंगी, मोटरों, ट्रकों और बसों का उतना ही अधिक आवागमन उन पर हो सकेगा। इस प्रकार, देश में मोटरों, ट्रकों और बसों की माँग में निश्चय ही वृद्धि होगी। सड़कों के विकास का प्रश्न इस उद्योग के विकास की दृष्टि से इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि मैं भारत में सड़कों की व्यवस्था और उनके विकास का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत करना आवश्यक समझता हूँ, यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से इस उद्योग से उसका सम्बन्ध नहीं है।



भारत में सड़कों का विकास

मोटर उद्योग के विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश के विभिन्न भागों में अच्छी और पक्की सड़कों का निर्माण अधिकाधिक संख्या में किया जाए। वैज्ञानिक चमत्कार के इस युग में भी जब कि संसार में रेलों और हवाई अड्डों का जाल बिछ गया है, सड़कों के परम्परागत महत्त्व में कोई कमी नहीं आई है। प्राचीन काल में भारत में ईसा की मृत्यु के ४०० वर्ष पूर्व ही महान् सम्राट अशोक ने यह अनुभव कर लिया था कि देश को शक्तिशाली, संगठित और एक सूत्र में आबद्ध रखने के लिए तथा

व्यापार और कृषि की उन्नति के लिए सड़कों की अत्यधिक आवश्यकता है। अत: उन्होंने भारत में सड़कों का जाल बिछाने और मार्ग में यात्रियों की सुख-सुविधा की व्यवस्था करने में कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी। लेकिन इसके बाद देश की राज-नीतिक स्थिति डांवाडोल रही। अत: इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। समय-समय पर कुछ राजाओं ने कृषि, व्यापार इत्यादि को प्रोत्साहन देने या अकाल पीड़ित जनता को काम देने के उद्देश्य से कुछेक सड़कों का निर्माण अवश्य कराया, लेकिन कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। इस बीच विशेष रूप से मुसलमानों के शासन काल में भारत में दो बड़ी सड़कों का निर्माण हुआ, जो कृषि और व्यापार की दृष्टि से आज भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। पहली सड़क ग्रान्ट ट्रंक रोड और दूसरी ग्रेट डंकन रोड है

वर्तमान युग

वर्तमान युग में भाप-चालित इंजन के आविष्कार के फलस्वरूप भारत सरकार का ध्यान मुख्यत: रेलों के विकास पर ही केन्द्रित रहा। पुरानी सड़कों की मरम्मत तथा नई सड़कों के निर्माण की ओर से सरकार कुछ समय तक उदासीन सी हो गई। मोटर के आविष्कार के फलस्वरूप स्थिति में पुन: परिवर्तन हुआ और अच्छी एवं पक्की सड़कों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

१९२७ में भारत सरकार ने सड़कों की आवश्यकता और उनके विकास सम्बन्धी प्रश्नों का अध्ययन करने के लिए 'जयकर समिति' की स्थापना की। इस समिति की सिफारिशों के फलस्वरूप १९२९ में केन्द्रीय सड़क निर्माण कोष की स्थापना हुई और सड़क निर्माण का एक सुनिश्चित कार्यक्रम प्रारम्भ करने का निर्णय किया गया। इसी सिलसिले में आगे चल कर १९३९ में भारतीय सड़क काँग्रेस की स्थापना हुई। इस संस्था ने सड़क-निर्माण, सड़कों की मरम्मत इत्यादि के सम्बन्ध में परीक्षण करने की दिशा में संगठित और व्यवस्थित प्रयत्न प्रारम्भ किए।

पिछले २५ वर्षों में इस दिशा में काफी प्रगति की गई है। न केवल कच्ची और बेकार हो रही सड़कों को पक्का किया गया है बल्कि देश के विभिन्न तथा दुर्गम क्षेत्रों में सड़कों और पुलों का निर्माण हुआ है।

नागपुर योजना

१९४३ में, जब द्वितीय महायुद्ध की लपटें भारत की सीमा तक पहुँच चुकी थीं, यह अनुभव किया गया कि केवल रेलों द्वारा मोर्चे तक सैनिकों और रसद इत्यादि को पहुँचाने का कार्य पूरा नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, एक सबसे बड़ा भय यह

था कि यदि रेल-मार्गों पर बम वर्षा हो गई तो सारी व्यवस्था ही बिगड़ जाएगी। इस अवसर पर अंग्रेज सरकार ने सड़कों का वास्तविक महत्त्व अनुभव किया। अतएव यह आवश्यक हो गया कि मोर्चे तक सैनिकों और रसद सामग्री को पहुँचाने के लिए सड़कों का अधिकाधिक इस्तेमाल किया जाय। परिणामस्वरूप सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकता के कारण विभिन्न भागों में सड़कों के निर्माण का कार्य तेजी के साथ शुरू हो गया। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर एक राष्ट्र-व्यापी और व्यवस्थित सड़क-निर्माण योजना तैयार की गई जो नागपुर योजना के नाम से विख्यात हुई। इस योजना के अन्तर्गत ८३ हजार मील के बजाय १ लाख २३ हजार मील लम्बी पक्की सड़कों का निर्माण करने का फैसला किया गया। उस समय भारत में कुल मिलाकर १ लाख ३२ हजार मील लम्बी कच्ची सड़कें थीं। यह निश्चय किया गया कि इनकी लम्बाई बढ़ाकर २ लाख ८ हजार मील कर दी जाए। लेकिन इस बीच में युद्ध समाप्त हो गया। अतः इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कोई जोरदार प्रयत्न नहीं हुए।

पंचवर्षीय योजना

भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ होने के पूर्व भारत में कुल ९७ हजार मील लम्बी पक्की सड़कें तथा १,४७,००० मील लम्बी कच्ची सड़कें थी। योजना के अन्तर्गत १० हजार मील लम्बी पक्की सड़कें तथा २० हजार मील लम्बी कच्ची सड़कें बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

हमारे देश में सबसे विकट समस्या पुलों के निर्माण की है। वस्तुतः सड़कों के निर्माण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यही है। वर्षा ऋतु में तो देश के कुछ भागों का शेष भारत से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। सड़कों पर पुल बहुत कम हैं। केवल बड़ी-बड़ी नदियों पर ही पुल थे। अतएव सड़कों के निर्माण के साथ-साथ मार्ग में पड़ने वाली छोटी-छोटी नदियों पर पुल बनाने की समस्या भी उपस्थित थी। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत सड़कों का विकास करने के साथ-साथ मार्ग पर हजारों पुलियों तथा छोटे पुलों का निर्माण किया। इन पुलों की लम्बाई ५०० फुट से ७०० फुट तक है। इस प्रकार, ऐसी सड़कें तैयार करने का प्रयत्न हो रहा है जिन पर सभी मौसमों में यात्रा की जा सके। बड़ी-बड़ी नदियों के आर-पार जाने वाली सड़कों पर पुल बाँधना आसान काम नहीं है। बरसात में इन नदियों में भीषण बाढ़ आ जाती है और किसी-किसी नदी की सतह तो १०० फुट से भी ऊपर ऊँची हो जाती है। इन सभी बातों को दृष्टि में रखकर ही पुलों का निर्माण करना पड़ता है। देश की प्रमुख सड़कों पर इस समय ७५ बड़े पुलों का निर्माण हो रहा है। इनमें से अधिकांश पूरे हो चुके हैं।

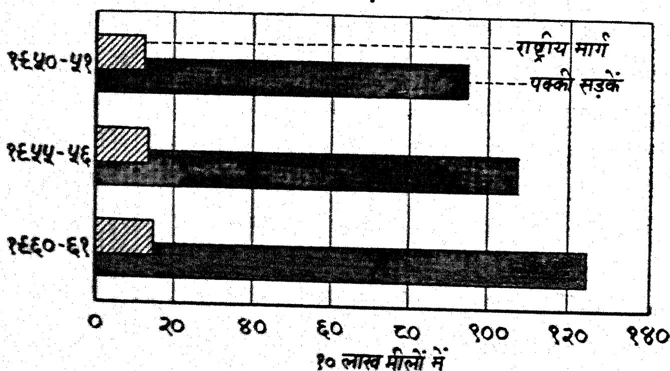
दूसरी पंचवर्षीय सड़क निर्माण योजना

नई योजना के अन्तर्गत अगले ५ वर्षों में सड़कों के निर्माण पर ६० करोड़ रुपया व्यय किया जाएगा। ४८ करोड़ रुपया ऐसी सड़कों के निर्माण पर व्यय होगा, जिनका निर्माण देश के आर्थिक विकास और विभिन्न राज्यों के मध्य निकट सम्पर्क स्थापित करने की दृष्टि से आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय सड़क निर्माण-कोष से भी सड़क निर्माण के लिए २२ करोड़ रुपया मिलेगा। इस प्रकार द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में केन्द्रीय सरकार सड़क निर्माण कार्य पर कुल १२५ करोड़ रुपया व्यय करेगी। पहली योजना में इस कार्य पर केन्द्रीय सरकार ने केवल ६० करोड़ रुपए ही खर्च किए थे।

विभिन्न राज्य सरकारों ने भी सड़क निर्माण और मरम्मत के लिए अलग अलग योजनाएँ तैयार की हैं। यह आशा है कि विभिन्न राज्य इस कार्य पर कुल मिलाकर २२५ करोड़ रुपए खर्च करेंगे। पिछली पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत उन्होंने सड़कों के निर्माण पर केवल ९० करोड़ रुपया खर्च किया था।

सारांश यह कि देश में अच्छी सड़कों की संख्या में वृद्धि होने के फलस्वरूप उन पर चलने वाली मोटर गाड़ियों की संख्या में भी वृद्धि होगी और उनकी माँग भी काफी बढ़ेगी। इस प्रकार सड़कों के विकास से अप्रत्यक्ष रूप से मोटर उद्योग को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा।

सड़कें



११

बाइसिकिल उद्योग

मंहगाई के इस जमाने में भी बाइसिकिल गरीबों और कम आमदनी वालों की सबसे बड़ी मित्र है। बड़े-बड़े नगरों में मजदूरों, दफ्तरों के बाबुओं, किसानों, दूधवालों, फेरी वालों इत्यादि के लिए तो आज यह वरदान बन गई है। इसके भरोसे शहर से कई मील दूर तक रहने वाले व्यक्ति हर रोज रोटी कमाने शहरों में जाते हैं और शाम को छुट्टी होते ही अपने-अपने घरों को रवाना हो पड़ते हैं। न पैट्रोल की जरूरत, न तेल की और न किसी तरह की परेशानी। बहुत हुआ तो पहिए में पंक्चर हो गया, या कोई अन्य मामूली गड़बड़ी हो गई। बहुतेरे ऐसी गड़बड़ियों को स्वयं ठीक कर लेते हैं परन्तु कुछ नाजुकमिजाज सड़क के किनारे बैठे हुए मिस्त्रियों से अपना काम निकाल लेते हैं। शहरों की बात जाने दीजिए, आज ग्रामीण क्षेत्रों में इसका बोल-बाला है। शायद ही कोई ऐसा टुटपुँजिया गाँव हो जहाँ दो-चार साइकिलें न हों। बहुत से गाँवों में तो हर भरे-पूरे घर में इसके दर्शन किए जा सकते हैं। भारत के उन ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ यातायात की कोई समुचित व्यवस्था नहीं, साइकिल बड़े काम की चीज सिद्ध हुई है। यदि सड़क न मिले तो यह पगडंडी पर भी बहुत आसानी से चलाई जा सकती है। इस विशेषता ने तो इसकी उपयोगिता में जैसे चार चाँद लगा दिए हैं।

भारत में साइकिल उद्योग का महत्त्वपूर्ण स्थान

भारत की अर्थ-व्यवस्था में साइकिल उद्योग को भविष्य में अधिकाधिक महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त होगा, यह पूर्णरूपेण निश्चित है। यदि यह कहा जाए कि भोजन, वस्त्र, घर एवं दैनिक आवश्यकता की अन्य वस्तुओं के बाद भारतीयों की सबसे प्रमुख आवश्यकता क्या होगी तो उसमें साइकिल को स्थान देना अनुचित न होगा। अभी हाल में इस सम्बन्ध में जो जाँच-पड़ताल की गई थी, उससे पता चलता है कि भारतीय ग्रामीण अपनी बचत में से सबसे पहले सन्दूक और तदुपरान्त साइकिल खरीदने का प्रयत्न करता है। छोटे से छोटे कस्बों और गाँवों के निवासी साइकिल चलाना जानते हैं और १० या १२ साल की उम्र के बालक की पहली रुचि प्रायः साइकिल सीखना होती

है। यदि स्कूल में ७वीं या ८वीं श्रेणी में अध्ययन करने वाला कोई छात्र साइकिल चलाना नहीं जानता तो उसे अपने सहयोगियों के साथ घूमते-फिरते झेंप आती है।

संसार में ७ करोड़ साइकिलें

संसार भर में इस समय कुल ७ करोड़ साइकिलें हैं। भारत में कुल मिलाकर १५० लाख से भी अधिक साइकिलें हैं। भारत में सबसे पहली साइकिल ब्रिटेन से १६०० में आई थी इसके उपरान्त भारत यूरोप और विशेषतः हालैंड से साइकिलें मँगाता रहा। द्वितीय महायुद्ध के कुछ समय पूर्व तक यही परिस्थिति रही। १६३०-४० में भारत हर वर्ष १ लाख ५० हजार साइकिलें विदेशों से आयात करता था। इसके अलावा, साइकिल के विभिन्न पुर्जे विदेशों से आयात करता था। साइकिल के विभिन्न भागों और पुर्जों का आयात करने पर भी प्रतिवर्ष भारत को लगभग ५० लाख रुपए खर्च करने पड़ते थे।

द्वितीय महायुद्ध और बाइसिकिल उद्योग

द्वितीय महायुद्ध के दौरान जहाजों के आवागमन में बाधाएँ उत्पन्न हुईं। फलस्वरूप विदेशों से मंगवाई जाने वाली सभी प्रकार की वस्तुओं का देश में अत्यधिक अभाव हो गया। साइकिल भी इनमें से एक थी। देश में साइकिलों की बहुत अधिक कमी हो गई। युद्ध सम्बन्धी, कार्यों के लिए भारत सरकार को भी साइकिलों की अत्यधिक आवश्यकता थी। विशेषतः बर्मा के मोर्चे पर साइकिलों की अत्यधिक आवश्यकता थी। अतएव विवश होकर अंग्रेज सरकार ने भारत में बाइसिकिल उद्योग के विकास के लिए हर प्रकार का सहयोग एवं प्रोत्साहन देने का निश्चय किया। साइकिल उद्योग के विकास के लिए इस प्रकार का कार्यक्रम तैयार किया गया ताकि भारत साइकिलों के सम्बन्ध में कुछ वर्षों में पूरी तरह आत्म-निर्भर हो जाए। विदेशों में साइकिल के पुर्जे तैयार करने का काम किसी एक कारखाने में नहीं होता, बल्कि विभिन्न कारखानों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पुर्जे तैयार होते, जिन्हें मिलाकर साइकिलें तैयार करने का काम अलग कारखाने में किया जाता है। लेकिन भारत में ऐसी व्यवस्था नहीं थी। अधिकांश पुर्जे या तो विदेशों से आयात किए जाते थे अथवा साइकिलें तैयार करने वाली कम्पनियाँ ही उनका निर्माण करती थीं।

भारत में साइकिलों के निर्माण की शुरुआत

१६३८ और १६४१ के बीच बम्बई में हिन्द साइकिल लिमिटेड और पटना

में हिन्दुस्तान साइकिल मैन्युफैक्चरिंग एण्ड इंडस्ट्रियल कार्पोरेशन लिमिटेड ने भारत में साइकिलें तैयार करने का काम प्रारम्भ किया। इसी समय कलकत्ता में इंडियन साइकिल मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी ने साइकिल के पुर्जे तैयार करने का काम प्रारम्भ कर दिया। १६४२ में साइकिल निर्माताओं ने एक साहसपूर्ण कदम उठाया जिससे साइकिलों का मूल्य कम करने में बहुत सहायता मिली। हिन्द और हिन्दुस्तान मैन्यु-फैक्चरिंग कम्पनियों ने ऐसे कारखानों की स्थापना की जिनमें साइकिल के विभिन्न पुर्जे एक साथ तैयार हो सकें। इस साहसपूर्ण कार्यवाही का परिणाम यह हुआ कि ६ या ७ वर्षों में इन कारखानों में साइकिल के लगभग २५० प्रकार के पुर्जे तैयार होने लगे। १६४७ के बाद से ही देश में साइकिलों के उत्पादन में वृद्धि होनी शुरू हुई थी। उस वर्ष भारत में कुल ४८८२७ बाइसिकिलें तैयार हुई थीं। १६४६ से १६५३ तक के उत्पादन के आंकड़े इस प्रकार हैं—

उत्पादन क्षमता

वर्ष	साइकिलों का उत्पादन	उत्पादित पुर्जों का मूल्य हजारों रुपयों में
१६४६	४२६५४	६४३.६
१६४७	३१८६०	१७१८.४
१६४८	६१८६६	१११४.८
१६४६	८००२८	१७६६.४
१६५०	१०३१५२	६४५२.४
१६५१	११४२७६	६४२०.४
१६५२	१६६६५६	८२५६.०
१६५३	२६४१६८	१०१६४.०

—मेजर इंडस्ट्रीज आॅफ इंडिया से उद्धृत

प्रथम पंचवर्षीय योजना के उत्पादन-लक्ष्य

यह निर्णय किया गया था कि प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक

साइकिलों का उत्पादन १,०१,१३६ (१९५०-५१) प्रतिवर्ष से बढ़कर ५,३०,००० प्रति वर्ष तक पहुँच जाएगा। साथ ही यह भी अनुमान लगाया गया था कि देश के अन्दर प्रतिवर्ष लगभग ५,००,००० साइकिलें खप जाएँगी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भिक वर्ष में देश में प्रतिवर्ष २,६६,५९७ साइकिलें खप रही थीं। प्रथम पंचवर्षीय योजना की प्रगति-रिपोर्ट से पता चलता है कि देश में साइकिलों का उत्पादन और आयात दोनों ही निर्धारित लक्ष्यों से कहीं आगे बढ़ गये हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ होने के समय हिन्दुस्तान साइकिल्स, बम्बई और हिन्दुस्तान मैन्युफैक्चरिंग एण्ड इंडस्ट्रीयल कार्पोरेशन, पटना मिलकर प्रतिवर्ष १,२०,००० साइकिलें तैयार करती थीं। इसके अलावा, तीन अन्य साइकिल कम्पनियों में से प्रत्येक में प्रतिवर्ष १ लाख साइकिलें तैयार करने की योजनाओं को अन्तिम रूप प्रदान किया जा रहा था। दो वर्षों के अन्दर ही इन तीनों कम्पनियों-सैनरैले, आसनसोल, टी. आई. साइकिल्स ऑफ इंडिया, मद्रास, एटलस साइकिल इंडस्ट्रीज, सोनीपत तथा इंडिया साइकिल्स मैन्युफैक्चरिंग, कलकत्ता ने उत्पादन-कार्य प्रारम्भ कर दिया। इनके अलावा, अन्य कम्पनियों—वैयरवेल साइकिल्स एण्ड को०, पर्ल साइकिल्स इंडस्ट्रीज, दि एवोन्स साइकिल्स और नन्दी एण्ड को० ने भी १९५५ में उत्पादन-कार्य प्रारम्भ कर दिया है। आठ अन्य बाइसिकिल कम्पनियों को भी निर्धारित कार्यक्रम के अन्तर्गत १९५६ में साइकिलें बनाने का काम प्रारम्भ कर देना था। इन कम्पनियों के नाम इस प्रकार हैं—एच. आर. भल्ला एण्ड सन्स; रामपुर इंजीनियरिंग वर्क्स; पाउलर साइकिल्स मैन्युफैक्चरिंग; रोड मास्टर इंडस्ट्रीज ऑफ इंडिया; जीवनलाल एण्ड को०; गोपाल मेटल वर्क्स मेटल गुड्स मैन्युफैक्चरिंग और बाइसिकिल मैन्युफैक्चरिंग कोआपरेटिव सोसाइटी।

७६०००० साइकिलें प्रतिवर्ष

१९५५-५६ में उत्पादन-कार्य में संलग्न सभी साइकिल कम्पनियों का प्रति वर्ष उत्पादन लगभग ७,६०,००० साइकिलें था। सभी योजनाओं के कार्यान्वित हो जाने पर इन कारखानों में एक पाली में प्रतिवर्ष ४ लाख बाइसिकिलें बनने लगेंगी। दो पालियों में काम करने पर उत्पादन में ६० से ६५ प्रतिशत तक वृद्धि हो सकेगी। इस प्रकार देश में साइकिलों का प्रतिवर्ष उत्पादन १५ लाख तक पहुँच जाएगा। देश के अन्दर साइकिल के विभिन्न कारखानों की स्थिति इस प्रकार है—

कारखानों की संख्या और वार्षिक उत्पादन

राज्य	कारखानों की संख्या	वार्षिक उत्पादन
बम्बई	१	१०००००
बिहार	१	६००००
दिल्ली	२	८४०००
मद्रास	१	२०००००
पेप्सू	१	२५०००
पंजाब	५	२०६०००
उत्तर प्रदेश	४	३००००
पश्चिमी बंगाल	३	१५५०००
कुल योग	१८	८६५०००

१९५०-५१ में साइकलों का उत्पादन १.०१ लाख और १९५१-५२ में १.२० लाख था, लेकिन १९५१-५२ के बाद से साइकिल उत्पादन की गति में तेजी के साथ प्रगति हुई है। १९५३-५४ में ६ प्रमुख साइकिल-निर्माता कम्पनियों का वार्षिक उत्पादन २.८९ लाख साइकिलों तक पहुँच गया था। १९५४-५५ तक यही उत्पादन बढ़कर ४ लाख तक पहुँच गया। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार १९५६ में ५.५ लाख साइकिलें तैयार हुई, जबकि उत्पादन लक्ष्य केवल ५.३ लाख था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में साइकिल उद्योग का विकास

	पूरी साइकिलें (हजार में)			साइकिलों के पुर्जों का मूल्य लाख रु० में		
वर्ष	देश में निर्मित	आयात में	खपत	देश में उत्पादित पुर्जों का मूल्य लाख रु० में	आयात लाख रु० में	कुल मूल्य लाख रु० में
१९५०-५१	१०१	१६६	२६७	६४.५	९६.०	१६०.५
१९५१-५२	१२०	२८३	४०३	८८.९	१४४	२३३.२
१९५२-५३	२११	१९८	४०८	७७.३	१३५.५	२१२.८
१९५३-५४	२८९	९०	३७९	९१.१	९४.९	१८७.०
१९५४-५५	४०१	८९	४९०	११८.६	१४२.३	२६०.९
१९५५-५६	५५०	१३०	६८०	१३६.५	१७५.०	३११.५

—औद्योगिक विकास कार्यक्रम से उद्धृत

आयात और निर्यात

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रथम दो वर्षों में देश में साइकिलों का निर्माण इतनी पर्याप्त मात्रा में नहीं हो सका कि उनकी बढ़ती हुई माँग पूरी की जा सके। अतएव विदेशों से काफी अधिक संख्या में साइकिलों का आयात किया गया। लेकिन देश में साइकिलों के उत्पादन में वृद्धि होने के कारण १९५३-५४ में केवल ९० लाख रुपए मूल्य की साइकिलों का आयात किया गया। योजना के अन्तिम वर्षों में विदेशों को ३० हजार साइकिलें निर्यात करने की योजना थी। युद्धोत्तरकाल में साइकिलों के आयात सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

वर्ष	आयात संख्या
१९५०-५१	९६४१९३२
१९५१-५२	१४४३०१४७
१९५२-५३	१३५४०३२२
१९५३-५४	९४९३१६८
१९५४-५५	१७२३३८०९२

उक्त आँकड़ों को देखने से यह पता चलता है कि अब भी विदेशों से काफी अधिक संख्या में साइकिलों का आयात होता है जो निश्चय ही बन्द होना चाहिए।

देश में साइकिलों की माँग में पिछले वर्षों में निरन्तर वृद्धि हुई है। तटकर कमीशन ने यह अनुमान लगाया था कि देश को १९५४ में ४ लाख, १९५५ में ४.२५ लाख तथा १९५६ में ४.५ लाख साइकिलों की आवश्यकता होगी। लेकिन यह माँग अनुमान से भी अधिक बढ़ गई है। १९५६ में देश में ६.८ लाख साइकिलों की बिक्री हुई।

हाल के वर्षों में देश के अन्दर बनने वाली साइकिलों की कोटि और गुणों में भी पर्याप्त सुधार हुआ है लेकिन फिर भी अभी सुधार आशा के अनुसार नहीं हुआ है और इस दिशा में पर्याप्त प्रगति करना बाकी है। इसके अतिरिक्त विदेशों में बनने वाली साइकिलों की तुलना में भारत में निर्मित साइकिलों पर काफी अधिक लागत बैठती है।

पूंजी और रोजगार की स्थिति

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भकाल में बाइसिकिल उद्योग में कुल

५.७९ लाख रुपये की पूंजी लगी थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान इस उद्योग में ४२० लाख रुपयों की पूंजी और लगाई गई। १९५१ में बाइसिकिल के विभिन्न कारखानों से मजदूर काम कर रहे थे। १९५६ में यह संख्या बढ़कर ६,००० तक पहुँच गई थी।

साइकिल के पुर्जे तैयार करने वाले कारखानों की प्रगति

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ होने के समय देश में केवल एक कारखाना था जहाँ साइकिल के पुर्जे तैयार किए जाते थे। हिन्द बाइसिकिल तथा हिन्दुस्तान बाइसिकिल मैन्युफैक्चरिंग नामक दो साइकिल निर्माता कम्पनियाँ भी चैन, फ्रीह्वील, स्पोक इत्यादि को छोड़कर शेष सभी प्रकार के पुर्जे तैयार करती थीं। आजकल साइकिलें तैयार करने वाली अधिकांश कम्पनियाँ बहुत से साइकिल के पुर्जे भी स्वयं तैयार कर लेती हैं। इस समय लगभग २२ फर्में ऐसी हैं जो केवल पुर्जे तैयार करने का काम करती हैं। लेकिन इसके अलावा ४६० छोटी-छोटी फर्में भी इस कार्य में संलग्न हैं। अभी स्पोक, फ्रीह्वील इत्यादि कुछ जटिल पुर्जे विदेशों से ही मंगाए जाते हैं। यह आशा है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान सभी प्रकार के पुर्जे पर्याप्त मात्रा में यहीं तैयार होने लगेंगे। देश के विभिन्न भागों में स्थित पुर्जे तैयार करने वाली कम्पनियों की संख्या इस प्रकार है—

बम्बई	४
दिल्ली	३
पंजाब	३
पश्चिमी बंगाल	६
उत्तर प्रदेश	५
मद्रास	१

साइकिलों के छोटे-छोटे पुर्जे तैयार करने वाली ये अधिकांश फर्में पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में ही केन्द्रित हैं। सुलभ आँकड़ों के अनुसार भारत ने १९५१-५२ में १४४ लाख रु० मूल्य के तथा १९५२-५३ में १३६ लाख रुपये मूल्य के बाइसिकिल-पुर्जे मंगाए थे, जबकि १९५५-५६ में केवल ९५ लाख रु० मूल्य के ही पुर्जे विदेशों से आयात किए गए।

अभी हाल में छोटे पैमाने पर संघटित उद्योगों के विकास कमिश्नर ने उत्तरी

क्षेत्र में छोटे पैमाने पर साइकिल के पुर्जे तैयार करने वाली फर्मों की स्थिति की जाँच की थी। इस जाँच-पड़ताल में भारत में साइकिल के पुर्जों की माँग का भी अनुमान लगाया गया था। इस जाँच-पड़ताल के अनुसार १९५५ में देश में लगभग ३५ करोड़ रु० मूल्य के पुर्जे खपे थे। भविष्य में साइकिलों की माँग बढ़ जाने के कारण पुर्जों की माँग में भी और अधिक वृद्धि होगी और यह आशा की जाती है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत देश में लगभग ५ करोड़ रु० मूल्य के पुर्जे खपने लगेंगे। इस सम्बन्ध में ठीक पता नहीं कि इन छोटी-छोटी फर्मों में कुल कितनी पूंजी लगी हुई है।

वास्तविक स्थिति तो यह है कि साइकिल-निर्माताओं और पुर्जे तैयार करने वाली फर्मों के मध्य निकट सम्पर्क और सहयोग नहीं है। अधिकांश फर्में ऐसे पुर्जे तैयार करती हैं जिनका प्रयोग नए पुर्जों के खराब हो जाने पर ही किया जा सकता है क्योंकि वे इतनी उत्तम कोटि के नहीं होते कि प्रारम्भ में ही उनका इस्तेमाल किया जा सके। यदि पुर्जा निर्माताओं और साइकिल-निर्माताओं के मध्य निकट सहयोग स्थापित हो जाएं तो इससे पुर्जों की कोटि सुधारने में महत्त्वपूर्ण सहायता मिलेगी। आवश्यकता इस बात की है कि देश में उत्कृष्ट कोटि के पुर्जे पर्याप्त संख्या में तैयार हों ताकि साइकिल निर्माता बिना किसी संकोच के उनका इस्तेमाल कर सकें।

विकास परिषद् की स्थापना

भारत सरकार ने १९५३ में बाइसिकिल उद्योग के विकास के लिए एक विकास परिषद् की स्थापना की थी। साइकिल-उत्पादन में वृद्धि करने के लिए समिति ने कुछ ठोस सुझाव भी दिए हैं। इन सुझावों पर अमल करके देशी निर्माताओं ने साइकिल की कीमतों में काफी कमी कर दी है परन्तु लागत की दृष्टि से भारतीय साइकिलें फिर भी विदेशी साइकिलों से मंहगी पड़ती हैं।

तटकर कमीशन की सिफारिशों के अनुसार बाइसिकिल उद्योग को १९४६ से ही तटकर संरक्षण प्राप्त है। तटकर कमीशन की १९५४ की रिपोर्ट के आधार पर संरक्षण की अवधि बढ़ाकर दिसम्बर १९५६ तक कर दी गई थी। १९४६ में तटकर की दर ७३½ प्रतिशत थी। इस समय विदेशी साइकिल निर्माताओं को भारत में आने वाली प्रत्येक साइकिल पर कम से कम ६० रु० तटकर देना पड़ता है। विकास परिषद् के अनुमान के अनुसार द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान साइकिलों की माँग इस प्रकार होगी—

वर्ष	देश के अन्दर माँग	निर्यात	कुल माँग
१९५६-५७	७०००००	२५०००	७२५०००
१९५७-५८	७५००००	५००००	८०००००
१९५८-५९	८५००००	५००००	९०००००
१९५९-६०	१००००००	१०००००	११०००००
१९६०-६१	११०००००	१५००००	१२५००००

—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

यह आशा है कि जीवन-स्तर और रहन-सहन में वृद्धि होने के फलस्वरूप भविष्य में साइकिलों की माँग बहुत अधिक बढ़ जाएगी। सड़कों के विकास से भी इनकी माँग बढ़ने में महत्त्वपूर्ण योग मिलेगा। इसके अलावा प्रमुख निर्माताओं द्वारा विशाल पैमाने पर उत्पादन शुरू करने पर देशी साइकिलों के मूल्य और अधिक गिर जाएँगे। इससे भी साइकिलों का मूल्य कम करने में बहुत सहायता मिलेगी। इन बातों को दृष्टि में रखते हुए यह अनुमान है कि साइकिलों की प्रतिवर्ष माँग ११ लाख तक पहुँच जाएगी तथा १.५ लाख साइकिलें विदेशों को निर्यात भी की जा सकेंगी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार देश न केवल साइकिलों के बारे में पूरी तरह आत्मनिर्भर हो जाएगा बल्कि विदेशों को भी काफी अधिक संख्या में साइकिलों का निर्यात कर सकेगा।

देश की आवश्यकताओं की पूर्ति और निर्यात के लिए हर वर्ष १२.५ लाख साइकिलों का निर्माण करने की योजना है। छोटी-छोटी फर्में कुल मिलाकर २.५ लाख साइकिलें तैयार कर लेंगी। शेष १० लाख साइकिलें बड़ी कम्पनियाँ तैयार करेंगी।

१०० लाख रुपए की पूंजी

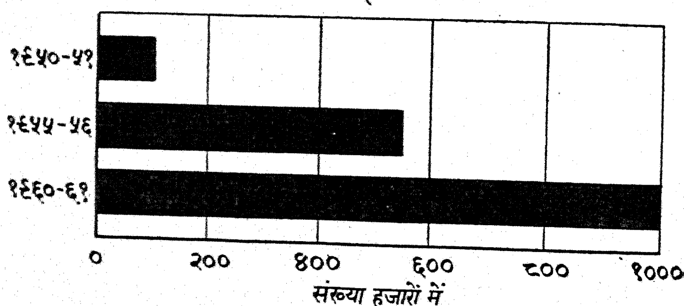
द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार साइकिल उद्योग के विकास पर १०७ लाख रु० की पूंजी लगाई जाएगी। इसमें से ५८ लाख रुपए तो वर्तमान योजनाओं को अन्तिम रूप प्रदान करने पर ही व्यय होगा। छोटे पैमाने पर उत्पादन करने वाली फर्में इसी अवधि में २०५ लाख रुपए लगाएँगी।

यह आशा है कि बड़ी कम्पनियों में १९६० तक ८ हजार व्यक्तियों को काम मिल सकेगा। कुल मिलाकर इस उद्योग में १५ हजार व्यक्तियों को काम दिलाया जा

सकेगा। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान बाइसिकिल उद्योग का विकास इस प्रकार होगा—

	१९५५-५६	१९६०-६१
१. साइकिल निर्माता कम्पनियाँ	१३	१८
२. अनुमानित उत्पादन क्षमता (एक पारी में)	७६००००	८६५०००
३. अनुमानित उत्पादन	५५००००	१२५००००
४. देश में खपत	६८००००	११००००
५. निर्यात		१५००००

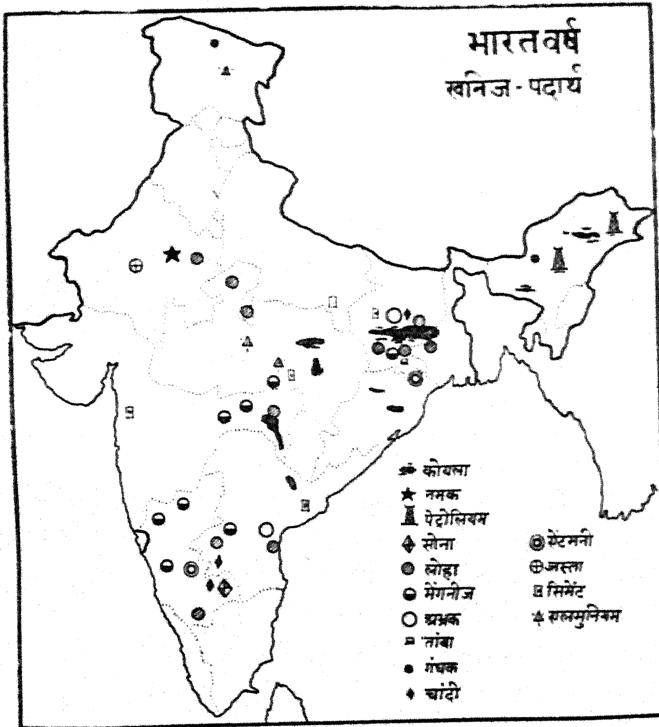
—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत



१२

पैट्रोलियम उद्योग

मैं गाँव से वापस लौट रहा था। जेठ की चढ़ी दुपहरी और शरीर के रोम-रोम को भेद देने वाली गरम-गरम लू के थपेड़े। शहर २० मील से अधिक दूर नहीं था परन्तु इतनी दूरी भी उस समय बहुत अखर रही थी। सहसा बस कुछ झटकों के साथ धीमी पड़ी और कुछ दूर जाकर बिलकुल ठप हो गई। क्या हुआ ?



बस क्यों रुक गई ? 'जल्दी चलाओ, बड़ी गरमी है,' शोर मच गया। 'मैं मजबूर हूँ, गाड़ी का पैट्रोल खतम हो गया है,' ड्राइवर ने स्टार्टर का स्विच बन्द करते हुए कहा। हम यात्रियों को तो जैसे १०० बिच्छुओं ने एक साथ डंक मार दिया। कहाँ घर पहुँच कर नहा-धोकर भोजन करने और पंखे की हवा में सुख की नींद लेने

के स्वप्न देख रहे थे और कहाँ सब गुड़-गोबर हो गया। चिलचिलाती धूप, सिर ढकने के लिए नाम मात्र को भी छाया नहीं, पानी का आस-पास कोई नामो-निशान नहीं। सभी यात्री बौखला उठे और कुछ तो ड्राइवर और क्लीनर का सिर फोड़ देने के लिए तैयार हो गए। परन्तु ड्राइवर भी बहुत घाघ था। बस चलाते-चलाते उसे यात्रियों से निपटने का ढंग भी अच्छी तरह मालूम हो गया था। हर प्रकार से सफाई देने के बाद उसने हाथ-पैर जोड़कर यात्रियों के क्रोध को शान्त कर दिया। यह तय हुआ कि क्लीनर साइकिल पर तुरन्त शहर को रवाना हो जाए। यदि उसके लौटने के पूर्व किसी प्रकार पैट्रोल मिल जाए तो काम बन जाएगा, अन्यथा शाम तक क्लीनर पैट्रोल लेकर वापस लौट आएगा। क्लीनर तो साइकिल पर रवाना हो गया, परन्तु हमारे सामने प्रश्न यह था कि जेठ की भरी दुपहरी, इस सुनसान जगह में किस प्रकार काटी जाए। बहुत से यात्री तो बस में ही बैठे रहे, परन्तु यहाँ तो पेट में चूहे कूद रहे थे। मैं तो किसी तरह पेट पर पत्थर बाँध भी लेता, परन्तु साथ में भानजे साहब भी थे और उन्हें तो रोटी चाहिए थी, कहीं से भी मिले। बहुत खोजने पर एक टूटी-फूटी झोंपड़ी दीख पड़ी। झोंपड़ी में जाकर मैं किसान को एक सेर आटे के लिए २ रुपये तक देने के लिए तैयार हुआ, परन्तु वह आटा देने के लिए राजी नहीं हुआ। जब पैसे के जोर से काम न चला तो मैंने धर्म और दया की दुहाई दी। यह ऐसा अमोघ अस्त्र था जिसका कोई प्रतिकार भारतीय किसान के पास नहीं रहता। खुद भूखा रहने वाला भारतीय किसान धर्म और दया के नाम पर अपने मुख का कौर भी निकाल कर दे देता है। गरीब किसान को मेरे भानजे पर तरस आ ही गया और उसने बिना मूल्य लिए लगभग आधा सेर चने का आटा मुझे दे दिया। अब रोटी बनाने की समस्या उठ खड़ी हुई। मैं तो बिलकुल कोरा था, परन्तु उपाय भी कोई नहीं था। किसान ने आटा सान दिया और इधर-उधर से कपड़े एकत्र कर आग भी जला दी। अब मेरी बारी थी। जो काम कभी नहीं किया, वह उस दिन करना पड़ा। लेकिन सच मानिए उस दिन उन अधजली और अधपकी रोटियों में जो स्वाद आया वह आज तक उत्तम से उत्तम व्यंजन में नहीं आया है। वह दुपहरी कैसे कटी, यह न पूछिए। दो-तीन मोटरें उधर से निकलीं। हमने बहुत मिन्नतें कीं, परन्तु न तो किसी ने पैट्रोल दिया और न जगह देने के लिए तैयार हुआ। उस दिन रात को जब घर पहुँचा तो यह अच्छी तरह अनुभव हो चुका था कि आधुनिक सभ्यता के जीवन के लिए पैट्रोल उतना ही अनिवार्य है जितना शरीर के लिए प्राण। बिना पैट्रोल के आधुनिक सभ्यता का सारा ढाँचा उसी प्रकार बेकार है जिस प्रकार प्राण निकल जाने पर शरीर का कोई महत्त्व या मूल्य नहीं रह जाता। यदि पैट्रोलियम न होता तो

आज न सड़क पर मोटरें नजर आतीं और न आसमान पर वायुयान विहार करते। पैट्रोलियम केवल ईंधन के रूप में ही नहीं, बल्कि कई अन्य प्रकार से भी आधुनिक सभ्यता के लिए बहुत अनिवार्य हो गया है। आधुनिक सभ्यता की प्रगति के लिए पैट्रोलियम कितना अधिक महत्त्वपूर्ण है, यह किसी से भी छिपा नहीं। संसार में पश्चिमी एशिया में तेल के सबसे बड़े भण्डार हैं और इसीलिए यह क्षेत्र आज अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दाँव पेंच का अखाड़ा बन गया है।

तेल के भण्डार

जैसा कि मैं ऊपर बता आया हूँ, तेल के सबसे बड़े भण्डार पश्चिमी एशिया के देशों—ईरान, सऊदी अरब, लेबनान, ईराक इत्यादि देशों में पाया जाता है। पश्चिमी एशिया के अलावा, बर्मा, भारत तथा एशिया के कुछ देशों में भी थोड़े परिमाण में तेल निकाला जाता है। यूरोप में रूमानिया में तथा अमेरिका में कई भागों में तेल के विशाल भण्डार हैं। पिछले कुछ दशकों में अमेरिका के तेल उद्योग ने बहुत अधिक प्रगति कर ली है। इस समय संयुक्त राज्य अमेरिका में सबसे अधिक तेल उत्पन्न होता है। यही नहीं, उसकी अनुमानित तेल राशि भी दुनिया में सबसे अधिक है। यह अनुमान लगाया गया है कि अमेरिका में एक वर्ष में इतना तेल निकाला जाता है जो विभिन्न कार्यों के लिए इतनी शक्ति और ईंधन सुलभ कर सकता है जिसे सुलभ करने के लिए ४ अरब ५० करोड़ आदमी सप्ताह में ६ दिन ८ घण्टे रोज काम करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद रूस, फारस, ईराक, ईरान और वेनेज्वेला में तेल के विशाल भण्डार हैं। अमेरिका और वेनेज्वेला सबसे अधिक तेल विदेशों को निर्यात करते हैं। इसका एक प्रमुख कारण यही है कि अमेरिका में तेल-शोधक कारखानों की संख्या बहुत अधिक है। इन कारखानों में दक्षिणी अमेरिकी देशों से भी तेल शुद्ध होने के लिए आता है।

अभी तक निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि संसार में कितना तेल है और कब या कहाँ पर सुलभ हो सकता है। अनुभव से यह पता चलता है कि एक क्षेत्र जो आज तेल भण्डारों से शून्य है, १५ वर्ष बाद तेल बहुल क्षेत्र हो जाए। अमेरिका में कई बार ऐसा हुआ है।

एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण खनिज

पैट्रोलियम एक महत्त्वपूर्ण खनिज तेल है। आधुनिक युग की यन्त्र-प्रधान सभ्यता इसके अभाव में एक दिन नहीं टिक सकती। यही कारण है कि संसार के सभी बड़े राष्ट्र पैट्रोलियम को बहुत महत्त्वपूर्ण समझते हैं। जब तक सस्ती दर पर

अणुशक्ति सुलभ नहीं होती, तब तक पैट्रोलियम ईंधन का एक प्रमुख स्रोत बना रहेगा। लेकिन ईंधन के अलावा अब पैट्रोलियम अन्य दृष्टियों से भी महत्त्वपूर्ण बन गया है। वैज्ञानिकों ने पैट्रोलियम से कृत्रिम रेशे, कृत्रिम रबड़, गृहनिर्माण सामग्री, रंग-रोगन तथा इसी प्रकार के कई अन्य उपयोगी रसायनिक पदार्थ तैयार करने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है और अकेले अमेरिका में ही प्रतिवर्ष करोड़ डालर मूल्य की पैट्रोलियम की वस्तुएँ तैयार की जा रही हैं।

तेल निकालने की पुरानी विधि

पुराने समय में तेल साधारण कुओं से जल की तरह निकाला जाता था। इस प्रकार थोड़ी-सी गहराई पर निकलने वाला तेल ही निकल सकता था। अमेरिका में सबसे पहले गहरा कुँआ खोदने का श्रेय कर्नल ड्रेक नामक व्यक्ति को प्राप्त है। आधुनिक युग में ५ हजार फुट से भी अधिक गहराई पर स्थित तेल आसानी से निकाला जा सकता है। तेल का कुआँ खोदने के पहले शिलाओं की तहों की जाँच कर वहाँ तेल की उपस्थिति का पता लगा लिया जाता है। तेल का पता लगाने के लिए भी नई-नई विधियों की खोज की गई है। सामान्यत: शिलाओं की परतों का सावधानी से अध्ययन करके और रेखागणित के सिद्धान्तों का सहारा लेकर यह अनुमान किया जाता है कि किसी विशेष स्थान पर तेल कितनी गहराई पर मौजूद हो सकता है। इस प्रकार की जाँच-पड़ताल कर इस प्रकार के कुँए बनाए जाते हैं।

तेल साफ करने की विधि

मिट्टी का तेल एक बहता हुआ पदार्थ है जो पृथ्वी के गर्भ में पाया जाता है। इस तेल को साफ करके उपयोग में लाया जाता है। मिट्टी के तेल में कई तरह के तेल मिले होते हैं। इन तेलों को एक दूसरे से जुदा करने के लिए अस्वच्छ तेल को गर्म किया जाता है। इस गर्मी से तेल का कुछ अंश उड़ जाता है। कुछ भाग कुछ अधिक गर्मी पाने पर उड़ता है। बाकी अंश को उड़ाने के लिए बहुत अधिक गर्मी देनी पड़ती है। इन भागों के अलग-अलग नाम हैं। जो भाग बहुत जल्दी उड़ जाता है, वह मोटर स्प्रिट, बैंजाइन, पट्रोल, नेफ्था इत्यादि के नाम से विख्यात है। विशेष गर्मी पाकर उड़ने वाले अंश को हम किरोसिन कहते हैं। किरोसिन से भी अधिक गर्मी पर उड़ने वाले तेलों का उपयोग मशीनों में चिकनाई बनाए रखने के लिए किया जाता है। मशीनों में इन तेलों का इस्तेमाल करने का उद्देश्य घिसावट को कम करना और पुर्जों की तोड़-फोड़ को रोकना रहता है। अस्वच्छ तेल से मशीनों का तेल उड़ाने के बाद जो वस्तु बच रहती है वह मोम से मिलती-जुलती होती है और पैराफ़ीन वैक्स बनाने

के लिए उसका इस्तेमाल किया जाता है। पश्चिमी राष्ट्रों और विशेष कर अमेरिका में पैट्रोलियम से अनेकों प्रकार की वस्तुएँ, जैसे कृत्रिम रेशे, कृत्रिम रबड़, कृत्रिम भवन निर्माण सामग्री, रंग-रोगन, प्लास्टिक तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ विशाल संख्या में तैयार की जा रही हैं। अकेले अमेरिका में ही पैट्रोलियम से प्रतिवर्ष करोड़ों डालर मूल्य की वस्तुओं का निर्माण होता है।

औद्योगिक विकास के लिए पैट्रोलियम की आवश्यकता

संसार का कोई ऐसा देश नहीं, जहाँ मिट्टी के तेल की आवश्यकता न पड़ती हो। इसकी खोज सर्वप्रथम किसने की, इस सम्बन्ध में हमें विशेष जानकारी नहीं, परन्तु अमेरिका में आधुनिक ढंग पर तेल का कुँआ खोदने का श्रेय कर्नल ड्रेक नामक अमेरिकी को प्राप्त है। पहले लोग पागल समझ कर उसका मजाक उड़ाते थे, परन्तु अन्य महान् अन्वेषकों की तरह वह भी लगन के साथ अपने काम पर डटा रहा और एक दिन जब तेल की मोटी धार पृथ्वी के गर्भ को विदीर्ण कर बाहर निकल पड़ी तो लोग आश्चर्यचकित रह गए। इन १०० वर्षों में तेल आधुनिक सभ्यता और मानव जीवन के लिए इतना महत्त्वपूर्ण बन गया है कि उसके अभाव में आधुनिक सभ्यता की जटिल मशीनें एक दिन भी कार्य नहीं कर सकतीं। अन्य देशों की तरह भारत को भी मिट्टी के तेल की उस समय तक आवश्यकता रहेगी, जब तक विशाल नदी घाटी योजनाएँ तैयार नहीं हो जातीं और विशाल परिमाण में सस्ती बिजली सुलभ नहीं होती। इन योजनाओं के बन जाने पर उद्योगों का विकास होगा, परिवहन और यातायात-व्यवस्था का और अधिक विस्तार होगा, जिसके फलस्वरूप तेल की माँग घटने के बजाय उलटे बढ़ जाएगी। आधुनिक सभ्यता के इस युग में भी विद्युत-शक्ति संसार के सभी भागों में नहीं पहुँच पाई है और अब भी मिट्टी का तेल ही लाखों और करोड़ों घरों को प्रकाश प्रदान करता है। तेल संसार के सभी भागों में नहीं पाया जाता, अतएव हजारों मील की दूरी पर मिट्टी का तेल पहुँचाना भी एक बड़ी समस्या है। इसको सुलझाने के लिए तरह-तरह के उपायों का सहारा लिया गया है।

मिट्टी का तेल किस प्रकार ढोया जाता था ?

१०० वर्ष पूर्व तेल लकड़ी के पीपों में भरकर शोध कारखानों तक पहुँचाया जाता था। एक पीपे में २० से लेकर ४० गैलन तक तेल आता था। ये पीपे नावों पर लादकर नदी-मार्ग द्वारा या वैगनों पर लादकर स्थल-मार्ग द्वारा भेजा जाता था। तेल-शोधक कारखानों तक इस तेल को पहुँचने में काफी समय लग जाता था। जैसे-जैसे तेल की माँग बढ़ती गई, समय पर तेल सुलभ करना अधिकाधिक कठिन होता

गया । आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है । शीघ्रतापूर्वक और अधिक परिमाण में तेल-शोधक कारखानों तक तेल पहुँचाने के साधनों की खोज करते-करते किसी को यह सूझी कि क्यों न पीपे के आकार के वैगन तैयार किए जाएँ और छोटे पीपों के बजाय वैगन में ही तेल भर दिया जाए । यह परीक्षण बहुत सफल रहा । इसके बाद लोगों के मस्तिष्क में तेल-कुँओं से तेल-शोधक कारखानों अथवा बन्दरगाहों तक तेल पहुँचाने के लिए पाइप लाइन का निर्माण करने का विचार सूझा । आगे चलकर एक देश से दूसरे देश को तेल ले जाने के लिए विशाल तेलवाहक जहाजों (टैंकरों) का निर्माण हुआ । आजकल विशाल तेलवाहक जहाज विशाल परिमाण में तेल भर कर संसार के हर कोने में पहुँचते हैं । अब यह भली प्रकार स्पष्ट हो गया कि पर्वतों और समुद्रों को पार कर तेल किस प्रकार भारत में घर-घर पहुँचता है और लोगों को रोशनी और ईंधन प्रदान करता है ।

भारत में तेल की खोज

भारत में आजकल मुख्यतः डिगबोई में ही तेल निकाला जाता है । पिछले ५० वर्षों से यहाँ काम चालू है । इसके अलावा नहारकोटा (उत्तरी असम) में भी तेल भण्डार होने का पता चला है । इसके अलावा, पंजाब के ज्वालामुखी क्षेत्र में एक रूमानियन कम्पनी तेल की खोज कर रही है और उसने परीक्षण के तौर पर कुछ कुँए खोदने का कार्य प्रारम्भ भी कर दिया है । थार के विशाल रेतीले मरुस्थल के आर-पार पश्चिमी पाकिस्तान से लगे हुए ४०० मील लम्बे सीमान्त वाले जैसलमेर जिले में भी पर्याप्त मात्रा में तेल मिलने की बहुत अधिक सम्भावनाएँ हैं । भारत सरकार की ओर से आए हुए विशेषज्ञों ने इस जिले में जो सर्वेक्षण किया है, उससे रामगढ़, खुरवाला और देवा क्षेत्रों में पैट्रोल उपलब्ध होने की सम्भावनाएँ प्रकट हुई हैं । विदेशी विशेषज्ञों द्वारा वायुयान से चुम्बक यंत्रों की सहायता से किए गए सर्वेक्षण से भी इस बंजर और पथरीले प्रदेश में पैट्रोल होने का पता चला है । पंजाब में तेल की खोज का अभियान भाखड़ा योजना से भी बड़ा है । वस्तुतः यह एक ऐसा विशाल परीक्षण है जिसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता कि इसकी समाप्ति कब होगी । करीब दो वर्ष पूर्व यहाँ तेल की खोज करने का कार्य शुरू हुआ था । चालीस लाख रुपए खर्च करके रूमानिया से वे यन्त्र खरीदे गए हैं जो पर्वत का वक्ष फाड़कर १० हजार फुट नीचे तक छेद कर सकते हैं । प्रत्येक यन्त्र का बोझ ४५ टन है और वह ३०० टन तक बोझ उठा सकता है । सारे यन्त्रों का कुल बोझ १३०० टन है । इतने भारी यन्त्रों को इच्छित स्थान तक पहुँचाने के लिए पहले साढ़े चार मील लम्बी और काफी चौड़ी सड़क बनाई गई तथा योजना के अन्तर्गत कार्यरत कर्मचारियों

के लिए एक बस्ती भी बसाई गई है। खुदाई के स्थान पर ६ बड़े-बड़े इंजन लगाए गए हैं। प्रत्येक इंजन ३०० अश्वशक्ति का है। पानी और बिजली की भी विशेष व्यवस्था की गई है। अनुमान है कि आठ या नौ हजार फुट की गहराई पर तेल मिल जाएगा। पहली खुदाई पर ५० लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है। इसमें लगभग ८ माह लग जाएँगे। तदुपरान्त दूसरी खुदाई शुरू होगी। दूसरी खुदाई के लिए रूस से विशेष यन्त्र खरीदे गए हैं। यह खुदाई १५ हजार से १६ हजार फुट की गहराई तक जाएगी। तीसरी तथा चौथी खुदाई के लिए भी स्थान तय किया जा रहा है और पहली तथा दूसरी खुदाई के परिणामों को दृष्टि में रखकर ही अन्तिम निर्णय किया जाएगा। इन प्रयत्नों पर दृष्टिपात करने से यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि भारत सरकार तेल की खोज के लिए कितनी उत्सुक है।

पैट्रोलियम उद्योग की शुरुआत

भारत में पैट्रोलियम उद्योग की नींव डालने का श्रेय असम तेल कम्पनी को है। इस कम्पनी ने १८६६ में असम में तेल निकालने का कार्य शुरू किया था। १६२१ में बर्मा शेल कम्पनी ने यह कार्य अपने हाथों में ले लिया और तब से भारत में तेल निकालने, तेल साफ करने और उसका वितरण करने तक का समस्त कार्य यह कम्पनी ही करती रही है। बर्मा शेल कम्पनी ने अपना पहला तेल-शोधक कारखाना आज से ३५ वर्ष पूर्व स्थापित किया था। १६५४ में डिगबोई में तेल का उत्पादन १ लाख ८० हजार गैलन प्रतिदिन था। निकटवर्ती क्षेत्र में तेल के अन्य कुँओं का पता चलने से यह उत्पादन २ लाख ५० हजार गैलन प्रतिदिन तक पहुँच गया है।

तेल-शोधक कारखानों की स्थापना

भारत सरकार कई वर्षों से देश में तेल-शोधक कारखाने स्थापित करने के सम्बन्ध में विचार कर रही थी। यह स्पष्ट हो चुका था कि देश के अन्दर तेल इतनी मात्रा में नहीं निकाला जा सकता कि सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। तेल की खोज करने और इसका विकास करने के लिए काफी समय की आवश्यकता थी। १६४८ में देश में खनिज साधनों का जो व्यापक सर्वेक्षण किया गया, उससे यह पता चला है कि देश में तेल-शोधक कारखानों का निर्माण करना टैक्निकल दृष्टि से सम्भव और लाभप्रद है। इस सर्वेक्षण के परिणामों को दृष्टि में रखते हुए भारत सरकार ने स्टैण्डर्ड वैकुम आयल कम्पनी, एंग्लो सैम्सन आयल कम्पनी, बर्मा शेल कम्पनी तथा कालटेक्स कम्पनी के साथ तेल-शोधक कारखानों का निर्माण करने के सम्बन्ध में समझौते किए। ये सभी समझौते भारत सरकार की औद्योगिक नीति को दृष्टि में

रखकर ही किए गए हैं। उद्योग पर सरकारी नियंत्रण के सिद्धान्त को मान्यता देते हुए कम्पनियों को कारोबार चलाने की पूरी स्वतन्त्रता प्रदान की गई है।

विदेशी मुद्रा की बचत

उक्त कार्यक्रम के अनुसार इन कम्पनियों ने भारत में तीन तेल-शोधक कारखानों का निर्माण करने का निर्णय किया। इन तेल-शोधक कारखानों का निर्माण करने का निश्चय ऐसे समय किया गया, जब भारत की अर्थ-व्यवस्था के स्वरूप में बड़ी तेजी के साथ परिवर्तन हो रहा था और भारत के औद्योगिक विकास के लिए अधिकाधिक शक्ति और ईंधन की आवश्यकता थी। इस दृष्टि से इन तेल-शोधक कारखानों का बहुत महत्त्व है। एक अन्य दृष्टि से भी इनका निर्माण उपयोगी सिद्ध होगा। विदेशों से विशाल परिमाण में पैट्रोलियम और पैट्रोलियम-जनित वस्तुओं के आयात पर जो विदेशी मुद्रा आजकल व्यय की जाती है, उसका ३० प्रतिशत भाग अब बचाया जा सकेगा। इस विदेशी मुद्रा का इस्तेमाल अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए किया जा सकेगा।

स्टैण्डर्ड वैकुम का तेल-शोधक कारखाना

स्टैण्डर्ड वैकुम कम्पनी का विशाल तेल-शोधक कारखाना ट्राम्बे में बनकर तैयार हो गया है और इसने उत्पादन भी शुरू कर दिया है। यह कारखाना १७½ करोड़ रुपए की लागत से १८ माह में बनकर तैयार हुआ है। कारखाने का निर्माण २९ दिसम्बर १९५२ को शुरू हुआ था और १८ माह बाद अर्थात् अगस्त १९५४ में यह पूरी तरह बनकर तैयार हो गया। इस कारखाने को ७ हजार भारतीय मजदूरों ने १८ माह में तैयार किया। इस समय कारखाने में ६०० आदमी काम करते हैं। कारखाने का प्रतिदिन उत्पादन २५ हजार बैरल प्रतिदिन है। यह तेल-शोधक कारखाना प्रतिवर्ष ९ करोड़ गैलन पेट्रोल, ४ करोड़ गैलन मिट्टी का तेल, ५ करोड़ ९० लाख गैलन डिजेल तथा ५ करोड़ २० लाख टन औद्योगिक ईंधन तैयार करेगा।

प्रथम पंचवर्षीय योजना का उत्पादन-लक्ष्य

प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक पैट्रोलियम का उत्पादन ३७,५०० टन तक पहुँचा था। पर इस अवधि में कुल मिलाकर पैट्रोलियम उद्योग के विकास पर लगभग ६४.३ करोड़ रुपया खर्च किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक तेल-शोधक करने की क्षमता ३२ लाख टन प्रतिवर्ष तक पहुँच गई थी। ट्राम्बे स्थित बर्मा शेल कम्पनी का तेल-शोधक कारखाना भी बनकर तैयार हो गया है। इस तेल-शोधक कारखाने की उत्पादन-क्षमता २० लाख टन प्रतिवर्ष है। इसने भी जनवरी १९५५ में उत्पादन शुरू कर दिया है।

कालटेक्स का तेल-शोध कारखाना

विशाखापटनम में कालटेक्स कम्पनी के तेल-शोधक कारखाने का निर्माण कार्य भी लगभग पूरा हो गया है। यह तेल-शोधक कारखाना प्रतिवर्ष ६ लाख ७५ हजार टन तेल शोधने की क्षमता रखता है। इस कारखाने के निर्माण पर १२.५ करोड़ रु० व्यय हुए हैं। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार १९५७ में यहाँ तेल शोधन का कार्य शुरू हो जाने वाला था। इस सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि इन तीनों तेल-शोधक कारखानों में विदेशों से मँगाया गया तेल ही शोधा जाता है।

इसके साथ ही असम तेल कम्पनी ने तेल की खोज भी पूरे जोर-शोर से शुरू कर रखी है और १९५१-५५ के ५ वर्षों में इस खोज पर लगभग ५.६१ लाख रुपए खर्च हो चुके हैं। कम्पनी ने १९५४ में ५८.५ लाख रुपए खर्च करके एक और तेल-शोधक कारखाना खड़ा किया है। इस प्रकार उसकी कुल उत्पादन-क्षमता ९८ लाख गैलन प्रतिवर्ष तक पहुँच गई है।

तेल के उत्पादन में हुई वृद्धि

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में पेंट्रोलियम उत्पादन में जो वृद्धि हुई है उसका पता तेल-चुंगी के रूप में भारत सरकार को हुई आय से भली-भाँति चलता है—

कुल आय (करोड़ रुपयों में)

वर्ष	मोटर स्प्रिट	मिट्टी का तेल
१९५०-५१	२.१	०.२८
१९५१-५२	२.१	०.२६
१९५२-५३	२.०	०.२४
१९५३-५४	२.५	०.३३
१९५४-५५	६.९	०.६३
१९५५-५६	२४.३	२.५५

—प्रौद्योगिक विकास कार्यक्रम से उद्धृत

पूँजी

तीन तेल-शोधक कारखानों में प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में कुल ४२ करोड़ रुपए की पूँजी लगी है। डिगबोई को मिलाकर यह पूँजी ४५ करोड़ रुपए तक पहुँच जाती है। इसमें से लगभग १२ करोड़ रुपए भारत में एकत्र किए गए हैं।

विदेशों से आयात

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में भारत ने विदेशों से जितना पैट्रोलियम और पैट्रोलियम-जनित वस्तुओं का आयात किया, उसके आँकड़े इस प्रकार हैं—

१० लाख गैलनों में

	'५०-५१	'५१-५२	'५२-५३	'५३-५४	'५४-५५
१. मिट्टी का तेल	२२६.४	२५४.५	२६५.८	२९९.१	३१०.२
२. डिजेल तेल	१३४.४	१६२.३	१५६.७	१६६.६	१९४.८
३. अन्य ईंधन	१९८.२	२०५.८	१६१ ०	१९५.४	१५१.२
४. चिकनाई वाले तेल	४०.६	४८.६	६१.७	३७.९	५६.३
५. मोटर स्प्रिट (हवाई जहाजों मे प्रयोग होने वाला तेल भी)	१९३.५	२५१.४	२४३.४	२६९.६	२१३.५
६. अन्य प्रकार के तेल	०.७	४.३	४.९	२६९.६	१.३
कुल	७९६.८	२६.९५	८९३.५	९६८.६	९२७.३

—मेजर इण्डस्ट्रीज ऑफ इण्डिया से उद्धृत

देश में तेल की खपत

१९५०-५१ में देश में पैट्रोलियम की कुल खपत ८५ करोड़ गैलन थी और योजना की अवधि में इस खपत में ३० से ४० प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाने की आशा थी। मोटरों, ट्रैक्टरों तथा डिजेल इंजनों के अधिकाधिक उपयोग के कारण इस माँग में भविष्य में और भी अधिक वृद्धि होगी।

कृत्रिम पैट्रोल का निर्माण

निम्न कोटि के कोयले से कृत्रिम पैट्रोल बनाने की ओर भी सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ है। पिछले वर्षों में कई योजनाएँ बनाई गई, परन्तु कई कठिनाइयों और पूंजी तथा उचित टैक्निकल परामर्श के अभाव में उन पर अमल करना सम्भव न हो सका। इस बीच में कोयले से पैट्रोल तैयार करने की विधियों में अमेरिका और यूरोप के देशों में बहुत अधिक सुधार हो गए। अतः इस सम्बन्ध में नए सिरे से विचार करने के लिए सरकार ने १९५४ में एक समिति की स्थापना की। इस समिति की सिफारिशों के अनुसार, जून १९५५ में सरकार ने तीन विदेशी कम्पनियों को कृत्रिम

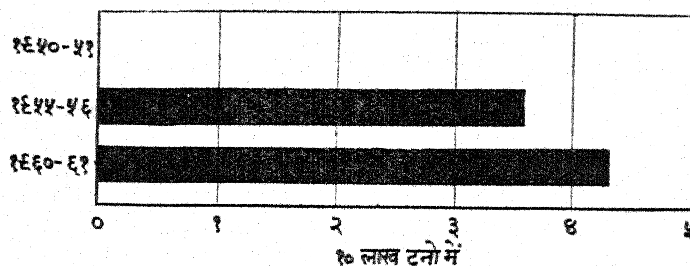
पेट्रोल तैयार करने के सम्बन्ध में योजना तैयार करने के लिए कहा। इसके साथ ही एक विशेषज्ञ समिति भी नियुक्त की गई और यह निश्चय किया गया कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में इस पर अमल किया जाए।

१९५५ में गैरसरकारी क्षेत्र से सौराष्ट्र में एक तेलशोध कारखाना स्थापित करने का प्रस्ताव सरकार के समक्ष आया। इसके अलावा स्टैण्डर्ड वैकूम कम्पनी पूर्वी भारत में भी एक तेलशोध कारखाना स्थापित करने के सम्बन्ध में विचार कर रही है। इस प्रस्तावित कारखाने में भारत सरकार को २५ प्रतिशत हिस्सा प्राप्त होगा। इस सम्बन्ध में तेल की खोज पर होने वाले व्यय का २५ प्रतिशत भाग सरकार वहन करने के लिए सहमत हो गई है।

द्वितीय पंचवर्षीय विकास योजना का उत्पादन-लक्ष्य

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में पैट्रोल तथा अन्य सभी प्रकार के तेलों की माँग में बहुत अधिक वृद्धि हो जाएगी। कृषि फार्मों, जहाजों और रेलों में डिजेल तेल का अधिकाधिक उपयोग होगा। यह अनुमान है कि १९६०-६१ तक पैट्रोलियम और पैट्रोलियम जनित वस्तुओं की माँग में ४५ प्रतिशत से लेकर ५० प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाएगी।

इस आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए तेल शोधन की वर्तमान क्षमता पर्याप्त नहीं है और इसमें और अधिक वृद्धि करनी पड़ेगी। अतएव और अधिक तेलशोधक कारखानों का निर्माण करना पड़ेगा। १९५७ में भारत की तेलशोधन क्षमता ४३ लाख टन तक पहुँच गई थी। फिर भी, अभी तक भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में कोई फैसला नहीं किया गया है। आजकल तेल के सम्बन्ध में कच्छ, पंजाब, राजस्थान और असम में जो खोज हो रही है उसके अन्तिम परिणामों का पता चलने पर ही इस सम्बन्ध में कोई अन्तिम निर्णय किया जा सकेगा।



१३

एल्यूमीनियम उद्योग

नभमंडल में विहार करने वाले विमानों, स्थल-मार्गों पर तीर की गति से दौड़ने वाले मोटरों, सागर के वृक्ष को चीर शान से चलने वाले विशालकाय पोतों, तरह-तरह की मशीनों और उपकरणों तथा गरीबों और अमीरों के रसोईघरों में प्रयोग होने वाले बर्तनों के निर्माण में इसका उपयोग होता है। इस धातु की खोज हुए अभी १०० वर्ष से अधिक समय व्यतीत नहीं हुआ है परन्तु इस अवधि में ही इसका उपयोग अनेकानेक महत्त्वपूर्ण उद्योगों में होने लगा है। इसका श्रेय इस धातु में निहित विलक्षण गुणों को है। प्रारम्भ में इस महत्त्वपूर्ण धातु का नाम श्री हम्फ्री डेविड ने 'अलूमियम' रखा था, जो आगे चलकर एल्यूमीनियम में परिवर्तित हो गया। डा० वामन गणेश देसाई ने अपने मराठी भारतीय रस-शास्त्र नामक ग्रन्थ में इसके लिए 'लघुरजत' शब्द का प्रयोग किया है, जो इस धातु के रंग और रूप को देखते हुए सर्वथा सार्थक प्रतीत होता है। एल्यूमीनियम आधुनिक समय में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण धातुओं में गिनी जाती है। इस धातु की विशेषता यह है कि यह बहुत मजबूत और टिकाऊ होते हुए भी बहुत हल्की होती है और इसमें आसानी से जंग नहीं लगता। इसका विशिष्ट घनत्व २.६ होता है। यह हल्की होने की वजह से वायु-यानों के निर्माण में विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुई है। बिजली के तार के लिए तो यह तांबे से भी अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। आधुनिक समय में संसार में एल्यू-मीनियम के बर्तन सबसे अधिक काम में आते हैं। इसकी चादर जहाजों के पैंदों में लगाई जाती है।

एल्यूमीनियम कैसे प्राप्त होती है

एल्यूमीनियम वैसे साधारण मिट्टी में भी रहती है परन्तु उसका निकालना बहुत कठिन है। इस वक्त यह ज्यादातर बाक्साइट नामक मिट्टी से निकाली जाती है। ऊँचे दर्जे के बाक्साइट में यह धातु ५५ फी सदी तक पाई जाती है। बाक्साइट को शुद्ध करके पिघले हुए क्रामोलाइट में मिलाते हैं और फिर उसे बिजली की भट्टियों में गलाया जाता है। इस क्रिया के परिणामस्वरूप एल्यूमीनियम नीचे बैठ जाती है और फिर वह निकाल ली जाती है।

एल्यूमीनियम का सबसे बड़ा देश

संयुक्त राज्य अमेरिका सब देशों से अधिक एल्यूमीनियम बनाता है। संसार में एल्यूमीनियम की उत्पत्ति का लगभग ४० प्रतिशत एल्यूमीनियम वहाँ तैयार होती

है। इस समय संसार में लगभग ३० लाख टन एल्यूमीनियम प्रतिवर्ष तैयार होती है। गत विश्वयुद्ध के पूर्व जर्मनी १२ प्रतिशत, कनाडा ११ प्रतिशत, फ्रांस ११ प्रतिशत, नार्वे १० प्रतिशत तथा स्विटजरलैंड ९ प्रतिशत एल्यूमीनियम तैयार करते थे इसके अतिरिक्त स्काटलैंड और इटली में भी कुछ एल्यूमीनियम तैयार होती थी।

भारत में एल्यूमीनियम का उत्पादन

भारतवर्ष में बहुत कम एल्यूमीनियम पैदा होती है। लगभग ५० लाख रुपये मूल्य की एल्यूमीनियम हर वर्ष विदेशों से मंगायी जाती है। गत विश्व युद्ध के समय भारतवर्ष में एल्यूमीनियम तैयार करने वाली दो फैक्टरियाँ खोली गई थीं। एक आसनसोल में और दूसरी ट्रावनकोर में, परन्तु अभी इन फैक्टरियों का समुचित ढंग से विकास नहीं हुआ है।

बिहार प्रान्त के रांची और पालामऊ नामक जिलों में तथा मध्यप्रदेश में बाक्साइट से एल्यूमीनियम निकालने के लिए सस्ती विद्युत शक्ति की आवश्यकता है। उड़ीसा में हीराकुंड बांध से जल-विद्युत उत्पन्न होने से बिहार में सस्ती बिजली प्राप्त करने की समस्या हल हो जाएगी। ट्रावनकोर में जल-विद्युत शक्ति की सुविधा के कारण यह सरलता से प्राप्त हो जाती है। एल्यूमीनियम का वर्तमान मूल्य १३०० रुपए प्रति टन है परन्तु उद्योग विशारदों का कथन है कि यदि एल्यूमीनियम भारत में तैयार होने लगे तो उस पर ८०० रु० टन से अधिक लागत नहीं बैठेगी। संक्षेप में, भारत में जैसे-जैसे विद्युत-शक्ति पर्याप्त मात्रा में और सस्ती दर पर सुलभ होती जाएगी एल्यू-मीनियम उद्योग के विकास में उतनी ही आसानी होगी, क्योंकि १ पौंड एल्यूमीनियम तैयार करने के लिए १० यूनिट विद्युत शक्ति की आवश्यकता होती है। भारत में बाक्साइट मिट्टी का विशाल भंडार है। यह अनुमान किया जाता है कि भारत में २५ करोड़ टन से भी अधिक बाक्साइट मिट्टी सुलभ है। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि सुलभ भंडार से लगातार १०० वर्षों तक हर वर्ष ५० हजार टन एल्यूमीनियम तैयार किया जा सकता है।

एल्यूमीनियम के प्रारम्भिक उत्पादक

भारत में एल्यूमीनियम और एल्यूमीनियम की वस्तुएँ तैयार करने का कार्य सर्वप्रथम इंडियन एल्यूमीनियम कम्पनी लिमिटेड ने प्रारम्भ किया। इस कम्पनी के मुख्य कार्य इस प्रकार थे—(१) बिहार के लोहारडगा क्षेत्र से बाक्साइट मिट्टी निकालना, (२) मरी (बिहार) स्थित एलुमिना कारखाने में इस मिट्टी को शुद्ध कर एलमिना धातु निकालना और तदुपरान्त विद्युत शक्ति की सहायता से एलुमिना को एल्यूमीनियम धातु में बदलना ; (३)वेलूट : (पश्चिमी बंगाल) स्थित कारखाने में इससे चादरें इत्यादि तैयार करना तथा कालवा (बम्बई) में एल्यूमीनियम का चूर्ण और पेस्ट तैयार करना।

इस कम्पनी ने १९४१ में वेलूर स्थित कारखाने में एल्यूमीनियम की चादरें इत्यादि तैयार करने का कार्य शुरू किया। यह सामग्री आयात किए गए एल्यूमीनियम से तैयार की जाती थी। १९४३ में कम्पनी ने एलुमिना आयात कर उससे एल्यूमीनियम तैयार करना भी शुरू कर दिया। १९४८ में इस कम्पनी ने बाक्साइट मिट्टी से देश में ही एलुमिना तैयार कर एल्यूमीनियम धातु बनाने की दिशा में पहल की। इसका कारखाना मरी (बिहार) में स्थित है। इसके अलावा इस कम्पनी ने बेलगाँव (बम्बई) और हीराकुँड क्षेत्र (उड़ीसा) में भी बाक्साइट मिट्टी निकालने के लिए सरकार से आवश्यक अनुमति प्राप्त कर रखी है।

एल्यूमीनियम कार्पोरेशन

इसके अलावा एल्यूमीनियम कार्पोरेशन नामक एक अन्य कम्पनी भी मैदान में उतरी है। यह कम्पनी भारतीय व्यवसायियों ने खड़ी की है। इसकी स्थापना १९३६ में ही हो गई थी। इस कार्पोरेशन की खानें बिहार और मध्यप्रदेश में स्थित हैं। कम्पनी के कारखाने की उत्पादन क्षमता ५ हजार टन प्रतिवर्ष है लेकिन अभी तक ३ हजार टन प्रतिवर्ष से अधिक एल्यूमीनियम यह नहीं तैयार कर सकी है। इन दोनों प्रमुख कम्पनियों के उत्पादन सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

उत्पादन क्षमता और पूँजी

	इंडियन एल्यूमीनियम कम्पनी लिमिटेड	एल्यूमीनियम कार्पोरेशन ऑव् इंडिया लिमिटेड
पूँजी	२ करोड़ रुपये	०.९ करोड़ रुपये
बाक्साइट मिट्टी निकालने की मंजूरी	८.५०००० टन	१००००० टन
एलुमिना तैयार करने वाले कारखाने की उत्पादन क्षमता (मौजूदा)	१०००० टन	५००० टन
भावी	४०००० टन	५००० टन
एल्यूमीनियम उत्पादन (मौजूदा) उत्पादन	८००० टन	२५०० टन
भावी उत्पादन	१५००० टन	२५०० टन

—मेजर इंडस्ट्रीज ऑफ इंडिया १९५६ से उद्धृत

प्रथम पंचवर्षीय योजना का उत्पादन लक्ष्य

प्रथम पंचवर्षीय योजना में एल्यूमीनियम उत्पादन का लक्ष्य ४ हजार टन प्रति वर्ष से बढ़ाकर २० हजार टन प्रतिवर्ष निर्धारित किया गया था। यह निश्चय किया गया था कि अलावे और आसनसोल स्थित कारखानों की उत्पादन-क्षमता में ५ हजार टन प्रतिवर्ष की वृद्धि की जाए तथा इंडियन एल्यूमीनियम कम्पनी हीराकुंड क्षेत्र में एक नया कारखाना स्थापित कर १० हजार टन बाक्साइट मिट्टी को शुद्ध करने की व्यवस्था करे। यह आशा थी कि हीराकुंड स्थित कारखाना तीन वर्षों के अन्दर २० हजार टन एलुमिना प्रतिवर्ष तैयार करने में समर्थ हो जाएगा। इन तीन वर्षों की अवधि में एल्यूमीनियम तैयार करने के लिए विदेशों से एलुमिना आयात करने की व्यवस्था की गई। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ काल में दोनों प्रमुख एल्यूमीनियम निर्माता कम्पनियों में हर वर्ष ३ हजार टन वजन की एल्यूमीनियम की चादरें तथा अन्य प्रकार की सामग्री तैयार की जाती थी। यह निश्चय किया गया कि पंचवर्षीय योजना की अवधि में इन कारखानों की उत्पादन-क्षमता में ५५०० टन की वृद्धि की जाए।

यह अनुमान लगाया गया था कि हीराकुंड स्थित कारखाना १९५६ के पूर्व काम शुरू नहीं कर सकेगा। इस सम्भावना को दृष्टि में रखकर १९५५-५६ में एल्यूमीनियम उत्पादन का लक्ष्य केवल १२ हजार टन प्रतिवर्ष ही रखा गया था।

जून, १९५४ तक इंडियन एल्यूमीनियम कम्पनी के उत्पादन को ५ हजार टन तथा वेलूर स्थित कारखाने के उत्पादन को ६ हजार टन प्रतिवर्ष तक पहुँचाने का लक्ष्य पूरा हो गया था। लेकिन विद्युत-शक्ति के अभाव के कारण बाक्साइट मिट्टी को पिघलाने वाला कारखाना अपना कार्य चालू नहीं कर सका था।

नया कारखाना खोलने की अनुमति

१९५३ में इंडियन एल्यूमीनियम कम्पनी को यह लाइसेंस प्रदान किया गया कि वह हीराकुंड क्षेत्र में १० हजार टन प्रतिवर्ष की उत्पादन-क्षमता वाला कारखाना स्थापित करे। निर्धारित योजना के अनुसार यह कारखाना १९५६ में उत्पादन कार्य शुरू कर देने वाला था। इस योजना के कार्यान्वित न होने के कारण प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में एल्यूमीनियम का उत्पादन केवल ७५०० टन प्रतिवर्ष तक ही पहुँच पाया था। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में उक्त दोनों प्रमुख कम्पनियों का वार्षिक उत्पादन इस प्रकार था—

(टनों में)

	इंडियन एल्यूमीनियम कम्पनी		एल्यूमीनियम कार्पो० ऑफ इंडिया	
	सामान्य एल्यू०	चादरें इत्यादि	सामान्य एल्यू०	चादरें इत्यादि
१९५१	२०८७	३७२१	१७६३	६७४
१९५२	२३५४	२०७२	१२१२	४६५
१९५३	१९८४	२०९७	११७५	८९७
१९५४	२९७१	४१३७	१९१५	११८७
१९५५	४८८४	५९७७	२३४१	१७६४

—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

आयात

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में भारत ने विदेशों से जितना एल्यूमीनियम आयात किया उसका विवरण इस प्रकार है—

	यूनिट	१९५१	५२	५३	५४	५५
एल्यूमीनियम का आयात	टन	१०३१४	७०८२	४८१७	१०४५१	१६१४६

देश में एल्यूमीनियम की खपत

यह आशा की गई थी कि प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में देश में प्रतिवर्ष लगभग २० हजार टन एल्यूमीनियम की माँग होगी । इसका एक प्रमुख कारण ए० सी० और एस० आर० तारों के उत्पादन में वृद्धि होना था । यह अनुमान लगाया गया था कि १९५५-५६ में लगभग २० हजार टन एल्यूमीनियम की आवश्यकता होगी । तटकर कमीशन ने भी अपनी १९५५ की रिपोर्ट में यह अनुमान प्रकट किया था कि देश को हर वर्ष लगभग २० हजार टन एल्यूमीनियम की आवश्यकता होगी ।

पूंजी

प्रारम्भ में यह अनुमान था कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान एल्यूमीनियम उद्योग के विकास पर लगभग ९ करोड़ रुपए खर्च किए जाएँगे लेकिन वास्तविक व्यय २.२५ करोड़ डालर ही हुआ । भारत के औद्योगिक वित्त कार्पोरेशन ने एल्यूमीनियम

कार्पोरेशन को ५० लाख रुपए का ऋण भी दिया है। सुलभ आँकड़ों के अनुसार एल्यूमीनियम उद्योग में इस समय ३५०० से अधिक व्यक्तियों को काम मिला हुआ है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस बात की सिफारिश की गई थी कि नए तेल-शोध कारखानों में वह पैट्रोलियम-मोम भी उत्पन्न किया जाए, जिसकी एल्यूमीनियम उद्योग में आवश्यकता पड़ती है लेकिन अभी तक इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया गया है।

भारतीय एल्यूमीनियम उद्योग को सरकार द्वारा संरक्षण भी प्रदान किया गया है। तटकर कमीशन की नवीन सिफारिशों के आधार पर संरक्षण की अवधि ३१ दिसम्बर, १९५८ तक बढ़ा दी गई थी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना और एल्यूमीनियम उद्योग

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आधारभूत और भारी उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया है। इसलिए यह निश्चितप्राय है कि एल्यूमीनियम की माँग में भी आशातीत वृद्धि होगी। तटकर कमीशन ने यह अनुमान लगाया है कि १९५८ में देश को लगभग ३५००० टन एल्यूमीनियम की आवश्यकता होगी। विभिन्न कार्यों के लिए आवश्यक एल्यूमीनियम का विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

(टनों में)

१. बिजली के तार बनाने के लिए	१३०००
२. बर्तनों और पोली वस्तुओं के लिए	८०००
३. औद्योगिक कार्यों में इस्तेमाल होने वाली चादरों इत्यादि के लिए	३५००
४. चूर्ण और पेस्ट के लिए	५००
५. विशेष भवन निर्माण के लिए	१०००
६. विशेष प्रकार के नलकों और बर्तनों के लिए	५००
७. जोड़ने के लिए : धातु :	५००
कुल योग	३०,००० टन

—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

इस बात की पूरी आशा है कि हीराकुंड स्थित कारखाना १९५८ तक उत्पादन-कार्य प्रारम्भ कर देगा तथा १९५९ तक एल्यूमीनियम कार्पोरेशन का विकास कार्यक्रम भी पूरा हो जाएगा। इस योजना के पूरे हो जाने पर कार्पोरेशन का

आसनसोल स्थित कारखाना प्रतिवर्ष ५ हजार टन एल्यूमीनियम तैयार करने लगेगा। यह अनुमान है कि इस अवधि में उक्त दोनों कम्पनियों की कुल पूंजी ११ करोड़ रुपए तक पहुँच जाएगी। उद्योग के विकास के लिए स्वीकृत योजनाओं के कार्यान्वित होने पर स्थिति इस प्रकार होगी—

	उत्पादन टनों में
१. इंडियन एल्यूमीनियम कम्पनी लिमिटेड हीराकुंड, अलावे	हीराकुंड १०००० अलावे ५०००
२. एल्यूमीनियम कार्पोरेशन औव् इंडिया, आसनसोल	५०००
कुल	२००००

विकास कार्यक्रम

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत एल्यूमीनियम उद्योग के विकास के लिए और अधिक विस्तृत कार्यक्रम तैयार किया गया है। इस कार्यक्रम के अनुसार द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में एल्यूमीनियम के उत्पादन में जो वृद्धि होगी उसके आँकड़े इस प्रकार हैं—

वर्ष	टन
१९५६-५७	७,५००
१९५७-५८	७,५००
१९५८-५९	१०,०००
१९५९-६०	१७,५००
१९६०-६१	२५,०००

—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

पूंजी और रोजगार की स्थिति

यह अनुमान है कि इस अवधि में एल्यूमीनियम उद्योग के विकास में २२ करोड़ रुपए की पूंजी और लगाई जाएगी। आशा की जाती है कि लगभग ३ हजार से लेकर ४ हजार और व्यक्तियों को इस उद्योग में रोजगार पर लगाया जा सकेगा।

१४

काँच उद्योग

काँच का निर्माण कब हुआ, कैसे हुआ, यह आज भी एक रहस्य बना हुआ है। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है और इसी आवश्यकता के फलस्वरूप काँच का आविष्कार हुआ होगा। यह तो सर्वविदित है कि सबसे पहले काँच का उपयोग नारी के साज-शृङ्गार की वस्तुएँ तैयार करने के लिए किया गया। प्राचीन काल से ही नारी जाति के शृङ्गार प्रसाधनों में दर्पण और चूड़ियों इत्यादि को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। सुन्दरी रमणी को प्राप्त करने के लिए सात समुन्दर पार कर किसी राक्षस का वध करने या कोई दुर्लभ-चीज ले आने की कहानियाँ तो आपने बचपन में बहुत पढ़ी होंगी। नारी के प्रेम भरे कटाक्ष के लिए आकाश के तारे तोड़ लाने की कहावत तो हर प्रेमी की जबान पर रहती है, फिर उनकी फरमाइश पर ऐसी वस्तु ढूँढ निकालना तो कोई दुःसाध्य कार्य नहीं था, जिसमें वह अपने रूप और सौन्दर्य की झलक स्वयं भी देख सके। शायद ऐसी ही किसी माँग के फल-स्वरूप काँच की खोज हुई हो। वैसे भारत में काँच और दर्पण का उल्लेख तो वैदिक काल से ही मिलता है। यजुर्वेद में काँच के गिलास को इच्छित स्थान से तोड़ने की बड़ी ही सुन्दर विधि बताई गई है। यदि विश्वास न हो तो आप भी परीक्षण कर देखिए। एक काँच का गिलास लीजिए और उसमें उस स्थान तक सरसों या तिल का तेल डालिए जहाँ से उसे तोड़ना हो। फिर एक लोहे की छड़ को लेकर आग में खूब गर्म करिए। जब छड़ दहकने लगे तो उसे निकालकर गिलास में पड़े हुए तेल में डुबो दीजिए और परिणाम को अपनी आँखों से देखिए। वैदिक काल के बाद भी नारी के शृङ्गार-प्रसाधनों के निर्माण के लिए काँच के उपयोग का विवरण बराबर मिलता है।

पूर्व इतिहास

महाभारत में आपने अवश्य ही यह कहानी पढ़ी होगी कि जब पाण्डवों के राजसूय यज्ञ का निमंत्रण पाकर दुर्योधन आदि कौरव इन्द्रप्रस्थ आए तो भीम उन्हें वह अनुपम राजप्रसाद दिखलाने के लिए ले गए, जिसकी रचना उस समय के महान् शिल्पी मय दानव ने श्रीकृष्ण के आदेश पर की थी। उस राजप्रसाद में दर्पणों को कई स्थानों पर इस कुशलता के साथ फिट किया गया था कि लोगों

को स्थल पर जल का और जल पर स्थल का भ्रम हो जाता था। दुर्योधन जब इसी प्रकार के एक स्थान पर पहुँचा और उसे वहाँ पर जल होने का आभास हुआ तो उसने अपने कपड़े समेट लिए। भीम ने हँसते हुए उसकी भूल का निराकरण किया। दूसरी बार दुर्योधन को एक अन्य स्थान पर जल के स्थान पर स्थल का भ्रम हो गया और परिणाम यह हुआ कि वह सब वस्त्रों समेत पानी में जा गिरा। एक स्थान पर दर्पण इस होशियारी से फिट किया गया था कि उसे दरवाजे का भ्रम हो गया, जिससे निकलने का प्रयत्न करते हुए उसने अपना माथा फोड़ लिया। यहीं पर द्रौपदी द्वारा किया गया कटु व्यंग्य दुर्योधन के हृदय में चुभ गया था और उसने पाण्डवों का मान-मर्दन करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था।

प्राचीन ग्रन्थों में काँच का उल्लेख

सारांश यह कि भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से काँच का निर्माण होता आया है। हिन्दुओं के अति प्राचीन ग्रन्थ यजुर्वेद में काँच के अलंकारों का वर्णन है। महाभारत में भी काँच का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। रसार्णक नामक वैद्यक ग्रन्थ में काँच-कूपी का वर्णन आया है। आइने-अकबरी में भी काँच का विवेचन है। भारत वर्ष की तरह कुछ अन्य देशों में भी प्राचीन काल से काँच का निर्माण होता आया है। प्राचीन खोतान राज्य के केनिया नामक नगर की खुदाई में काँच के बर्तन उपलब्ध हुए थे। उक्त नगर का अस्तित्व तीसरी शताब्दी में था। खोतान से चीन जाने की एक बड़ी सड़क इधर से गुजरती थी। चीनी लोग ५वीं सदी में काँच के निर्माण कार्य से पूरी तरह परिचित थे। प्राचीन इण्डो-सीथियन लोग भी काँच बनाने की कला से अवगत थे। मिश्र देश में ई० सन् से ३२०० वर्ष पूर्व काँच निर्माण होता था। इसका उल्लेख वहाँ के अति प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। काँच बनाने के लिए वे रेत और सोडे का उपयोग करते थे। ईसवी सन् से २ हजार वर्ष पूर्व की कब्रों में काँच के बर्तन प्राप्त हुए हैं। अबुल फजल ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ आइने-अकबरी में लिखा है कि उसके समय में बिहार, आगरा आदि कई स्थानों में काँच बनाया जाता था। बीजापुर राज्य में १६वीं सदी में बहुत ही बढ़िया काँच के पदार्थ बनाए जाते थे। वहाँ के राजमहल काँच की गुलाबदानियों और हण्डों से सुसज्जित थे। असिरियन लोग भी प्राचीन काल में बड़े सुन्दर और रंगीन काँच बनाते थे। रोम में ई० सन् ७० में काँच बनाए जाने का उल्लेख मिलता है। इतिहासवेत्ताओं का मत है कि काँच बनाने की कला रोम से यूरोप के अन्य देशों में फैली परन्तु इसका अधिक विकास मध्य युग में आस्ट्रिया के वेनिस नगर में हुआ। वहाँ बड़ा ही सुन्दर और उत्तम कोटि का काँच का सामान बनाया जाता था और उससे मन्दिरों और महलों को सुशोभित किया

जाता था। पर यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मध्य युग तक काँच-निर्माण का कार्य एक कला के रूप में माना जाता था। भारतवर्ष के कुछ प्राचीन राज प्रसादों में तथा मिश्र और रोम के मन्दिर मे सैकड़ों वर्ष पहले के बने हुए काँच अभी तक अपने असली रूप में दिखलाई देते हैं। इससे यह मालूम होता है कि किसी विशिष्ट क्रिया के द्वारा ऐसे काँच बनाए जा सकते हैं, जो वायुमंडल के प्रभाव से खराब न हों। आधुनिक विज्ञान-वेत्ता इस बात की खोज कर रहे है कि किन-किन तत्वों के सम्मेलन से ऐसे काँच का निर्माण हो सकता है, जिन पर वायुमंडल की नमी आदि का असर न हो। ईसा की मृत्यु से ३०६ वर्ष पूर्व श्रीलंका के शासकों की वंशावली 'महावंश' में दर्पणों के विशाल जलूस निकालने का दिलचस्प विवरण मिलता है। भारत में उच्च कोटि के दर्पण, चूड़ियाँ तथा शृङ्गार की तरह-तरह की वस्तुएँ तैयार करने का काम शुरू से ही होता आया है। उस समय जब भारत मे काँच का उपयोग विभिन्न प्रकार के दर्पण और शृंगार वस्तुएँ तैयार करने के लिए होता था, पश्चिमी देशों को उसके अस्तित्व का ज्ञान भी न था। भारत में निर्मित दर्पण और काँच की अन्य सामग्री विदेशों को पर्याप्त परिमाण में निर्यात की जाती थी। मुगल शासन-काल और इससे पूर्व भी बिल्लौरी काँच अपनी मजबूती और उत्कृष्ट कोटि के लिए प्रख्यात था। आगरे के लालकिले की एक बारादरी में दीवार पर लगा हुआ दर्पण का एक छोटा-सा टुकड़ा, वहाँ जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आकर्षित करता है। यह दर्पण इतनी होशियारी और दक्षता से बैठाया गया है कि किले से बहुत दूर पर स्थित ताजमहल की पूरी छाया उसमें देखी जा सकती है। प्रसिद्धि यह है कि मुगल सम्राट् शाहजहाँ अपने बन्दी जीवन में इस दर्पण के टुकड़े में अपनी प्रेयसी पत्नी के रौजे को देखा करता था। परन्तु यह शायद कोई नहीं जानता था कि आगे चलकर काँच मानव सभ्यता, विज्ञान और संस्कृति के विकास के लिए इतना अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाएगा। आज तो बड़े-बड़े नगरों में बिजली की तेज रोशनी में जगमगाती हुई काँच की सुन्दर वस्तुएँ देखकर आँखें चकाचौंध हो जाती हैं और लगभग सभी घरों में दर्पण के अतिरिक्त काँच की बहुत-सी वस्तुएँ अवश्य ही देखी जा सकती हैं।

काँच की खोज किस प्रकार हुई

भारत में काँच की खोज किस प्रकार हुई, इसका कोई अधिकृत विवरण सुलभ नहीं परन्तु यूरोपादि पश्चिमी देशों में इसका पता कैसे चला, इसका एक बहुत ही दिलचस्प विवरण हमें सुलभ हुआ है। रोमन इतिहासज्ञ प्लिनी के कथनानुसार ईसा से लगभग ५ हजार वर्ष पहले, फीनिशिया के मल्लाहों का एक दल तूफान के

कारण भूमध्यसागर के किसी अज्ञात तट पर पहुँचा तो उसे खाना पकाने की पतीली के नीचे रखने के लिए पत्थरों की आवश्यकता पड़ी। उनमें से एक मल्लाह ने यह सुझाव दिया कि पतीली को जहाज में पड़े सोडे के टुकड़ों पर रख दिया जाए। उन्होंने वैसा ही किया और आग जलाने के बाद वे यह देखकर चकित रह गए कि चूल्हे से एक तरल पदार्थ बाहर निकल रहा है। ताप से रेत और सोडा आपस में मिल गए थे। यहीं से कांच तैयार करने की कहानी शुरू होती है। हमारे जीवन में कांच-उद्योग का महत्त्व बहुत बढ़ गया है और हमारे दैनिक जीवन में इसका उपयोग निरन्तर बढ़ रहा है। वाइजेन्टाइन के कारीगरों ने १०वीं शताब्दी में जब खिड़कियों में इस्तेमाल करने के लिए कांच तैयार किया था, तब वे यह समझते थे कि उन्होंने कांच उद्योग में चोटी की प्रगति कर ली है, लेकिन उन्हें इस सम्भावना का ज्ञान नहीं था कि किसी दिन इससे गाँठें बाँधी जाएँगी, कपड़ा या रेशम तैयार किया जाएगा, इसे जोड़ा या चीरा जा सकेगा या कील की तरह गाड़ा या रबड़ की तरह मोड़ा या तैराया जा सकेगा।

कांच के कई तरह के इस्तेमाल करने और उससे कई तरह के लाभ उठाने का श्रेय केवल अनुसन्धान-कार्य को ही प्राप्त है। अन्य बहुत से उद्योगों की तरह कांच-उद्योग में जिस साहस एवं स्वतन्त्रता से परीक्षणों पर धन व्यय किया जाता है, उसी के कारण इसने आश्चर्यजनक उन्नति की है।

कांच उद्योग का विकास

कांच उद्योग के विकास में १५वीं शताब्दी का भी विशेष स्थान है। अन्य कई प्रकार की वस्तुओं का निर्माण होने के अलावा इसी शताब्दी में दूरबीन और चश्मों का कांच तैयार करने की कला का विकास हुआ था। ईसवी सन् ६१० में गेलोलियो और ई० सन् ६११ में केपलर ने सबसे पहले दूरबीन का आविष्कार किया पर उनमें कुछ कमी रह गई। ई० सन् १७५८ में गोलण्ड नामक एक विज्ञानवेत्ता ने दूरबीन और लेन्सों में काफी सुधार किया। १९वीं सदी में फ्राडनहोयर, फेरेडे हरकोर्ट, स्टोक्स, एबे, स्काट आदि महान् विज्ञानवेत्ताओं ने अनेक वैज्ञानिक अन्वेषण कर इस कला को बहुत कुछ विकसित किया। २०वीं सदी में कांच-निर्माण विज्ञान ने और भी अधिक उन्नति की। मिस्टर डब्ल्यू० ए० स्टोन ने कांच के निर्माण में काम आने वाली रेती के सम्बन्ध में कई मार्के के अन्वेषण किए और तब से इस उद्योग का सितारा चमकने लगा। ईसवी सन् १९१४ से लगाकर १९१८ तक सर हर्बर्ट नामक विज्ञान-वेत्ता ने रासायनिक दृष्टि से इस उद्योग में एक नए युग का प्रारम्भ किया। इस समय

शेफील्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डब्ल्यू० डी० एस० टर्नर और उनके कुछ सहकारियों ने इस उद्योग को काफी प्रगति दी। इसके बाद चैकोस्लोवाकिया, जर्मनी और अमेरिका में काँच-निर्माण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण अन्वेषण हुए और ऐसे यन्त्र तैयार किए गए, जिनकी सहायता से ऐसा काँच तैयार किया जा सका जिस पर वायुमंडल की नमी का कम-से-कम असर हो।

काँच बनाने की विधि

साधारण काँच बालू रेत, क्षार और चूने के मिश्रण से बनाया जाता है। इन तीनों चीजों का अनुपात क्रमशः १०, ५ और २ रहता है। बालू रेत इन तीनों चीजों में मुख्य है और यह कई प्रकार के काँच बनाने में काम में लाई जाती है। काँच बनाने में रंग उड़ाने वाले द्रव्य भी मिलाए जाते हैं। ऊपर लिखे हुए कच्चे माल को पहले पीस लिया जाता है, फिर उपरोक्त अनुपात से मिला लिया जाता है। इस मिश्रण को बाद में धातु गलाने के पात्र में रख भट्टी में गरम किया जाता है जिससे उपरोक्त सब वस्तुओं का मिश्रण पिघलकर एक हो जाता है। इस सारी क्रिया के पूर्ण होने में लगभग १२ घण्टे लगते हैं। इस बीच में उस गरम होते हुए मिश्रण से बहुत सी गैसें निकलती हैं और कुछ मैल ऊपर आता है, जिसे समय-समय पर हटाते रहना चाहिए। जब सब मैल साफ हो जाता है और गैस का निकलना बन्द हो जाता है तब उक्त पदार्थों के पिघले हुए मिश्रण को ठंडा होने देना चाहिए। इसके बाद मिश्रण किसी भी रूप में परिणत किया जा सकता है और उसका काँच बनाया जा सकता है। इसके बाद मशीनों द्वारा दबाया जाकर उस पर पालिश कर दी जाती है। यह तो सामान्य विधि है परन्तु वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप इसमें क्रान्तिकारी सुधार हो गए हैं और यह आशा है कि इस दिशा में जारी अनुसन्धान कार्यों के फलस्वरूप काँच-निर्माण के क्षेत्र में इतनी अधिक प्रगति की जा सकेगी, जिसका १०० वर्ष पूर्व किसी को स्वप्न में भी ख्याल न आया होगा।

१८७९ का महत्त्वपूर्ण वर्ष

आधुनिक काँच-उद्योग के विकास में १८७९ का वर्ष बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण था। इस वर्ष अमेरिका की कॉर्निंग कम्पनी ने टॉमस ए० एडिसन के लिए बिजली के बल्ब का खोल तैयार किया था। आगामी तीस वर्षों में काँच को वाणिज्य एवं उद्योग के कई क्षेत्रों रसोई के बर्तनों, प्रयोगशालाओं, औषधि तैयार करने के पात्रों, ताप अवरोधक काँच और दूरवीक्षण यन्त्रों के शीशे तैयार करने के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा।

काँच को व्यापक तौर पर इस्तेमाल करने का श्रेय केवल नई विधियों को ही प्राप्त नहीं है अपितु मशीनों को भी प्राप्त है। इनकी सहायता से ही बड़े पैमाने पर काँच से तरह-तरह की वस्तुओं का निर्माण करना सम्भव हो सका है। यद्यपि १८७६ में एडिसन के बिजली के बल्व का आविष्कार हुआ था, फिर भी संसार के अधिकांश भागों में मिट्टी के तेल को ही प्रकाश के लिए इस्तेमाल किया जाता था। २०वीं शताब्दी के शुरू में जैसे ही लोगों में बिजली का प्रचलन बढ़ा, काँच के बल्वों की माँग इतनी बढ़ गई कि उन्हें हाथ से तैयार करना सम्भव नहीं रहा।

बल्वों का निर्माण

१६१६ में काँच के बल्वों को हाथ से तैयार करने के तरीके का स्थान धीरे-धीरे अर्धस्वचालित मशीनों ने ग्रहण कर लिया। १६२६ तक उन्नति करते-करते कम दाम और बड़ी मात्रा में बल्वों के उत्पादन का काम शुरू हो गया। आज मशीन द्वारा १ मिनट में १००० बल्व बनाए जाते हैं, पहले इसे दो कुशल कारीगर, दो दिन लगातार ८ घंटे काम करने के बाद ही इन्हें तैयार कर सकते थे।

विज्ञान में काँच का उपयोग

काँच ने विभिन्न और महत्त्वपूर्ण तरीकों से आधुनिक विज्ञान एवं टैक्नोलाजी के विकास कार्य में तेजी ला दी है। सभी औद्योगिक प्रयोगशालाओं में काँच को महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। काँच के बिना चिकित्सा-विज्ञान को बहुत बड़ी बाधा का सामना करने की सम्भावना थी। टीका लगाने की पिचकारी या निदान सम्बन्धी यन्त्रों और अन्य उपचारों में काँच का किसी न किसी रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

संचार-वहन के हर आधुनिक साधन में काँच किसी न किसी रूप में इस्तेमाल होता है। विद्युदणु (इलैक्ट्रौनिकस) उद्योग काँच पर ही आधारित है। रेडियो, टैलिविजन, टैलिफोन, टैलिग्राफ तथा इस तरह के अन्य उपयोगी यन्त्र काँच की सहायता के बिना कभी भी इतनी दक्षता से काम नहीं कर सकते थे।

भारतीय उद्योग प्रदर्शनी में काँच का पुरुष

अक्तूबर, १६५५ में नई दिल्ली में आयोजित भारतीय उद्योग प्रदर्शनी में जर्मन जनतन्त्र की ओर से काँच से बनी एक निराली वस्तु प्रदर्शित की गई थी। यह चीज थी पूरे आकार का काँच का आदमी जो हिन्दी, बंगला और मराठी भाषाओं में बोलकर मानव-विज्ञान समझाता था। यह आदमी जब जिस अंग का वर्णन करता

था, उस समय उस हिस्से में बिजली का प्रकाश होता था, जिससे मानव-शरीर के भीतरी अंग ठीक तरह से दिखाई पड़ सकें। यह काँच का आदमी चारों ओर मुड़ भी सकता था। इस काँच के आदमी के अन्दर ६ वोल्ट के लगभग ४० बल्ब लगे थे जो उसके इशारे पर जलते और बुझते थे। काँच के आदमी की तरह काँच की औरत भी प्रदर्शित की गई थी जो कद में पुरुष से छोटी थी। उसमें स्त्री के सभी गुप्तांगों को दिखाया गया था। इस आश्चर्यजनक पुरुष और स्त्री का निर्माण जर्मनी के ड्रेसडन नगर के हाइजिन म्यूजियम ने किया था।

अमेरिका में ऐम्पायर स्टेट बिल्डिंग संसार की सबसे ऊँची ईमारत मानी जाती है और उसकी गणना संसार की महानतम आश्चर्यजनक वस्तुओं में की जाती है। लेकिन अब इससे भी अधिक आश्चर्यजनक भवन बनाने की बात सुनने में आई है। पता चला है कि अमेरिका में एम्पायर स्टेट बिल्डिंग से अधिक ऊँची एक इमारत बनाई जाएगी और उसमें अधिकतर काँच को ही इस्तेमाल किया जाएगा। अनुसन्धान द्वारा काँच के अनेकानेक उपयोगों का पता लगाने की दिशा में अमेरिका की कोर्निंग कम्पनी ने उल्लेखनीय योग दिया है। इस कम्पनी ने नए-नए किस्म के काँच तैयार करने के ५० हजार से अधिक गुर तैयार किए हैं। यह कम्पनी कार्क से भी हल्का, लोहे से भी भारी, अण्डे के खोल जितना कमजोर, रूई जितना मुलायम तथा इस्पात जितना मजबूत और हीरे जैसा सख्त काँच तैयार करती है। इस कम्पनी में अत्यधिक गर्मी और अत्यधिक तेज क्षार को सहन करने वाला तथा एक्स-रे इत्यादि शक्तिशाली विद्युत किरणों को सोख लेने वाला काँच भी तैयार होता है।

संसार के काँच निर्माता कई सदियों से निर्दोष पारदर्शक काँच तैयार करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। वे एक ऐसा रंगहीन काँच तैयार करना चाहते हैं, जिसमें स्वाभाविक काँच जैसी चमक हो। उक्त कम्पनी ने इस प्रकार का निर्दोष पारदर्शक काँच तैयार करने में सफलता प्राप्त कर ली है। १९५५ में भारतीय उद्योग मेला समाप्त होने पर उक्त कम्पनी की ओर से इस प्रकार के काँच का एक सुन्दर प्याला भारत सरकार को भेंट किया गया था।

भारत में आधुनिक काँच उद्योग की शुरुआत

भारत में आधुनिक काँच उद्योग की शुरुआत सर्वप्रथम १८८२ में हुई थी। इस वर्ष झेलम (पंजाब) में एक जर्मन विशेषज्ञ की सहायता से मरे ब्रेवर नामक एक कम्पनी द्वारा काँच की बोतलें तैयार करने का एक कारखाना स्थापित किया गया। लेकिन बोतलें तैयार करने पर इतनी अधिक लागत आई कि कम्पनी को चलाना

कठिन हो गया। हारकर यह कम्पनी बंद कर दी गई। भारतीय व्यवसायियों द्वारा काँच और काँच की वस्तुएँ तैयार करने का सवप्रथम कारखाना टीटागढ़ में एक आस्ट्रियन विशेषज्ञ की सहायता से स्थापित किया गया, लेकिन टैक्निकल विशेषज्ञों के अभाव में १० वर्ष बाद यह कम्पनी भी बन्द कर देनी पड़ी। इसके बाद बहजोई, तालगाँव और अम्बाला में आधुनिक ढंग पर काँच और काँच की वस्तुएँ तैयार करने के कारखाने स्थापित करने के प्रयत्न किए गए परन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिली। लेकिन कुछेक फर्मों ने जापानी विशेषज्ञों की सहायता से काँच तैयार करने की अधिक सरल और सस्ती विधियाँ खोज निकाली। यद्यपि भारतीय फर्मों को विदेशी काँच-निर्माता फर्मों से बड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी, फिर भी प्रथम महायुद्ध तथा स्वदेशी आन्दोलन से कांच उद्योग के विकास में बहुत सहायता मिली। प्रथम महायुद्ध के दौरान अन्य बहुत-सी वस्तुओं के साथ कांच की वस्तुओं का आयात भी लगभग बन्द हो गया था, जिससे भारतीय व्यवसायियों को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में बहुत सहायता मिली। १६०६ में काँच उद्योग से सम्बन्धित भारतीय व्यवसायियों के प्रयत्नों से काँच-निर्माण की नवीनतम विधियों का प्रशिक्षण देने के लिए तालगाँव में 'पैसा फंड ग्लास वर्क्स' प्रशिक्षण-केन्द्र की स्थापना हुई। इस प्रशिक्षण-केन्द्र में प्रशिक्षण-कार्यक्रमों की व्यवस्था श्री ए० आई० वार्ष्णेय नामक एक भारतीय वैज्ञानिक ने जापानी ढंग पर की। इस प्रशिक्षण केन्द्र से प्रशिक्षण प्राप्त करके निकलने वाले बहुत से व्यक्ति आज देश के विभिन्न भागों में स्थित काँच फैक्टरियों का संचालन कर रहे हैं। लेकिन प्रथम महायुद्ध के समाप्त होते ही भारतीग काँच-उद्योग को विदेशी काँच उद्योग से कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी। विवश होकर भारतीय काँच निर्माताओं ने १६२७ में भारत सरकार से संरक्षण की माँग की। सरकार ने इस दिशा में कई वर्षों तक कोई कदम नहीं उठाया। अन्त में १६३१ में तटकर कमीशन को काँच-उद्योग की स्थिति का अध्ययन करने का कार्य सौंपा गया। तटकर बोर्ड ने उद्योग को संरक्षण देने की सिफारिश करते हुए यह भी सुझाव दिया कि कांच-टैक्नोलॉजी में अनुसन्धान और प्रशिक्षण के लिए विशेष व्यवस्था की जाए ताकि देश में व्यवस्थित ढंग पर कांच-उद्योग का विकास सुदृढ़ आधार पर हो सके। लेकिन सरकार ने तटकर बोर्ड की अधिकांश सिफारिशों को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि देश में कांच निर्माण में प्रमुख रूप से इस्तेमाल होने वाला रासायनिक पदार्थ सोडा ऐश सुलभ नहीं है। सरकार की ओर से प्रोत्साहन और संरक्षण न मिलने के बावजूद देश में कांच उद्योग का विकास होता रहा और कई नई फर्में खोली गईं। प्रथम महायुद्ध के समय कांच और कांच की वस्तुएँ तैयार करने वाली फैक्टरियों की कुल संख्या २० थी, लेकिन वह १६३१ में बढ़कर ५६ तथा १६३६ में ८० हो गई।

द्वितीय महायुद्ध और काँच उद्योग

१९३९ में द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने पर काँच उद्योग के विकास को पुन: प्रोत्साहन मिला। एक ओर तो काँच की वस्तुओं का आयात घट गया तथा दूसरी ओर देश में प्रतिरक्षा सम्बन्धी कार्य के लिए काँच की माँग में अत्यधिक वृद्धि हुई। इस अवधि में भारत की काँच फैक्टरियों ने ऐसी वस्तुएँ भी तैयार करना शुरू किया, जिनका आयात विदेशों से किया जाता था। इसी दौरान में कुछ फैक्टरियों ने स्वचालित मशीनों का इस्तेमाल शुरू किया तथा उत्पादन विधियों में कई अन्य महत्वपूर्ण सुधार भी किए। १९३९ में काँच फैक्टरियों की संख्या ९० से बढ़कर १७४ तक पहुँच गई थी। १९३९ में केवल ४३,००० टन वजन का काँच और काँच की वस्तुएँ तैयार की गई थीं, जबकि १९४५ में १ लाख १० हजार टन वजन की काँच-सामग्री का निर्माण हुआ। १९५२-५३ में काँच फैक्टरियों की संख्या २२७ थी। इनमें से ९३ चूड़ियाँ तैयार करने वाली फैक्टरियाँ थीं। विभिन्न प्रान्तों में काँच-निर्माता फैक्टरियों की संख्या इस प्रकार थी—

काँच फैक्टरियों की संख्या

	काँच की वस्तुएँ तैयार करने वाली कम्पनियाँ	चूड़ियाँ इत्यादि तैयार करने वाली कम्पनियाँ	कुल कम्पनियाँ
उत्तर प्रदेश	२४	९०	११४
पश्चिमी बंगाल	३४	—	३४
बिहार	८	—	८
उड़ीसा	१	—	१
मध्यप्रदेश	६	—	६
बम्बई	३२	—	३२
मद्रास	४	३	७
दिल्ली	३	—	३
पंजाब	७	—	७
अन्य प्रदेश	१२	—	१२
	१३१	९३	२२४

—इंडियन इयर बुक, १९५३, से उद्धृत

काँच और काँच की वस्तुओं का उत्पादन

योजना आयोग ने यह अनुमान लगाया था कि १९५५-५६ तक देश को प्रति वर्ष लगभग १,६८,५०० टन काँच और काँच से बनी वस्तुओं (चूड़ियों को छोड़कर) की आवश्यकता होगी। यह अनुमान था कि इसमें से लगभग १५ हजार टन माल विदेशों को निर्यात किया जा सकेगा। साथ ही, यह भी अनुमान लगाया गया था कि प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक काँच की वस्तुओं का आयात भी काफी घट जाएगा। १९५०-५१ में प्रतिवर्ष ५७ लाख रुपए मूल्य की सामग्री का आयात किया जाता था। यह अनुमान लगाया गया था कि योजना के कार्यान्वित होने पर प्रतिवर्ष विदेशों से अधिक से अधिक २० लाख रुपए मूल्य की काँच की वस्तुओं का आयात किया जायगा। प्रथम पंचवर्षीय योजना में निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार १९५५-५६ तक प्रतिवर्ष २ लाख ९० हजार टन काँच-सामग्री तथा १६ हजार टन चूड़ियों का उत्पादन लक्ष्य निर्धारित किया गया था। १९५० के उपरान्त देश में काँच और काँच से बनने वाली वस्तुओं के प्रतिवर्ष उत्पादन का विवरण इस प्रकार है—

	१९५०	१९५१	१९५२	१९५३	१९५४	१९५५
१. काँच की बोतलें (टनों में)	५१८५०	५०६४०	५०२२०	४०७५०	४७८४०	५५२७०
२. सामान्य काँच (टनों में)	५१००	५८००	४७८०	११९९०	१७९५०	२०५४०
३. काँच के वर्तन और दैनिक व्यवहार में आने वाली काँच की अन्य सामग्री (टनों में)	१२९५०	१५३४०	१७९२०	१७६२०	२२०५०	२५४६०
४. लैम्प की काँच-निर्मित सामग्री	१३१५०	१६३४०	१५५८०	१२४००	१२६६०	१६६९०
५. वैज्ञानिक उपकरण	२१४०	२०००	१५००	१३२०	१५१०	२५००
६. लैम्पों की खोलें	—	६२०	७४०	७५०	१०००	११६०

	१९५०	१९५१	१९५२	१९५३	१९५४	१९५५
७. थर्मस फ्लास्क (दर्जनों में)	—	४५९०१ ३३० टन	१५३०० १०० टन	४०२०० २६० टन	२५००० १८० टन	४३७०० ३१५ टन
८. काँच की अन्य प्रकार की सामग्री (टनों में)	१९९०	२०८०	१२३०	९६०	२४५०	२२३०
कुल योग टनों में	८७१८०	९३१५०	९२६८०	८६०८०	१०५६४०	१२४२०५

—औद्योगिक विकास कार्यक्रम से उद्धृत

विदेशों से काँच की वस्तुओं का आयात

उक्त आँकड़ों से पता चलता है कि पिछले वर्षों की तुलना में १९५५ में देश के काँच उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है, लेकिन योजना में निर्धारित उत्पादन-लक्ष्य पूरा कर पाना फिर भी सम्भव नहीं हो पाया है। १९५२-५३ में देश के कारोबार में आने वाली सामान्य मन्दी का प्रभाव काँच उद्योग पर भी पड़ा था। इस अवधि में देश में काँच से तरह-तरह के वैज्ञानिक उपकरण, थर्मस फ्लास्क, नलियाँ तथा इसी प्रकार की अन्य सूक्ष्म सामग्री तैयार करने की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया। चश्मों के शीशे तैयार करने के सम्बन्ध में भी व्यापक परीक्षण किए गए तथा कलकत्ता स्थित 'सेन्ट्रल ग्लास एंड सेरेमिक रिसर्च इंस्टिट्यूट' इस दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील है। १९५०-५१ के बाद से देश में जितने मूल्य का काँच और काँच की वस्तुओं का आयात किया गया, उसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

मूल्य लाख रुपए में

	१९५०-५१	१९५१-५२	१९५२-५३	१९५३-५४	१९५४-५५
१. काँच	३०.७३	१४३.४३	५७.४७	६८.३२	६६.५४
१. बोतलें	११.०६	११.२८	१२.००	१९.४७	१३.२१
३. झूठे मोती	१.१८	१४.६५	१२.४२	२.८८	७.०२

	१९५०-५१	१९५१-५२	१९५२-५३	१९५३-५४	१९५४-५५
४. वैज्ञानिक उपकरण	२.०१	५.००	४.८७	१.८१	४.०८
५. लैम्प इत्यादि की सामग्री	०.१४	२.७२	३.८०	३.०५	२.७०
६. कांच के बर्तन	०.२०	०.२७	१.३७	५.१६	५.३१
७. थर्मस फलास्क	—	—	११	११.१८	१०.८६
८. कांच की अन्य वस्तुएँ	१२.८	३७.३८	३७.०९	२४.४०	२८.३७
कुल	५८.२०	२१४.७३	१२९.०२	१३६.२७	१३८.९६

—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

खपत

भारत सरकार के वाणिज्य और उद्योग मन्त्रालय से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, १९५५-५६ में विभिन्न प्रकार के काँच और कांच की वस्तुओं की माँग १ लाख ३५ हजार ५ सौ टन से अधिक नहीं थी। इसमें सभी प्रकार की काँच की वस्तुएँ शामिल थीं। इस अवधि में भारतीय काँच उद्योग ने अपनी वस्तुओं की कोटि में काफी सुधार किए और उत्तम कोटि की काँच-सामग्री तैयार करने के लिए कई नए कारखाने भी स्थापित किए गए। लेकिन, फिर भी वस्तुओं की कोटि और उत्पादन-विधियों में सुधार करने की बहुत अधिक आवश्यकता है।

यान्त्रीकरण की आवश्यकता

काँच-सामग्री के उत्पादन में वृद्धि करने और वस्तुओं की कोटि में सुधार करने के उद्देश्य से काँच उद्योग का यान्त्रीकरण करने पर विशेष जोर दिया जा रहा है। यह विश्वास किया जाता है कि आधुनिक मशीनों का अधिकाधिक संख्या में प्रयोग करके इन दोनों ही दिशाओं में महत्त्वपूर्ण प्रगति की जा सकती है। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में तीन प्रमुख फैक्टरियों ने अपने यहाँ कुछ प्रकार की काँच-सामग्री

तैयार करने के लिए स्वचालित मशीनें लगाई हैं तथा तीन और कारखानों में शीघ्र ही नवीनतम उत्पादन विधियों और मशीनों का इस्तेमाल होने लगेगा। इसके अतिरिक्त, कलकत्ता स्थित 'केन्द्रीय कांच अनुसन्धान संस्थान' कांच और कांच की वस्तुओं की कोटि में सुधार करने के लिए प्रयत्नशील है। इस संस्थान की स्थापना १९५० में हुई थी। पिछले ५ वर्षों में इसने कांच अनुसन्धान के क्षेत्र में कुछ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त की हैं। इसके अलावा, कांच उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए भारत सरकार ने भारतीय कांच-निर्माताओं द्वारा तैयार की जाने वाली कुछ विशेष प्रकार की कांच-सामग्री को तटकर संरक्षण प्रदान किया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में भारत में कांच-सामग्री की कोटि और उत्पादन में ही सुधार नहीं हुआ है, बल्कि निर्यात में भी सामान्य वृद्धि हुई है। भारतीय उद्योग मन्त्रालय से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, पिछले ६ वर्षों में भारत ने विदेशों को जितने मूल्य की कांच-सामग्री निर्यात की, उसके आंकड़े इस प्रकार हैं—

	मूल्य लाख रुपयों में
१९५०-५१	२७.४५
१९५१-५२	४१.५३
१९५२-५३	३१.६८
१९५३-५४	२६.६७
१९५४-५५	२४.४५
१९५५-५६ (अप्रैल से जनवरी तक)	३३.८९

—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट, १९५६, से उद्धृत

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

यह अनुमान है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक देश में कांच और कांच से निर्मित विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की माँग २ लाख ९ सौ टन प्रतिवर्ष तक पहुँच जाएगी। इस आवश्यकता को दृष्टि में रखकर द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में कई फैक्टरियों के उत्पादन में वृद्धि करने के साथ-साथ कुछ नई फैक्टरियाँ स्थापित करने का भी फैसला किया गया है। यह निश्चय किया गया है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि पूरी होते-होते देश में प्रतिवर्ष ३ लाख ३८ हजार टन कांच और कांच की वस्तुओं का उत्पादन होने लगा। विदेशी कांच-निर्माताओं से

प्रतिस्पर्धा न कर पाने के कारण भारत के काँच-निर्यात व्यापार को इधर ठेस पहुँची है। १९५१-५२ में भारत ने विदेशों को ४२ लाख रुपए मूल्य की काँच-सामग्री निर्यात की थी, लेकिन विदेशी प्रतिस्पर्धा के कारण १९५४-५५ में काँच-सामग्री का निर्यात मूल्य घट कर केवल २५ लाख रुपए रह गया। यह निश्चय किया गया है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि समाप्त होने तक भारत विदेशों को प्रतिवर्ष ५० लाख रुपए मूल्य की काँच-सामग्री का निर्यात करने लगेगा। काँच के निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से भारत सरकार के उद्योग एवं वाणिज्य मन्त्रालय द्वारा एक परिषद् की स्थापना भी की गई है। इसके अलावा इस अवधि में देश में ऐसे रसायन-पदार्थों का पर्याप्त परिणाम में उत्पादन होने लगेगा, जिनकी काँच-निर्माण के लिए आवश्यकता पड़ती है और जो अभी तक विदेशों से आयात करने पड़ते हैं।

पूंजी

प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान काँच उद्योग के विकास में लगभग २.५ करोड़ रुपए की पूंजी लगाई गई। यह अनुमान है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में इस उद्योग के विकास और विस्तार पर लगभग ३ करोड़ रुपया और खर्च किया जाएगा।

रोजगार की स्थिति

१९५५-५६ में काँच उद्योग में लगभग १८ हजार ५ सौ व्यक्ति काम करते थे। यह आशा है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना समाप्त होने तक इनकी संख्या बढ़ कर २५ हजार तक पहुँच जाएगी।

संक्षेप में, भारत में काँच उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है और इस बात की पूर्ण आशा है कि निकट भविष्य में भारतीय काँच उद्योग का खूब विकास होगा।

१५

सिमेंट उद्योग

जब मनुष्य असभ्य और जंगली था, फल-फूल तथा कच्चा-पका मांस खा अपने दिन व्यतीत करता था, उस समय भी उसे कुछ समय के लिए ऐसे एकान्त और सुरक्षित स्थान की आवश्यकता पड़ती थी, जहाँ निश्चिन्त होकर, अपने शत्रुओं के भय से मुक्त होकर वह सुख की नींद सो सके। इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए उन्होंने वृक्षों और तदुपरान्त कन्दराओं का आश्रय लिया। लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य अधिकाधिक सभ्य होता गया, उसके कार्य का क्षेत्र और उसकी अपनी आवश्यकताएँ भी बढ़ती गईं। पहाड़ों की कन्दराओं और वनों से उतर कर वह मैदानों में आया और धीरे-धीरे उसने पशु पालना और खेती करना भी सीख लिया। पशुओं की रक्षा तथा खेती की देखभाल करने के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह कहीं आस-पास ही रहे। अतः मनुष्य ने घास-फूस तथा लकड़ी इत्यादि की सहायता से झोंपड़ियाँ बनाना सीख लिया। जैसे-जैसे उनकी कार्य-क्षमता और ज्ञान में वृद्धि होती गई, मानव सभ्यता का विकास होता गया, झोंपड़ियों की दशा सुधरती गई और धीरे-धीरे उन्होंने मकान का रूप धारण कर लिया। जब वह स्थायी रूप से एक ही स्थान पर रहने लगा, तब उसे यह अनुभव होने लगा कि जिन झोंपड़ियों और घरों में वह रहता है, उन्हें क्यों न और मजबूत, टिकाऊ और सुन्दर बनाया जाय। प्रसिद्ध कहावत है कि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। आवश्यकता अनुभव होने पर मनुष्य ने अपने घरों के निर्माण पर अधिकाधिक ध्यान देना शुरू किया। इसी के फलस्वरूप आगे चलकर भवन-निर्माण इंजीनियरिंग का प्रादुर्भाव हुआ और मनुष्य की सौन्दर्य-प्रियता के सहज स्वभाव के कारण वास्तु-कला के साथ उसका संयोग हुआ। आज हमें अपने चारों ओर जो भव्य और सुन्दर भवन दिख रहे हैं, उनके विकास का इतिहास एक प्रकार से मानव सभ्यता के विकास का इतिहास है।

इसी प्रकार, प्रारम्भ में मनुष्य घनघोर वनों में बहते हुए नदी नालों को पार करने के लिए पेड़ों के तनों इत्यादि का आश्रय ले लेता था, लेकिन मानव सभ्यता के विकास के इन युगों में आदि युग का वह अनाड़ी मानव कुशल और चतुर कारीगर बन गया है और अपने बुद्धि चातुर्य के सहारे उसने बड़ी-बड़ी नदियों के सीने पर भी विशालकाय लौह अथवा सिमेंट पुलों की रचना कर दी है। इस विकास की प्रक्रिया

में मानव ने अनेक प्रकार की भवन-निर्माण सामग्रियों का विकास किया है। छाल, चमड़ा, लकड़ी, पत्थर, मिट्टी, कपड़ा, ईंट, धातु, कंक्रीट, प्लास्टिक इत्यादि अनेक नई निर्माण-सामग्रियों की खोज उसने कर डाली है।

प्राचीन काल में बनी बहुत-सी इमारतें काल के क्रूर थपेड़ों को सहती हुई आज भी खड़ी हुई हैं। आगरे का ताजमहल, दिल्ली का लालकिला, गोलकुण्डा का गोल गुम्बद, अजंता और एलोरा की इतिहास-प्रसिद्ध गुफाएँ, दक्षिण के भव्य और कलात्मक मन्दिर, मिस्र के पिरामिड, ग्रीस और रोम की सुन्दर और अति प्राचीन इमारतें, बेबीलोनिया की प्राचीन सभ्यता के अवशेष और चीन की विशाल दीवार—ये सभी हमारे पूर्वजों की भवन-निर्माण क्षमता और कारीगरी के प्रतीक के रूप में आज भी जीवित हैं। इन पर कितनी विशाल धनराशि व्यय हुई, कितने वर्षों में इनका निर्माण हुआ, यह सब हमें अच्छी तरह ज्ञात नहीं। परन्तु समय वह नहीं रहा और परिस्थितियाँ भी बदल चुकी हैं। आज हमें भवन-निर्माण के लिए अपेक्षाकृत अधिक सस्ती, परन्तु अधिक मजबूत, भवन-निर्माण सामग्री की आवश्यकता है और इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए जो भवन-निर्माण सामग्रियाँ खोज निकाली गई हैं, उनमें सिमेंट को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आज निवास गृहों, विशालकाय अट्टालिकाओं राष्ट्र की समृद्धि और आर्थिक प्रगति का सूत्रपात करने वाली विशाल नदी घाटी योजनाओं, बाँधों, सड़कों, पुलों इत्यादि के निर्माण के लिए विशाल परिमाण में संसार के सभी देशों में सिमेंट की माँग है।

७वीं सदी में राजा हर्ष के शासन काल में वराह मिश्र द्वारा रचित 'बृहत संहिता' ग्रन्थ में भवन-निर्माण में प्रयुक्त होने वाले एक विशेष प्रकार के गारे का उल्लेख किया गया है, लेकिन बाद में इसका लोप हो गया।

१०० वर्ष पूर्व सिमेंट को कोई नहीं जानता था। एक अंग्रेज इंजीनियर जोन स्माटन के अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप इसका विकास हुआ। १८वीं सदी में उसने यह भवन-निर्माण सामग्री तैयार की और इसका नाम पोर्टलैण्ड सिमेंट रखा। १८२५ में उसने बड़े पैमाने पर इसका उत्पादन करने के लिए एक फैक्टरी खोली। तब से पोर्टलैण्ड सिमेंट की माँग दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती गई और आज तो कोई ऐसा देश नहीं, जिसे विशाल परिमाण में इसकी जरूरत न पड़ती हो। जो देश अपने यहाँ इसका उत्पादन नहीं कर सकता, वह प्रतिवर्ष विदेशों से बहुत अधिक परिमाण में इसका आयात कर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता है। भारत में सिमेंट निर्माण का इतिहास अधिक पुराना नहीं।

सिमेंट कई प्रकार के होते हैं, जिनमें पोर्टलैण्ड सिमेंट सबसे मुख्य है। भारतवर्ष

में १९२७ में सबसे पहले पोर्टलैण्ड सिमेंट बनाने का कार्य प्रारम्भ हुआ।

पोर्टलैण्ड सिमेंट वह पदार्थ है, जो चूने और मिट्टीदार द्रव्यों के संयोग से बनता है। भारतवर्ष में चूनेदार द्रव्य के लिए चूने के पत्थर और मिट्टीदार द्रव्य के लिए मिट्टी का उपयोग किया जाता है। इनमें कभी-कभी बाक्साइट और सिलिका राक का भी मिश्रण किया जाता है। पर यह उसी दशा में किया जाता है, जब एलुमिना और सिलका की कमी होती है। बूँदी और ग्वालियर की सिमेंट फैक्टरियों में चूने के पत्थर काम में लाए जाते हैं। उनमें एलुमिना और सिकत रेत पर्याप्त मात्रा में होती है, अतएव वहाँ उक्त अतिरिक्त द्रव्य मिलाने की आवश्यकता नहीं होती।

रासायनिक दृष्टि से पोर्टलैण्ड सिमेंट केलशियम सिलीकेट्स एलुमिनेट्स का मिश्रण है।

निर्माण विधियाँ

पोर्टलैण्ड सिमेंट दो विधियों से बनाया जाता है। पहला गीली विधि से और दूसरी शुष्क विधि से। भारतवर्ष में अधिकतर गीली विधि का ही उपयोग होता है। मूलतः गीली विधि में इंग्लैण्ड में खड़िया मिट्टी जैसे पदार्थों का ही उपयोग होता था, परन्तु अब इसमें कठोर पदार्थों का भी उपयोग होने लगा है। भारतवर्ष की अधिकांश फैक्टरियों में सिमेंट बनाने के लिए गीली विधि काम में लाई जाती है।

इस विधि में चूने का पत्थर खदान से भारी-भारी टुकड़ों में आता है। इन्हें 'जो क्रशर' नामक एक विशिष्ट प्रकार की चक्की में डालते हैं। ये क्रशर कई प्रकार के होते हैं। पर यहाँ अधिकतर 'स्विग हैमर क्रशर' का उपयोग किया जाता है। इस क्रशर के द्वारा चूने के पत्थर के ढाई या तीन इंच आकार के टुकड़े कर दिए जाते हैं और इसके बाद ये रोलर में दबाए जाते हैं। इससे ये और बारीक होकर १" या इससे भी कम के रह जाते हैं।

एक ओर तो चूने के पत्थरों पर यह क्रिया होती है और दूसरी ओर मिट्टी 'वाशमिल' में डाली जाती है। वहाँ यह जल से संयुक्त होकर 'स्लरी' में परिणत हो जाती है। इसके बाद उक्त चूने के पत्थर की गिट्टी की 'वाशमिल' में बुकनी बनाई जाती है। 'वाशमिल' एक बड़ी चक्की होती है। इसमें एक ओर से बुकनी गिरती जाती है और दूसरी ओर से कढ़ी के ढंग का गाढ़ा मिश्रण (स्लरी) लगातार बाहर की ओर बहता हुआ निकलता रहता है।

इस पतले मिश्रण को रहँट पर गोल घूमने वाली डोलचियों द्वारा ऊपर खींच कर सिमेंट के एक बड़े हौज में, जो ३०-३४ फुट व्यास वाला और ५०-६० फुट ऊँचा होता है, एकत्र किया जाता है। इसके तल में दबाव युक्त हवा छोड़ने का प्रबन्ध

रहता है, जिसके कारण अन्दर का पतला मिश्रण बराबर हिलता-मिलता रहता है। इसी समय मिश्रण का रासायनिक पृथक्करण कर यह देखा जाता है कि सभी पदार्थ उचित अनुपात में मिले हुए हैं, अथवा नहीं।

इसके उपरान्त, यह मिश्रण रोटरी किल्न नामक भट्टी में छोड़ा जाता है। इस भट्टी को जलाने के लिए कोयले की बुकनी का उपयोग किया जाता है। जैसा कि अन्यत्र कहा गया है, इस बुकनी को लोहे के एक बड़े नल में से हवा के दवाव की सहायता से भट्टी के नीचे वाले छोर में झोंक दिया जाता है, जहाँ एक बार यह भट्टी जली तो फिर ६-६ माह तक दिन-रात जलती रहती है।

भट्टी के नीचे की तह में तापमान १४०० से १५०० डिग्री सेन्टी ग्रेट तक होता है और ऊपर की ओर कुछ कम। ऊपर तैयार होने वाले मिश्रण की धार भट्टी के ऊपर के छोर से अन्दर छोड़ा जाता है। साधारण तौर पर एक तिहाई हिस्सा नीचे उतरने पर मिश्रण के अन्दर रसा हुआ पानी सूख जाता है। यहाँ पर उष्ण तापमान ८५० डिग्री तक होने के कारण खड़िया मिट्टी का पूरा चूना बन जाता है। मिट्टी में 'सिलिका अल्यूमिना' और 'फेरस ऑक्साइड' होता है। उनका चूने के साथ रासायनिक संयोग हो जाता है। यह क्रिया भट्टी के नीचे वाले छोर में पूरी होती है। पदार्थ पिघल कर बालू जैसे छोटे-छोटे कणों में बदल जाता है, जिनको 'क्लिलकर' कहते हैं। उन्हें ठंडा होने के लिए किसी जगह पर रख दिया जाता है। इस समय उन पर जल छिड़का जाता है। कहीं कहीं उनमें से हवा को गुजारने के लिए मशीन से भी काम लिया जाता है।

इन कंकड़ों पर हवा और पानी का असर होने पर चूने का शेष अंश भी नष्ट हो जाता है और कंकड़ भी कुड़कीले बन जाते हैं। इन्हें फोड़ने पर अन्दर की ओर से ये काले से दिखते हैं। भट्टी का ताप कम हुआ तो कंकड़ कुछ गीले से पड़ जाते हैं और ताप अधिक हुआ तो कड़े पड़ जाते हैं। बाद में इन कंकणों और जिप्सम को निर्धारित मात्रा में दो अलग-अलग मशीनों में पीस कर एक साथ मिलाया जाता है। बस यही मिश्रण सिमेंट है। यह सिमेंट ऊँचे बुर्ज में जमा किया जाता है। इस बुर्ज में दबाव वाली हवा की मदद से नियमित तोल के थैले भरे जाते हैं।

सिमेंट के कारखानों की सभी कलें प्रायः बिजली की शक्ति से चलाई जाती हैं, क्योंकि कारखाने का सारा काम बहुत बड़े पैमाने पर चलता है। भाप की सहायता से विद्युत-निर्माण कर पूरे कारखाने में उससे काम लिया जाता है। एक टन सिमेंट तैयार करने के लिए मामूली तौर पर ३२-३३ यूनिट बिजली लगती है। इसके अतिरिक्त, कारखाना दिन-रात जारी रहने के कारण रोशनी के लिए भी विद्युत-शक्ति की आवश्यकता होती है।

वैसे तो भारत में सिमेंट तैयार करने का पहला कारखाना मद्रास प्रान्त में

१९०४ में खोला गया था, लेकिन वह कुछ दिन चल कर ही बन्द हो गया। १९१४ में पुनः कुछ बड़े पैमाने पर सिमेंट तैयार करने का प्रयत्न किया गया, लेकिन प्रथम महायुद्ध के दौरान भारत में सिमेंट तैयार करने के उद्योग को विशेष रूप से प्रोत्साहन मिला। १९२४ में भारत में सिमेंट तैयार करने वाले कारखानों की कुल संख्या १० थी तथा उनका कुल उत्पादन ५.८१ लाख टन प्रतिवर्ष था। १९३० में सिमेंट की बिक्री और वितरण के लिए 'सिमेंट मार्किटिंग कम्पनी आफ इंडिया' की स्थापना की गई। १९३६ में एक सिमेंट कम्पनी को छोड़कर अन्य सभी सिमेंट कम्पनियाँ आपस में मिल गईं। द्वितीय महायुद्ध के दौरान में भारत सरकार ने देश में सिमेंट उद्योग के विकास को और अधिक प्रोत्साहन दिया। द्वितीय महायुद्ध के अन्तिम वर्ष में भारत में सिमेंट का उत्पादन २६.१५ लाख टन प्रतिवर्ष से बढ़ कर ४१.२५ लाख टन प्रतिवर्ष तक पहुँच गया। इसी दौरान में डालमिया सिमेंट फैक्टरी तथा कुछ अन्य सिमेंट फैक्टरियां की भी स्थापना हुई।

प्रथम युद्ध की समाप्ति के बाद से लेकर द्वितीय महायुद्ध के समय तक भारत में अन्य देशों से सिमेंट का बराबर आयात होता रहा, क्योंकि यहाँ सिमेंट इतनी अधिक मात्रा में सुलभ नहीं था कि देश की निरन्तर बढ़ती हुई माँगें पूरी की जा सकतीं। द्वितीय महायुद्ध के दौरान तो सिमेंट का अकाल ही पड़ गया और सिमेंट का चोर-बाजार बहुत गरम रहा। लोगों ने चोर बाजारी कर सिमेंट के क्रय-विक्रय से करोड़ों रुपयों का मुनाफा कमाया। लेकिन द्वितीय महायुद्ध समाप्त होने के उपरान्त धीरे-धीरे सिमेंट की बिक्री और वितरण से नियंत्रण हटा लिया गया। इसका शुभ परिणाम हुआ और कुछ ही वर्षों में स्थिति पर काबू पा लिया गया।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद भारत पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त हुआ और सरकार ने देश के विकास की आवश्यकता अनुभव कर अविलम्ब पंचवर्षीय विकास योजना पर अमल किया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ होने के समय देश में सिमेंट का निर्माण करने वाली फैक्टरियों की कुल संख्या ११ थी। यह निश्चय किया गया कि इन सिमेंट फैक्टरियों की उत्पादन-क्षमता का और अधिक विस्तार किया जाए तथा नई सिमेंट फैक्टरियों की स्थापना की जाए, जिससे सिमेंट का उत्पादन ३२ लाख टन प्रतिवर्ष (१९५१-५२) से बढ़ कर ५३ लाख १० हजार टन प्रतिवर्ष (योजना अवधि) तक पहुँच जाए। यह आशा थी कि १९५५-५६ के अन्त तक देश में प्रतिवर्ष ४८ लाख टन सिमेंट तो निश्चय ही तैयार होने लगेगा।

उत्पादन

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सिमेंट उत्पादन का जो लक्ष्य निर्धारित किया गया

था वह पूरा नहीं किया जा सका तथा बहुत प्रयत्न करने पर १९५५-५६ में प्रतिवर्ष ४६ लाख टन सिमेंट तैयार करने का लक्ष्य ही प्राप्त किया जा सका। १९५०-५१ में सिमेंट-निर्माता फैक्टरियों की कुल संख्या २१ थी, लेकिन योजना अवधि में उनकी संख्या बढ़ कर २७ तक पहुँच गई है। अभी हाल में जो सिमेंट फैक्टरियाँ बन कर तैयार हुई हैं, उनमें उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा स्थापित चुर्क सिमेंट फैक्टरी (मिर्जापुर) विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इसके अलावा, सिन्दरी में 'एसोसिएटेड सिमेंट कम्पनी' के नाम से एक और फैक्टरी की स्थापना की गई है। इस कम्पनी में सिन्दरी के रासायनिक खाद कारखाने से निकलने वाले अतिरिक्त रासायनिक पदार्थ 'कैल्शियम कार्बोनेट' से सिमेंट तैयार करने की व्यवस्था की गई है। इन दोनों फैक्टरियों ने क्रमशः १९५४ और १९५५ में उत्पादन कार्य प्रारम्भ कर दिया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ और समाप्ति काल में देश में सिमेंट उद्योग की स्थिति इस प्रकार थी—

	१९५०-५१ में फैक्टरियों की संख्या	उत्पादन-क्षमता, टनों में	१९५५-५६ संख्या	वार्षिक उत्पादन क्षमता टनों में
बिहार	५	९२२२	६	११२२०००
उड़ीसा	—	—	१	१६५०००
उत्तर प्रदेश	—	—	१	२००००
मध्य प्रदेश	१	३५०	१	३५००००
मध्य भारत	१	६०	१	६००००
राजस्थान	१	२२५	२	५२५०००
पेप्सू	२	२४२	२	३७००००
सौराष्ट्र	३	३३७	३	४९२०००
बम्बई	—	—	२	३०००००
मद्रास	५	७७०	३	६४२०००
आन्ध्र				
मैसूर	१	८६	१	८६०००
ट्रावनकोर-कोचीन	१	५०	१	५००००
हैदराबाद	१	२४०	१	३८००००
	२१	३२८२	२४	४९३१०००

—भारत की औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

प्रथम पंचवर्षीय योजना के विभिन्न वर्षों में भारत में कुल जितना सिमेंट तैयार किया गया, उसके विस्तृत आँकड़े इस प्रकार हैं—

(लाख टनों में)

	सम्भावित उ० क्षमता	वास्तविक उ० क्षमता
१९५०-५१	३.२८०	२.६९२
१९५१-५२	३.७०६	३.२८१
१९५२-५३	३.७९६	३.५१०
१९५३-५४	४.२४३	४.०२८
१९५४-५५	४.४४४	४.४१८
१९५५-५६	४.९३१	४.६००

—प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

सिमेंट की खपत

भारतीय वाणिज्य और उद्योग मन्त्रालय की रिपोर्ट के अनुसार १९४९-५१ में देश में प्रतिवर्ष लगभग २६ लाख टन सिमेंट खपा। यह आशा की जाती थी कि प्रथम पं० योजना की अवधि में बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओं तथा विभिन्न प्रकार के अन्य सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए १९५२-५३ में ३३ लाख टन तथा १९५३-५४ में ३८ लाख टन सिमेंट प्रतिवर्ष की आवश्यकता होगी। इसके अलावा, सड़क निर्माण कार्यक्रमों के लिए भी प्रति वर्ष लगभग १ लाख टन सिमेंट की आवश्यकता थी। इस प्रकार, १९५६ में कुल मिलाकर प्रतिवर्ष ४५ लाख टन सिमेंट की आवश्यकता पड़ने का अनुमान लगाया गया था। १९५३ में तटकर कमीशन ने विभिन्न प्रकार के सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों को दृष्टि में रखते हुए प्रतिवर्ष ३६ लाख ५० हजार टन सिमेंट की आवश्यकता पड़ने का अनुमान लगाया था। साथ ही, कमीशन ने यह आशा भी व्यक्त की थी कि अगले ३ वर्षों तक सिमेंट की माँग में हर वर्ष १० प्रतिशत की वृद्धि होती जाएगी। इसी वृद्धि के आधार पर यह अनुमान लगाया गया था कि १९५५-५६ में देश को ४८ लाख ६० हजार टन सिमेंट की जरूरत पड़ेगी। विभिन्न उद्योगों में सिमेंट की माँग के सम्बन्ध में भारतीय वाणिज्य और उद्योग मन्त्रालय से जो आंकड़े प्राप्त हुए हैं, वे इस प्रकार हैं—

संघटित उद्योग	हजार टन प्रति मास
कृषि	१०५.३५
रेलवे	५०.६३
सिंचाई और विद्युतशक्ति	४२.१५, ४१.६३
केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम	३७ ५२
प्रतिरक्षा कार्यक्रम	२५.२३
पुनर्वास	१३.६४
शिक्षा	७.८८
प्रान्तों की माँग	५०८.४७
	८३३.००

—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

द्वितीय पंचवर्षीय योजना अवधि में सड़क, गृह, उद्योग तथा सार्वजनिक निर्माण कार्यों और बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओं के लिए और अधिक परिमाण में सिमेंट की आवश्यकता है। यह आशा की जाती है कि १९६०-६१ तक देश को कुल मिलाकर प्रतिवर्ष १ करोड़ टन सिमेंट की आवश्यकता पड़ेगी। १९६०-६१ में भारत के जिन राज्यों को जितने परिमाण में सिमेंट की आवश्यकता होगी, उनके अनुमानित आँकड़े इस प्रकार हैं—

	१९६०-६१ (हजार टनों में)
१. दिल्ली क्षेत्र	९०८
२. कानपुर क्षेत्र	१२२१
३. कलकत्ता क्षेत्र	२८७२
४. बम्बई क्षेत्र	३१२८
५. मद्रास-कोयम्बटूर क्षेत्र	१८७२
कुल	१०००१

—भारतीय वाणिज्य उद्योग मन्त्रालय द्वारा सुलभ आँकड़ों से उद्धृत

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सिमेंट उद्योग के विकास का जो कार्यक्रम बनाया गया है, उसके अनुसार १९६०-६१ तक सिमेंट का उत्पादन बढ़कर १ करोड़ २२ लाख टन प्रतिवर्ष तक पहुँच जाएगा। इस विकास कार्यक्रम में पुरानी फैक्टरियों की उत्पादन-क्षमता में विस्तार करने के साथ-साथ कई नई सिमेंट फैक्टरियों की स्थापना करना भी शामिल है। यह निश्चय किया गया है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि समाप्त होने तक देश में १ करोड़ ३० लाख टन सिमेंट प्रतिवर्ष तैयार किया जा सकेगा। शेष की पूर्ति विभिन्न राज्यों में नई फैक्टरियों की स्थापना करके की जाएगी।

१९५५-५६ में देश में सिमेंट उद्योग में कुल मिला कर १५ करोड़ रुपए की पूँजी लगी थी। इसमें उत्तर प्रदेश में स्थित चुर्क सिमेंट फैक्टरी में लगी २.९२ करोड़ रुपए की पूँजी शामिल नहीं थी। औद्योगिक वित्त कार्पोरेशन ने ३० अप्रैल, १९५५ तक सिमेंट उद्योग को १.१६ करोड़ रुपए के ऋण दिए। इसी अवधि में 'ऐसोसिएटड सिमेंट कम्पनीज' ने विभिन्न विकास योजनाओं पर लगभग ११.७६ करोड़ रुपए लगाए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सिमेंट उद्योग के विकास पर कुल मिलाकर ८० करोड़ रुपया और खर्च किया जाएगा। इसमें से कुछ धन 'एसोसिएटेड सिमेंट कम्पनीज' खुद लगाएँगी, कुछ धन बैंक से उधार लेंगी तथा कुछ धन शेयर बेच कर एकत्र करेंगी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ काल में सिमेंट उद्योग में कुल ३३ हजार व्यक्ति काम कर रहे थे। यह अनुमान है कि इस समय तक यह संख्या ४० हजार तक पहुँच चुकी है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रस्तावित विकास कार्यक्रम पर अमल हो जाने पर १९६०-६१ में इस उद्योग में लगभग ७५ हजार व्यक्ति काम पर लगे होंगे।

निर्यात

देश में सिमेंट उद्योग के यथोचित विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि विदेशों में भारतीय सिमेंट को खपाने के लिए मंडियों की तलाश की जाए। देश में एक प्रकार से सिमेंट उद्योग सुदृढ़ आधार पर स्थापित हो चुका है। आवश्यक कच्ची सामग्री भी विशाल परिमाण में सुलभ है, आवश्यक टैक्निकल जानकारी भी प्राप्त है तथा अन्य कई देशों की अपेक्षा यहाँ अधिक उत्तम कोटि का सिमेंट भी तैयार होने लगा है। भारत के आस-पास के कई देश अभी हाल में स्वतन्त्र हुए हैं और उन्होंने विशाल सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम शुरू कर रखे हैं, जिनके लिए विशाल परिमाण

में सिमेंट की आवश्यकता है। भारत के पड़ोसी देश अपनी सिमेंट की आवश्यकता पूरी करने के लिए विदेशों पर निर्भर हैं और वहाँ से विशाल परिमाण में सिमेंट का आयात कर भी रहे हैं। ये देश भारत के लिए अच्छी मंडियाँ सिद्ध हो सकते हैं और यहाँ भारतीय सिमेंट व्यवसायी विदेशी सिमेंट व्यवसायियों से डट कर प्रतिस्पर्धा भी कर सकते हैं, क्योंकि हर दृष्टि से इस क्षेत्र में स्थिति भारत के अनुकूल है। यदि भारतीय सिमेंट-निर्माता सिमेंट निर्यात करने का निर्णय कर लें तो वे इन देशों में स्थायी मंडियाँ प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि सिमेंट निर्माण में संलग्न सभी फर्में परस्पर अधिक सहयोग करें और सरकार इस प्रयत्न में उन्हें हर प्रकार से मदद दे।

भारत में सिमेंट का उत्पादन और आयात

वर्ष	उत्पादन टनों में	आयात टनों में
१९४८-४९	१६०५३	१४६७
१९४९-५०	२२९७६	३४०४
१९५०-५१	२६९१५	१८६
१९५१-५२	३२९२४	१२९
१९५२-५३	३५७६८	१२६
१९५३-५४	३६५७२	१३
१९५४-५५	४४१९६	—

—मेजर इंडस्ट्रीज ऑफ् इंडिया से उद्धृत

१६

मशीनी उपकरण उद्योग

आज समस्त मानव जाति अणु युग के द्वार पर खड़ी है। अणुशक्ति ने मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में एक अभूतपूर्व क्रान्ति कर दी है और भविष्य की रूपरेखा बिलकुल ही बदल दी है। यदि मनुष्य मानव-कल्याण और प्रगति के लिए अणुशक्ति का उपयोग करता है तो निश्चय ही यह प्रलयंकारी शक्ति मानवता के विनाश का कारण न बन मनुष्य के लिए जीवन का एक वरदान बन जायगी। लेकिन अणुशक्ति के इस युग में भी भारत मशीनी उपकरण उद्योग की उपेक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि आधुनिक उद्योग-प्रधान समाज में बिना मशीनों और उपकरणों के कोई भी देश प्रगति नहीं कर सकता। मशीनों पर ही अप्रत्यक्ष रूप से देश की आर्थिक समृद्धि और सुरक्षा निर्भर करती है, और यदि हम यह कहें कि उत्कृष्ट और सूक्ष्म मशीनों के निर्माण के कारण ही हम अणुशक्ति जैसी प्रलयंकारी शक्ति का पता लगाने और उसके उपयोग में समर्थ हुए हैं, तो अत्युक्ति न होगी। जब तक हमारे पास ऐसे औजार और उपकरण नहीं होते, जिनकी सहायता से हम अपनी आवश्यक मशीनें और उपकरण तैयार कर सकें, तब तक हमें निश्चित रूप से अपनी औद्योगिक प्रगति के लिए विदेशों का मुख ताकना पड़ेगा, क्योंकि उनसे अपनी जरूरत की मशीनें मिलने पर ही हम अपना काम शुरू कर सकेंगे, अन्यथा असहाय की तरह मुख ताकते रहेंगे। वस्तुतः, द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक मशीनी उपकरण उद्योग की स्थापना की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया था, यद्यपि भारत में १८९० से ही तरह-तरह के ऐसे औजार तैयार होते थे, जिनसे कई प्रकार की मशीनें बनाने में मदद मिलती थी। लेकिन इस प्रकार के उपकरण तैयार करने वालों की संख्या बहुत कम थी तथा उपकरणों की कोटि भी अच्छी नहीं होती थी। बहुत से कारीगर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बरमा, खराद की मशीनें, रेती, कोन इत्यादि तैयार कर लेते थे। १९३० के उपरान्त 'मेसर्स पी० एन० दत्त एण्ड को० लिमिटेड, कलकत्ता' और १९३५ में 'मेसर्स कपूर इंजीनियरिंग को० लिमिटेड' तथा १९३७ में इंडिया मशीनरी कम्पनी लिमिटेड, डासानगर ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया और उत्कृष्ट कोटि के मशीनी उपकरण तैयार करने की ओर विशेष ध्यान दिया।

स्थिति में परिवर्तन

इसी बीच में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया और स्थिति बिलकुल बदल

गई। उक्त कम्पनियों का लक्ष्य मुख्यतः सुरक्षा विभाग की आवश्यकताओं की पूर्ति के योग्य मशीनी उपकरण तैयार करना था लेकिन विदेशों से आयात में कमी हो जाने के फलस्वरूप अन्य क्षेत्रों से भी मशीनी उपकरणों की माँग आने लगी। १९३९ तक किसी प्रकार स्थिति सँभली रही, क्योंकि उस समय तक विदेशों से थोड़े-बहुत परिमाण में मशीनी उपकरण प्राप्त होते रहे। १९३९ के बाद से मशीनी उपकरणों का आयात बिलकुल बन्द हो गया, अतएव देश में मशीनी उपकरणों की बहुत अधिक कमी हो गई। स्थिति बिगड़ती देखकर सरकार ने फरवरी, १९४१ में मशीनी उपकरण विषयक एक आदेश जारी किया। इस आदेश का उद्देश्य उन मशीनी उपकरणों की सूची तैयार करना था, जिनका निर्माण भारत में हो रहा था। सरकार चाहती थी कि उनकी कोटि में आवश्यक सुधार करके उन्हें सेना के कार्यों में प्रयुक्त किया जाए।

इटली के युद्ध में प्रवेश करते ही भूमध्यसागर का मार्ग भी लगभग बन्द हो गया। फिर भी हिन्द महासागर होकर आवश्यक मशीनी उपकरण यहाँ पहुँचते रहे। लेकिन जापान के युद्ध में प्रविष्ट होते ही यह मार्ग भी अत्यधिक असुरक्षित हो गया तथा स्थिति बहुत गम्भीर हो गई। भारतीय मशीनी उपकरण उद्योग पर एकदम देश की आवश्यकताओं को पूरा करने का भारी उत्तरदायित्व आ पड़ा।

मशीनी उपकरणों की कोटि में सुधार करने के प्रयत्न

अतएव सरकार ने यह निश्चय किया कि भारत स्थित मशीनी उपकरण निर्माता फर्मों की उत्पादन-क्षमता और उत्पादन-कोटि में सुधार किया जाए। इस लक्ष्य को दृष्टि में रखकर ५ फर्मों को विदेशों से मँगाई गई नई मशीनें दी गईं। इसके अलावा, चार अन्य फर्मों को अमेरिका और इंग्लैंड से अपने कारखानों के लिए आवश्यक नई मशीनें खरीदने में मदद दी गई। मशीन उपकरणों के निर्माण से सम्बन्ध रखने वाले ७ विशेषज्ञों को भारत बुलाया गया ताकि वह भारतीय फर्मों को मशीनी उपकरणों के निर्माण के सम्बन्ध में आवश्यक परामर्श और निर्देश दे सकें। सरकार ने इन फर्मों की जाँच-पड़ताल और निरीक्षण के लिए भी एक अलग विभाग खोला, जिससे फर्मों में एक ही प्रकार के और उत्तम कोटि के मशीनी उपकरण तैयार करने में बहुत अधिक सहायता मिली।

अच्छी प्रगति

इन प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत में मशीनी उपकरण उद्योग ने थोड़े ही वर्षों में अच्छी प्रगति कर ली। इसका पता इसी बात से चलता है कि जहाँ १९४२ में

भारत में केवल २७३ प्रकार के मशीनी उपकरणों का निर्माण हुआ था, वहाँ १९४६ में १ करोड़ ३० लाख रुपए मूल्य के ४१२१ मशीनी उपकरणों का निर्माण किया गया।

मशीनी उपकरण उद्योग में लगी पूँजी

यद्यपि भारतीय मशीनी उपकरण उद्योग ने अल्प समय में ही उल्लेखनीय प्रगति की है, परन्तु फिर भी उसका विकास इतने सुव्यवस्थित और सुदृढ़ आधार पर नहीं हुआ है कि वह खुले बाजार में विदेशी मशीनी उपकरण उद्योगों से प्रतिस्पर्धा कर सके। युद्धोत्तर काल में, इस प्रतिस्पर्धा में टिकने में असमर्थ हो जाने पर छोटी-छोटी मशीनी-उपकरण निर्माता फर्मों को विवश होकर अपना काम बन्द कर देना पड़ा। देश के विभाजन के फलस्वरूप मशीनी उपकरण तैयार करने वाली फर्मों की संख्या में और अधिक कमी हो गई। इस समय देश में मशीनी उपकरण निर्माता फर्मों की संख्या केवल १५ है। इन १५ फर्मों में कुल मिलाकर ८० लाख रुपए की पूँजी लगी है तथा ये प्रतिवर्ष ३० लाख रुपए मूल्य के मशीनी उपकरण तैयार करती हैं।

सरकार द्वारा कारखाने का निर्माण

आधुनिक मशीनी उपकरणों के निर्माण के लिए अत्यधिक सूक्ष्म और मँहगी मशीनों की आवश्यकता पड़ती है। गैरसरकारी फर्मों के पास इतनी पूँजी नहीं थी कि वे आधुनिक सूक्ष्म और भारी मशीनों को खरीदने पर विशाल धन राशि व्यय कर सकतीं। इसलिए यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि सरकार इस दिशा में स्वयं पहल करे ताकि देश में आधुनिकतम सूक्ष्म मशीनों का निर्माण पर्याप्त संख्या में किया जा सके। इसी उद्देश्य को लेकर भारत सरकार ने ज्यूरिच की एक प्रसिद्ध मशीनी उपकरण निर्माता फर्म और 'मेसर्स ओरलिकोन मशीन टूल वर्क्स' के सहयोग से बंगलौर में हिन्दुस्तान मशीन टूल लिमिटेड, नामक एक कारखाना स्थापित किया है। इस कारखाने में आधुनिकतम और उत्कृष्टतम मशीनें लगाई गई हैं। यह कारखाना मझोले आकार की सूक्ष्म मशीनें और मशीनी उपकरण तैयार करने में पूर्ण समर्थ है। सुलभ सूचना के अनुसार, यह कारखाना प्रतिवर्ष ४०० तेज गति से चलने वाली खराद-मशीनें, २५० मिलिंग मशीनें, २५० बरमे तथा ३५० के लगभग अन्य प्रकार के मशीनी उपकरण तैयार कर सकेगा।

भारतीय उद्योग मेला

१९५५ में दिल्ली में जो भारतीय उद्योग प्रदर्शनी हुई थी, उसे देखकर इस

बात का अन्दाजा लगाया जा सकता था कि मशीनी उपकरणों के निर्माण के क्षेत्र में अभी भारत कितना पिछड़ा हुआ है तथा उसे इस दिशा में अभी कितनी अधिक मंजिल तय करनी है। इस उद्योग-प्रदर्शनी में २१ देशों ने अपने मशीनी उपकरणों का भव्य और सुन्दर प्रदर्शन किया था। चीन, पोलैंड इत्यादि देश जो कुछ वर्ष पूर्व तक मुख्यत: कृषि-प्रधान देश माने जाते थे, इस क्षेत्र में कुछ वर्षों में बहुत आगे बढ़ गए हैं। चीन ने तो इस क्षेत्र में बहुत ही उल्लेखनीय प्रगति की है।

भारत में मशीनी औजार उद्योग के विकास और विकास कार्यों की दृष्टि से अत्यधिक आवश्यक मशीनों का निर्माण करने के लिए यह अत्यधिक आवश्यक है कि इस बात की अच्छी तरह जाँच पड़ताल की जाए कि देश को किस प्रकार के मशीनी औजारों की आवश्यकता है और उसी आवश्यकता को दृष्टि में रखकर मशीनी औजार उद्योग के विकास की योजना तैयार की जाए।

वैज्ञानिक खोज और अनुसन्धान

भारत में औद्योगिक क्षेत्र में अनुसन्धान और परीक्षण का कार्य मुख्यत: राष्ट्रीय परीक्षणशालाओं और इंडियन स्टैंडर्ड इंस्टिट्यूशन नामक संस्थाओं में हो रहा है, लेकिन उद्योगों के विकास के लिए वैज्ञानिक खोजों और अनुसन्धानों का उपयोग करने की ओर लोगों का ध्यान बहुत कम गया है। यह सत्य है कि मशीनी औजारों के निर्माण के क्षेत्र में भारत में कोई विस्तृत अनुसन्धान कार्य नहीं किया जा रहा है और जब तक इस दिशा में विस्तृत और गहन अनुसन्धान नहीं किया जाता, इस क्षेत्र में भारत द्वारा कोई विशेष उल्लेखनीय प्रगति करने की आशा नहीं की जा सकती।

कुशल कारीगरों का अभाव

भारत में मशीनी औजार उद्योग के विकास में एक सबसे बड़ी बाधा कुशल टैक्निकल विशेषज्ञों और कारीगरों की कमी है। इसका सबसे प्रमुख कारण यह है कि भारत में युवा और योग्य टेक्निशियनों को प्रशिक्षण प्रदान करने की पर्याप्त व्यवस्था नहीं की गई है। जब तक हम देश में इस प्रकार के प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था नहीं कर सकते, हमें भारतीय इंजीनियरों को विदेशों में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए अधिकाधिक संख्या में भेजना चाहिए ताकि वह मशीनी औजार बनाने की विद्या में पारंगत हो सकें। इसके साथ ही, विदेशी टैक्निशियनों की सेवाएँ प्राप्त करना भी हमारे लिए अत्यधिक आवश्यक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तथा भारतीय टैक्निकल

विशेषज्ञों को उच्च प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए भारत सरकार 'इंडस्ट्रियल टैक्निकल सर्विस' की स्थापना करने पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर रही है।

कुशल कारीगरों और मिस्त्रियों का अभाव

उच्च प्रशिक्षण प्राप्त टैक्निकल विशेषज्ञों के अलावा हमारे देश में दक्ष और कुशल मिस्त्रियों और कारीगरों का अभाव भी है। मशीनी औजार उद्योग के लिए इस प्रकार के कुशल मजदूरों का पर्याप्त संख्या में होना परमावश्यक है। कुछ मशीनी औजार तो इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें तैयार करने के लिए अत्यधिक कुशल और सधे हुए हाथों की आवश्यकता होती है क्योंकि जरा भी गड़बड़ होने से औजार में खराबी आ जाती है। यद्यपि पिछले महायुद्ध के बाद भारतीय कारीगरों की कार्य-कुशलता और मशीनी औजारों की कोटि में सुधार हुआ है, लेकिन फिर भी यह कहना पड़ेगा कि मशीनी औजार निर्माता युवा व्यक्तियों को प्रशिक्षण प्रदान करने की ओर बहुत कम ध्यान दे रहे हैं, जबकि अमेरिका जैसे देशों में विभिन्न प्रकार की मशीनों और मशीनी औजार निर्माण करने वाली फर्में युवा व्यक्तियों को प्रशिक्षण प्रदान करने और नए-नए कारीगर तैयार करने की ओर विशेष रूप से ध्यान देती हैं। विदेशों में तो मशीनी औजारों का निर्माण करने वाली बहुत सी फर्मों ने कारखानों के साथ-साथ प्रशिक्षण प्रदान करने वाले स्कूल भी खोल रखे हैं।

आवश्यक सामग्री का अभाव

मशीनी औजारों के लिए कई प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इन वस्तुओं में कार्बन और मिश्रित इस्पात, लोहा तथा ताँबे इत्यादि की आवश्यकता होती है। इन मिश्रित धातुओं को प्राप्त करने में भारत को बहुत कठिनाई पड़ती है। अतः इस बात की भी बहुत अधिक आवश्यकता है कि देश में धातुओं को विभिन्न अनुपात में मिलाकर मिश्रित धातुएँ तैयार करने वाली फैक्टरियाँ भी खोली जाएँ। इसके लिए धातुओं की ढलाई करने वाले कारखानों की विशेष तौर पर आवश्यकता है।

विदेशों में मशीनी औजार उद्योग बहुत अधिक प्रगति कर गया है। वहाँ उत्तम और निर्धारित कोटि के पुर्जे इतनी प्रचुर मात्रा में सुलभ रहते हैं कि मशीनी औजार तैयार करने वाली बड़ी-बड़ी फर्में छोटे-छोटे पुर्जे अपने यहाँ न तैयार कर बाजार से खरीद लेती हैं और बिना किसी हिचक के अपनी मशीनों में उनका इस्तेमाल करती हैं। इसका एक लाभ यह हुआ है कि छोटे-छोटे पुर्जे तैयार करने वाली बहुत-सी फैक्टरियाँ इन देशों में काफी संख्या में खुल गई हैं और उनका कारोबार खूब चलता है। लेकिन भारत में स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है, अतएव भारत में ऐसे कारखाने

स्थापित करने की आवश्यकता है जहाँ सभी पुर्जे तैयार करने की व्यवस्था हो। अधिकांश मशीनी औजार निर्माता छोटे-छोटे पुर्जे तक जैसे नट, बोल्ट इत्यादि भी अपने यहाँ तैयार करते हैं।

पूंजी की कमी

इसके अलावा, भारतीय मशीनी औजार निर्माता फर्मों के पास इतनी अधिक पूंजी नहीं है कि वे आधुनिकतम और उत्कृष्ट कोटि की बड़ी मशीनें औजारों का निर्माण करने के लिए खरीद सकें। यदि भारत इस क्षेत्र में और देशों से टक्कर लेना चाहता है तो उसे इस समस्या का कोई न कोई समाधान तुरन्त खोज निकालना चाहिए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भारत सरकार हिन्दुस्तान मशीनी औजार कारखाने के विस्तार पर लगभग २ करोड़ रुपया और व्यय करेगी। सरकार ने इस उद्योग के भविष्य और आवश्यकताओं का अध्ययन करने के लिए एक कमीशन भी नियुक्त किया है, जो इस सम्बन्ध में सरकार को विस्तृत सुझाव पेश करेगा। यह आशा है कि १९६०-६१ तक हिन्दुस्तान मशीनी औजार कारखाना १.५ करोड़ रुपए मूल्य की मशीनें तैयार करने लगेगा। गैरसरकारी फर्में भी लगभग ७५ लाख रुपए मूल्य के मशीनी उपकरण प्रति वर्ष तैयार करने में समर्थ हो जाएँगी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत १९६०-६१ तक कुल मिलाकर ३ करोड़ रुपए मूल्य के मशीनी औजार तैयार करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

वस्तुतः, आवश्यकता इस बात की है कि हम इस समय अपने संकुचित और व्यक्तिगत हितों और स्वार्थों के घेरे को तोड़ कर इस उद्योग के विकास के लिए लगन और सच्चाई के साथ प्रयत्न करें। वस्तुतः सरकार और व्यवसायियों के सहयोग से ही यह कार्य पूरा करना सम्भव है। राष्ट्र की समृद्धि ही नहीं, बल्कि सुरक्षा की दृष्टि से भी यह अत्यधिक आवश्यक है कि हम मशीनी औजार तैयार करने के क्षेत्र में जल्दी से जल्दी आत्मनिर्भर हो जाएँ, नहीं तो औद्योगिक प्रगति की प्रतिस्पर्धा में हम अन्य राष्ट्रों से पीछे रह जाएँगे और अणुशक्ति के इस युग में आर्थिक दृष्टि से अन्य राष्ट्रों के पराधीन रह कर कठिनाई से प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता से पुनः हाथ धो बैठेंगे।

उद्योग, वैज्ञानिक गवेषणा और अन्य संस्थाओं में काम आने वाले सूक्ष्म यन्त्रों का निर्माण भी भारत में निरन्तर बढ़ रहा है।

कलकत्ता के निकट जादवपुर में जो राष्ट्रीय यन्त्र कारखाना स्थापित किया गया है, वह इंजीनियरिंग, विज्ञान और उद्योग सम्बन्धी कार्यों के लिए लगभग २५०

तरह के सूक्ष्म यन्त्र बना रहा है। इनमें वायु-भार मापक यन्त्र, सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र, जलमापक यन्त्र, पेरामीटर और मोनोमीटर आदि भी हैं। इसके अलावा, यहाँ वायुयानों और सूक्ष्म यन्त्रों की मरम्मत भी होती है। उत्तमता तथा कीमत में इस कारखाने में निर्मित यन्त्र विदेशों के यन्त्रों के समान ही होते हैं।

इस कारखाने में जो औजार बनाए जाते हैं, उनकी बिक्री में भी वृद्धि हुई है। १९५३-५४ में १७ लाख ५२ हजार रुपए की और १९५४-५५ में २१ लाख ५६ हजार रुपए की बिक्री हुई थी। १९५५-५६ में बिक्री घटकर १३ लाख ९९ हजार रुपए रह गई थी, किन्तु १९५६-५७ में यह बढ़कर १८ लाख ६४ हजार रुपया हो गई।

भारतीय सर्वेक्षण विभाग के काम आने वाले सूक्ष्म यन्त्रों के रख-रखाव और मरम्मत के लिए १८३० में गणित यन्त्र कार्यालय स्थापित किया गया था। उसी कार्यालय को अब राष्ट्रीय यन्त्र कारखाने में परिवर्तित कर दिया गया है।

दो महायुद्धों ने गणित यन्त्र कारखाने का रूप बदल दिया और अब इसका कार्य केवल यन्त्रों की मरम्मत करना नहीं, बल्कि गणित और विज्ञान से सम्बन्धित यन्त्रों का निर्माण करना भी है। दूसरे महायुद्ध में यहाँ कई प्रकार के यन्त्र बनाए गए। अफगानिस्तान तथा बर्मा आदि पड़ोसी देश भी इस कारखाने से लाभ उठाते हैं।

विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म यन्त्रों की माँग निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि इस कारखाने का पुनर्गठन और विस्तार किया जाय। इसीलिए जादवपुर (कलकत्ता) में एक नई इमारत खड़ी की गई है। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय की ओर से प्रशिक्षण की जो योजना चलाई गई थी, उसके अन्तर्गत इस कारखाने में २० व्यक्तियों को काम सिखाया गया। पुनस्संस्थापन मन्त्रालय और अन्य संस्थाएँ भी विद्यार्थियों को प्रशिक्षण दिलाने के लिए इस कारखाने की प्रशिक्षण-सुविधाओं का लाभ उठाती हैं।

नये यन्त्रों का निर्माण

विज्ञान, इंजीनियरिंग और उद्योग के विकास के लिए यन्त्रों का होना बहुत आवश्यक है। इस दिशा में राष्ट्रीय यन्त्र कारखाना बहुत काम कर रहा है। दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में इस कारखाने में इंजीनियरिंग और भूगर्भ सम्बन्धी कार्यों के लिए विशेष प्रकार के सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र, तापमापक यन्त्र तथा रोग परीक्षा सम्बन्धी यन्त्र बनाए जाएँगे। इनसे कई यन्त्रों के सम्बन्ध में प्रयोग भी किए जा रहे हैं।

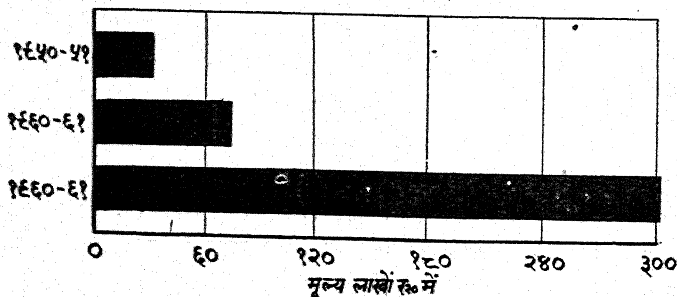
भारत सरकार के उत्पादन मंत्री श्री के० सी० रेड्डी ने २३ फरवरी, १९५३ को इस कारखाने के भवन का शिलान्यास किया था। इस योजना के पूरी तरह पर अमल में आजाने पर भारत में आधुनिक ढंग के मशीनी उपकरण उद्योग तथा यन्त्र उद्योग के विकास में बहुत सहायता मिलेगी।

भारत में मशीनी औजारों का आयात और उत्पादन

वर्ष	प्रतिवर्ष आयात होने वाले मशीनी औजारों (का मूल्य लाख रु० में)	वार्षिक उत्पादन		उत्पादन का आयात से प्रतिशत
		मशीनों की संख्या	मशीनों का मूल्य (लाख रु० में)	
१९४१	६८	—	—	—
१९४२	५७	२७३	६	११
१९४३	५४	११७३	६४	११८
१९४४	१५२	२१७०	७८	५१
१९४५	१८२	३६९०	११२	६१
१९४६	१८३	२९२०	९१	५०
१९४७	३६७	१४००	४६	१२
१९४८	४१४	१६६१	५५	१३
१९४९	४१९	२२४०	४७	११
१९५०	२४९	११३०	२९	११
१९५१	२५०	२९३४	४७	१९
१९५२	२२१	४४८८	४४	२०
१९५३	३१२	२९६१	४४	१४
१९५४	—	—	५०	—

—मेजर इंडस्ट्रीज ऑफ इंडिया, १९५६, से उद्धृत

औज़ार



१७

विद्युत इंजीनियरिंग उद्योग

आजकल कितना ही सुन्दर, आकर्षक और मजबूत मकान बना हो, परन्तु जब तक उसमें बिजली नहीं लगती, उसका रंग फीका-फीका लगता है। लेकिन बिजली की पहली चकाचौंध के साथ ही घर की सुन्दरता और आकर्षण में चार-चांद लग जाते हैं और विद्युत किरणों के प्रथम स्पर्श से उसके हृदय की कली खिल उठती है। यह तो एक बहुत सामान्य उदाहरण है, परन्तु यह कहने में कोई भी अतिशयोक्ति नहीं कि आधुनिक सभ्यता की विशाल, भव्य और गगनचुम्बी इमारत आज विद्युत-शक्ति के विशाल और सुदृढ़ कन्धों पर आधारित है। यदि विद्युतशक्ति न होती तो आज आधुनिक सभ्यता का यह रूप हम लोग न देख पाते और न आज शक्ति के इस अजेय शक्तिशाली अश्व पर बैठकर हम प्रकृति पर इतनी शानदार विजय ही प्राप्त कर सकते। विद्युतशक्ति को मानव जाति के कल्याण के लिए सुलभ करने के लिए हम श्री टामस एडिसन के उतने ही कृतज्ञ हैं, जितने भविष्य में हम अणुशक्ति के जन्मदाताओं के प्रति होंगे। अपने युग में विद्युतशक्ति का आविष्कार वर्तमान-युग के अणुशक्ति के आविष्कार जितना ही क्रान्तिकारी और महत्त्वपूर्ण था। विद्युतशक्ति के कारण ही मानव जाति भौतिक क्षेत्र में इतनी अधिक प्रगति कर सकी है और यदि कहा जाय कि आधुनिक सभ्यता की सफलता और प्रगति की कुंजी विद्युतशक्ति है तो अनुचित न होगा। प्रकृति की रहस्यमयी गोद में छिपी हुई इस महान् शक्ति को खोज कर मनुष्य ने स्वयं अपने भाग्य का निर्णय कर लिया है और आज जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं, जिसमें विद्युत शक्ति सूत्राधार का कार्य न करती हो। इसकी अनुपस्थिति में आधुनिक सभ्यता की यह विशाल, भव्य और जगमगाती इमारत काल के अंधकार में सदा सदैव के लिए विलीन हो जाएगी और मनुष्य फिर पहले जैसा ही असहाय और पंगु हो जाएगा। यहाँ पर मैं केवल कुछेक ऐसे उपकरणों और वस्तुओं की ही संक्षेप में चर्चा करूँगा, जिन्हें मनुष्य ने इस अपरिचित शक्ति का उपयोग कर अपने कल्याण और आर्थिक सुख-समृद्धि के लिए बनाया है।

इसमें सन्देह नहीं कि विद्युत इंजीनियरिंग के क्षेत्र में भारत अन्य प्रगति-शील राष्ट्रों से अभी बहुत पीछे है और इस दिशा में आत्मनिर्भर बनने तथा ऐसी मशीनें तैयार करने की दृष्टि से, जिनके द्वारा वह विद्युतशक्ति उत्पन्न कर अपनी पूर्व

समृद्धि के लिए उनका इस्तेमाल कर सकें, उसे अभी काफी रास्ता तय करना बाकी है। भारत को भूतकाल में विदेशों से विद्युतशक्ति-उत्पादन तथा इससे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखने वाले उपकरणों और मशीनों के आयात पर विशाल धनराशि व्यय करनी पड़ी है। एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि विद्युतशक्ति ने जहाँ एक ओर हमारी आर्थिक प्रगति में अपूर्व योग दिया है, वहाँ मनोरंजन और मनबहलाव के लिए नए-नए और अनेकानेक साधन भी उसने हमें सुलभ किए हैं। और इन साधनों को जुटाने के लिए भी हमें परमुखापेक्षी रहना पड़ता है। द्वितीय विश्व महायुद्ध और विशेषतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से विद्युत इंजीनियरिंग के क्षेत्र में भारत ने तेजी से प्रगति की है और यह हर्ष का विषय है कि विद्युत इंजीनियरिंग उद्योग आजकल भारत में तेजी के साथ प्रगति कर रहे हैं। यदि प्रगति जारी रही तो अगले कुछ वर्षों में भारत अन्य देशों की चुनौती का डट कर सामना कर सकेगा और विद्युतशक्ति के अभाव के कारण देश की आर्थिक प्रगति का मार्ग अवरुद्ध होने की आशंका का पूरी तरह अन्त हो जाएगा। यहाँ पर मैं विद्युतशक्ति इंजीनियरिंग से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगों की ही चर्चा करूँगा जैसे—बिजली के पंखे, तथा रेडियो और टेलीफोन इत्यादि।

१८

रेडियो उद्योग

जाड़ों में सुबह और रात गरम-गरम लिहाफ में दुबके हुए यदि आप हृदयतन्त्री के तार झनकार देने वाले लतामंगेशकर के गाने सुनना चाहते हों, भीड़-भाड़ धक्का-मुक्का और शोर-शराबे से दूर रहकर कवि-सम्मेलन, मुशायरे, क्रिकेट मैच या किसी शानदार जलूस का आँखों देखा हाल सुनना चाहते हों, अथवा अखबार से पहले ही संसार से सम्बन्ध रखने वाली कोई महत्त्वपूर्ण सूचना सुनने के लिए उतावले हो रहे हों, तो इनकी शरण आइए, ये आपकी मनोकामना अवश्य पूरी करेंगे। प्राचीन युग में इनका चाहे जो भी रूप-रंग रहा हो, इन्हें चाहे जिस नाम से लोग जानते रहे हों, परन्तु आधुनिक युग में तो हम इन्हें रेडियो के नाम से जानते हैं। एक साधारण वेतनभोगी कर्मचारी के यहाँ से लेकर कई हजार रुपया माहवार वेतन लेने वाले अफसरों और छोटे-मोटे दूकानदारों के यहाँ से लेकर लाखों करोड़ों का व्यापार करने वाले पूँजीपतियों के घरों की शोभा बढ़ाने में इनका बड़ा हाथ रहता है और अब तो गाँव-गाँव इनकी पहुँच हो गई है। जहाँ पहले. गाँव के चौपालों पर आल्हा के स्वरों की कड़क और तड़क गूँजा करती थी, वहाँ अब संगीत के मृदु-मधुर स्वर गूँजा करते हैं। यदि कभी आप भूले-भटके किसी ऐसे गाँव में निकल जाएँ, जहाँ रेडियो-सेट पहुँच गया हो तो ग्रामीण भाइयों के साथ 'देहाती भाइयों के कार्यक्रम' का आनन्द लेना न भूलें। आनन्द उठाने के साथ-साथ आपको यह भी ज्ञात हो जाएगा कि भारतीय ग्रामों के जीवन और क्रिया-कलापों में रेडियो कितना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता जा रहा है।

एक नया उद्योग

भारत में रेडियो उद्योग का विकास हुए अभी अधिक समय व्यतीत नहीं हुआ है। द्वितीय महायुद्ध में विदेशों से रेडियो का आयात प्रायः बन्द हो जाने के कारण स्थानीय उद्योगपतियों का ध्यान देश के अन्दर रेडियो सेटों का निर्माण करने की ओर गया। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त देश में रेडियो और रेडियो के कई पुर्जे तैयार करने वाली फैक्टरियाँ खुल गई हैं। इन कम्पनियों के पास अच्छी खासी पूँजी और विदेशी टैक्निशियन हैं। लेकिन, फिर भी जिस ढंग से रेडियो-उद्योग का विकास हो रहा है, उस पर सन्तोष नहीं प्रकट किया जा सकता। नीचे रेडियो सेटों के निर्माण

सम्बन्धी जो अधिकृत आँकड़े दिए जाते हैं, उनसे यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाएगा कि रेडियो उद्योग अभी कितनी पिछड़ी दशा में है और उसके विकास के लिए अभी कितना अधिक मार्ग हमें तय करना बाकी है। भारत स्थित रेडियो निर्माता कम्पनियाँ इस समय अपनी उत्पादन-क्षमता के केवल ३० प्रतिशत भाग का ही उपयोग कर पा रही हैं।

उत्पादन-क्षमता

वर्ष	रेडियो सेट
१९४७	३,०३६
१९४८	२४,९९६
१९४९	१६,८३६
१९५०	४४,३४०
१९५१	८२,७८८
१९५२	७१,४९६
१९५३	५६,२६८
१९५४	५८,६१६

—मेजर इंडस्ट्रीज ऑफ इंडिया से उद्धृत

उपरोक्त आँकड़ों से यह विदित होता है कि सबसे अधिक रेडियो सेट १९५१ में तैयार हुए, लेकिन इसके बाद से उत्पादन संख्या में निरन्तर कमी हुई है। उत्पादन में कमी की यह प्रवृत्ति १९५४ में भी जारी रही। रेडियो उद्योग के विकास की दृष्टि से यह निश्चय ही एक अत्यधिक गम्भीर बात थी। द्वितीय महायुद्ध के बाद देश में रेडियो-कार्यक्रम के प्रसारण की सुविधाओं में भी काफी अधिक विस्तार किया गया है तथा आकाशवाणी केन्द्र के कार्यक्रमों में विस्तृत तथा व्यापक परिवर्तन किए गए हैं। इन सब बातों के बावजूद रेडियो निर्माण की गति में मन्दी आ जाना निश्चय ही आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। अन्य सभी देशों में रेडियो-प्रसारण सम्बन्धी सुविधाओं में वृद्धि होने के कारण रेडियो उद्योग को बहुत प्रोत्साहन मिला है।

भविष्य उज्ज्वल है

देश के विशाल आकार और विशाल जनसंख्या को दृष्टि में रखते हुए यहाँ रेडियो उद्योग के विकास की पर्याप्त गुंजाइश है। यही नहीं, विद्युदणु विज्ञान सम्बन्धी

अन्य उपकरण और सामग्री भी यहाँ बड़े पैमाने पर खप सकती है। यदि रेडियो उद्योग का समुचित ढंग से विकास किया जाए तो उससे अन्य विद्युदणु उद्योगों के विकास में महत्त्वपूर्ण सहायता मिलेगी।

रेडियो उद्योग की सफलता के लिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि हमें उसके सभी पुर्जे पर्याप्त परिमाण में सुलभ हों। अतएव देश में रेडियो के विभिन्न पुर्जों के पर्याप्त मात्रा में निर्माण की समस्या सबसे अधिक विकट है। अन्य देशों में रेडियो सेटों का निर्माण करने वाली कम्पनियों ने विभिन्न पुर्जे तैयार करने वाली फैक्टरियाँ भी खोल रखी हैं, लेकिन भारत ने इस दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं की है। फिर भी कई कम्पनियाँ इस दिशा में अब अवश्य प्रयत्नशील हैं। बंगलौर स्थित रेडियो एण्ड इलैक्ट्रिकल मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी इस दिशा में सराहनीय प्रयत्न कर रही है। रेडियो उद्योग का विकास बहुत कुछ रेडियो प्रसारण सुविधाओं के विस्तार पर भी निर्भर रहता है। अखिल भारतीय आकाशवाणी केन्द्र ने इस दिशा में एक विस्तृत और व्यापक कार्यक्रम तैयार किया है।

उत्पादन व्यय अधिक

यद्यपि कारखानों में तैयार होने वाली अन्य वस्तुओं की तुलना में रेडियो-सेट का मूल्य अधिक नहीं, फिर भी विदेशों की तुलना में ये अब भी काफी मँहगे पड़ते हैं। पश्चिमी देशों और भारत के जीवन-स्तर को दृष्टि में रखते हुए भारत में रेडियो की कीमतें अब भी काफी ऊँची हैं। भारत में दिन प्रतिदिन के इस्तेमाल लायक सामान्य रेडियो सेट २५० रु० से लेकर ३०० रु० तक में मिलता है इसमें से काफी रुपया तो विदेशों से मँगाए जाने वाले पुर्जों पर लगने वाले आयात कर के रूप में चला जाता है। इसके बाद बिक्री कर भी देना पड़ता है। इसके अलावा, रेडियो का लाइसेंस लेने पर तुरन्त १५ रु० खर्च करने पड़ते हैं। यह सब मिलाकर सेट के कुल मूल्य का ३० प्रतिशत हो हो जाता है। इतना ही खर्च रेडियो सेट तैयार करने और उन्हें फैक्टरियों से दुकान-दारों तक पहुँचाने और विज्ञापन इत्यादि में लग जाता है। इसके अलावा, रेडियो सेट रखने और बेचने वाले को अपने यहाँ भी कुछ कर्मचारी रखने पड़ते हैं, जो ग्राहकों को पूरी तरह सन्तोष दिला सकें। फैक्टरी में रेडियो सेटों के तैयार करने पर अधिक खर्च नहीं बैठता. परन्तु आयात कर, बिक्री कर, ढुलाई, इत्यादि मिलाकर काफी खर्च बैठ जाता है। रेडियो सेटों की कीमतों में तभी कमी हो सकती है, जब रेडियो के सभी पुर्जे देश के अन्दर ही तैयार होने लगें।

अनुसन्धान

यह हर्ष का विषय है कि भारत सरकार ने इस समस्या में दिलचस्पी ली है और इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि इस मामले में देश आत्मनिर्भर हो जाए। इसने पिलानी में रेडियो और विद्युदणु संस्थान खोला है, जिसका उद्देश्य रेडियो-उद्योग के विकास में योग देना है। इसके अतिरिक्त, बंगलौर में भी भारत इलैक्ट्रानिक्स के नाम से एक संस्था स्थापित की गई है, जिससे इस क्षेत्र में अनुसन्धान करने में महत्त्वपूर्ण सहायता मिलेगी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ काल में देश में प्रतिवर्ष लगभग ७७,२०० रेडियो सेट तैयार होते थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में रेडियो तैयार करने वाली तीन और फर्मों की स्थापना की गई। इनको शामिल करके १९५५-५६ में देश लगभग ३८,००० रेडियो सेट तैयार हुए।

कारखानों की संख्या और उत्पादन-लक्ष्य

१९५०-५१ में रेडियो सेटों का निर्माण करने वाली फर्मों की कुल संख्या ११ थी तथा इनका उत्पादन कुल मिलाकर ७७,२०० रेडियो सेट था। इसके अलावा, ५ और फर्मों की स्थापना की गई और जून, १९५२ में इन्होंने भी रेडियो सेटों का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। संक्षेप में, इस समय भी रेडियो सेटों का निर्माण करने वाली फर्मों की कुल संख्या १५ है। भारत सरकार के वाणिज्य विभाग की विकास शाखा द्वारा की गई एक जाँच-पड़ताल के अनुसार १९ रेडियो-निर्माता फर्में कुल मिलाकर २,१३,००० रेडियो सेट प्रतिवर्ष तैयार कर रही हैं। निम्न तालिका से देश के विभिन्न भागों में रेडियो उद्योग की स्थिति और आँकड़ों का पता चलता है—

राज्य	फर्मों की संख्या	वार्षिक उत्पादन एक पाली में
१. बम्बई	४	८४०००
२. बिहार	१	१२०००
३. दिल्ली	१	६०००
४. मद्रास	१	३०००
५. मैसूर	१	१८०००
६. पंजाब	२	१२०००
७ पश्चिमी बंगाल	५	७८०००
कुल	१५	२१३०००

—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

रजिस्टर्ड फर्मों के अलावा बहुत-सी गैर-रजिस्टर्ड फर्में भी रेडियो सेटों का निर्माण कर रही हैं। यद्यपि यह ठीक-ठीक ज्ञात नहीं कि ये गैर-रजिस्टर्ड फर्में प्रति वर्ष कितने सेटों का निर्माण करती हैं, परन्तु यह अनुमान है कि इनका कुल वार्षिक उत्पादन लगभग २५ हजार रेडियो सेट तक पहुँच जाता है।

रेडियो सेटों का आयात और निर्यात

सरकार ने देश में रेडियो सेटों के आयात पर कई प्रकार के नियन्त्रण लगा रखे हैं। सरकार की नई नीति के अनुसार केवल ९ वाल्व और उससे अधिक शक्ति के रेडियो तथा रेडियोग्राम इत्यादि ही विदेशों से आयात किए जा सकते हैं। पिछले ६ वर्षों में विदेशों से जितने मूल्य के रेडियो सेट अथवा उनके पुर्जे आयात किए गए हैं, उसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

वर्ष	रेडियो सेट संख्या	मूल्य लाख रु० में	रेडियो वाल्व संख्या	मूल्य लाख रु० में	अन्य पुर्जे मूल्य लाख रु० में	अन्य पुर्जे मूल्य लाख रु० में	कुल मूल्य लाख रु० में
१९५०-५१	१६१३७	२५.७	५४२९२३	१३.७	७२.८	२५.८	१३७.९
१९५१-५२	२९१२१	५२.६	८०१५८३	२२.६	११६.६	१५.०	२०६.८
१९५२-५३	१९२८६	३६.१	५६७८२५	१६.३	८०.७	१६.८	१४९.९
१९५३-५४	१३०४२	२३.५	४३७५०६	११.०	४६.७	३७.२	११८.४
१९५४-५५	५५१५	११.२	६३५५०४	१४.७	६३.७	३२.२	१२१.८
१९५५-५६	६२५८	१७.६	१४०७९१८	३०.१	१०९.०	५२.०	२०८.७

—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट, १९५६ से उद्धृत

इस समय विदेशों को रेडियो सेटों का निर्यात नहीं किया जा रहा है, लेकिन सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील है कि रेडियो सेट के निर्माता कम लागत पर रेडियो सेटों का निर्माण कर सकें, जिससे विदेशों को उनका निर्यात करना सम्भव हो। इस उद्देश्य से सरकार ने विदेशों से मँगाए जाने वाले कच्चे माल पर लगने वाले तटकर की दरों में काफी कमी कर दी है।

इसके अलावा, देश के अन्दर भी रेडियो सेटों की माँग में वृद्धि हो रही है। सुलभ सूचना के अनुसार दिसम्बर १९५० में रेडियो सेट रखने के ५,०७,३४४ लाइसेंस लिए गए थे। नवीनतम सूचना के अनुसार इस समय इन लाइसेंसों की संख्या १,८७,५६३ तक पहुँच गई है। तात्पर्य यह कि प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में लगभग १,३६,००० रेडियो सेट देश में खपे।

सुलभ सूचना के अनुसार रेडियो सेटों का निर्माण करने वाली १५ फर्मों में कुल मिलाकर लगभग २५०० से अधिक मजदूर काम कर रहे हैं। यह अनुमान है कि इस समय देश में हर वर्ष लगभग १,४०,००० रेडियो सेटों की आवश्यकता है। यह अनुमान लगाना कठिन है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में रेडियो सेटों की माँग में कितनी वृद्धि होगी। लेकिन सभी बातों को दृष्टि में रखते हुए मोटे तौर पर १९६०-६१ तक देश को प्रतिवर्ष २ लाख से लेकर २ लाख २५ हजार तक रेडियो सेटों की आवश्यकता पड़ेगी। इसमें निर्यात के प्रश्न को भी शामिल कर लिया गया है। यह विश्वास है कि वर्तमान रेडियो सेट निर्माता फर्मों की उत्पादन सुविधाओं का विस्तार करके ही द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निर्धारित उत्पादन-लक्ष्य आसानी से पूरा किया जा सकेगा।

१९

भारत में बैटरी उद्योग का विकास

लड़ाई का जमाना था। ब्रिटिश साम्राज्य का सिंहासन डगमगा रहा था। देश में हर वस्तु का टोटा था और दैनिक जीवन के हर क्षेत्र में कन्ट्रोल का बोलबाला था। उन दिनों में इंटरमीडियट में पढ़ता था। अपने एक सहपाठी कुँवर साहब से मेरी अच्छी खासी निभती थी और अक्सर उनके साथ सैर-सपाटे और शिकार के लिए मैं निकल जाता था। दिसम्बर का महीना था। अचानक एक दिन कुँवर साहब को भूत सवार हुआ कि रात को शिकार पर चला जाए। मैंने बहुत समझाया, "कुँवर साहब जाने भी दीजिए, बहुत ठंडक है, फिर कभी देखा जाएगा।" परन्तु कुँवर साहब जो ठहरे। बात निकल गई सो निकल गई। आखिर बहुत अड़ंगा लगाने के बाद यह तय हुआ कि रात ७ बजे चला जाए और ११ बजे तक वापस लौट आया जाए। ठीक ६ बजे शाम हम कुँवर साहब के बंगले से निकल पड़े। रात का समय था, इसलिए ड्राइवर को कुँवर साहब के पिता ने जबरदस्ती हमारे साथ कर दिया। वैसे उसकी कोई विशेष आवश्यकता न थी, क्योंकि कुँवर साहब भी अच्छे ड्राइवर थे। जंगल शहर से १० या १२ मील दूर था। यह तय किया गया कि सीधे पहाड़ी पर चढ़कर डाक बंगले पहुँचा जाए और वहीं आस-पास शिकार किया जाए, क्योंकि रात में डाक बंगले के पास स्थित छोटे से पोखरे मे जानवर अवश्य ही पानी पीने आते थे। शहर को पार कर हम जंगल में प्रविष्ट हो गए। हलका अँधेरा हो गया था और हमारी मोटर की रोशनी में ऊपर की ओर सर्पाकार जाती हुई सड़क साफ दिखाई पड़ रही थी। अभी हम आधी चढ़ाई भी नहीं चढ़े थे कि मोटर की रोशनी अचानक गुल हो गई और चारों तरफ अन्धेरा छा गया। दिसम्बर की कृष्ण पक्ष की रात थी और आगे का रास्ता भी तनिक नहीं सूझता था। ड्राइवर ने गाड़ी रोक दी और परेशान होकर इधर-उधर पुर्जों को टटोलने लगा। ड्राइवर ने लाख कोशिश की लेकिन न तो रोशनी जली और न इंजन ही फिर से स्टार्ट हुआ। ड्राइवर के तो प्राण सूख गए और उधर कुँवर साहब भी मन-ही-मन गाड़ी को और अपने-आप को कोसने लगे। इसी बीच में अंधेरा और बढ़ गया और जंगल में चारों तरफ से जानवरों की आवाजें गूँजने लगीं। हम सब मोटरगाड़ी के अन्दर अँधेरे में चुपचाप भगवान् का नाम जपने लगे। आखिर अपनी सारी कोशिशें करने के बाद जब ड्राइवर थककर हार गया तो डरते हुए बोला, 'हजूर मालूम पड़ता है बैटरी फेल हो गई।' इतना सुनना

था कि हम सब को तो काठ मार गया। बीच जंगल में और काली रात में बैटरी फेल हो गई। सच मानिए कुँवर साहब को उस रात मैंने इतना कोसा कि आज स्मरण कर सहसा हँस उठता हूँ। कार्यक्रम के अनुसार रात को ११ बजे लौट आना था, इसलिए हम कम्बल लेकर भी नहीं चले थे। इतनी अंधेरी रात में मोटर से उतर कर आधा जंगल पार कर किसी गाँव में शरण लेना भी मानों जान पर खेलना था। बस एक ही चारा था कि जहाँ थे, वहीं चुपचाप ईश्वर का नाम लेकर रात बिताई जाए. शायद कोई ट्रक इधर से भूला भटका निकल जाय। लेकिन मुफ़लसी में आटा गीला वाली मसल भी उस दिन पूरी तरह चरितार्थ हुई और कोई मोटरगाड़ी या ठेला उस रास्ते से भूल कर भी न निकला। वह रात हम दोनों ने कैसे काटी, यह न पूछिए। लेकिन जब दूसरे दिन दोपहर को किसी तरह घर पहुँचे तो कुँवर साहब ने पहला काम यह किया कि पिता से कहकर ड्राइवर को खड़े-खड़े निकलवा दिया। उस दिन से मुझे यह अच्छी तरह याद है कि बैटरी जैसी तुच्छ प्रतीत होने वाली चीज कितनी अधिक महत्त्वपूर्ण है और इसीलिए आज भारत के कुछ प्रमुख उद्योगों के सम्बन्ध में लिखते हुए मैं बैटरी उद्योग की कैसे उपेक्षा कर सकता हूँ।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक देश में ड्राई-बैटरी अथवा स्टोरेज बैटरियों का निर्माण बहुत कम संख्या में होता था और देश की माँग का अधिकांश भाग विदेशों से बैटरियों का आयात करके ही पूरा किया जाता था, लेकिन द्वितीय महायुद्ध के दौरान आयात बन्द हो जाने के कारण देश में बैटरियों का अकाल-सा पड़ गया था और उसी समय प्रतिरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा अन्य महत्त्वपूर्ण असैनिक, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए देश में बैटरी उद्योग के विकास को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला और काफी परिमाण में यहाँ बैटरियों का निर्माण होने लगा।

ड्राई बैटरियों के निर्माण का उद्योग

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ होने के समय देश में चार कम्पनियाँ ड्राई बैटरियों का तथा १३ कम्पनियाँ 'स्टोरेज बैटरियों' का निर्माण करती थीं। १९५० में देश में २८ करोड़ ५० लाख ड्राई बैटरी सेलों का तथा ४४५८२० स्टोरेज बैटरियों का निर्माण होता था। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बैटरियों का उत्पादन लक्ष्य ३१ करोड़ बैटरियाँ तथा ५३८४२० स्टोरेज बैटरियाँ निर्धारित किया था।

खपत

टटकर कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार १९५५ तक देश को प्रतिवर्ष ३ करोड़ २० लाख बैटरी सेल तथा ३ लाख ६० हजार स्टोरेज बैटरियों की आवश्यकता

पड़नी थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना का उत्पादन-लक्ष्य भी यही निर्धारित किया गया था।

उत्पादन-क्षमता

१९५२ में देश में २८ करोड़ ५० लाख ड्राई-बैटरी सेलों का तथा ४,४५,८२० स्टोरेज बैटरियों का निर्माण होता था। भारत सरकार के वाणिज्य विभाग की रिपोर्ट के अनुसार १९५२ में एक पाली में काम करके ५ फर्में १० करोड़ ६५ लाख बैटरियों (सेलों) का निर्माण करती थीं। इसी बीच में एक कम्पनी बन्द हो गई, परन्तु नेशनल कार्बन कम्पनी के विकास के फलस्वरूप वार्षिक उत्पादन ७५ लाख सेल प्रतिवर्ष तक पहुँच गया। इसके अलावा, फ्लैश लाइट की बैटरियों का निर्माण करने के लिए एक नई कम्पनी की स्थापना की गई। देश में ड्राई बैटरियों के निर्माण में संलग्न फर्मों की संख्या और उनका उत्पादन इस प्रकार है—

प्रदेश	फर्मों की संख्या	उत्पादन (लाखों में)
बम्बई	२	५२.०
पश्चिमी बंगाल	२	१४७.०
मद्रास	१	२५.०
कुल	५	२२४.५

भारत सरकार के वाणिज्य विभाग की उद्योग शाखा से प्राप्त अधिकृत सूचना के अनुसार पिछले ५ वर्षों में ड्राई बैटरी के उत्पादन सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

वर्ष	उत्पादन (लाखों में)
१९५०-५१	१३६.५
१९५१-५२	१४६.०
१९५२-५३	१२५.०
१९५३-५४	१५४.०
१९५४-५५	१४१.४
१९५५-५६	१६१.१

—प्रथम पंचवर्षीय योजना की प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

प्रथम पंचवर्षीय योजना में निर्धारित उत्पादन-लक्ष्य न पूरा होने का प्रधान कारण यह था कि प्रथम तो एक फर्म ने अपना कारोबार बन्द कर दिया तथा दूसरे देश में बैटरियों की माँग में उतनी वृद्धि नहीं हुई जितना अनुमान लगाया गया था।

१९४७ के बाद से देश में फ्लैश लाइट की बैटरियों का आयात बिलकुल बन्द कर दिया गया। केवल कुछ विशेष प्रकार की बैटरियों के आयात की ३० दिसम्बर, १९५६ तक के लिए इजाजत दी गई थी। पिछले वर्षों में विदेशों से जितने रुपए मूल्य की ड्राई बैटरियाँ आयात की गई, उनके आँकड़े इस प्रकार हैं—

वर्ष	आयात मूल्य (लाख रुपए में)
१९५०-५१	१७.०
१९५१५-२	१४.३
१९५२-५३	३६.८
१९५३-५४	१५.३
१९५४-५५	२५.८
१९५५-५६	५६.६

—प्रथम पंचवर्षीय योजना की प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

इस समय देश में प्रतिवर्ष लगभग १६ करोड़ ड्राई बैटरी सेल खप रहे हैं जिनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

ड्राई बैटरियों के निर्माण में इस समय ९४.७ लाख रुपए की पूँजी लगी है तथा कुल मिलाकर २,६५८ मजदूर काम करते हैं। भारत सरकार ने १९४७ से १९५४ तक इस उद्योग को संरक्षण प्रदान किया।

१९६०-६१ तक देश को २८ करोड़ ५० लाख बैटरी सेलों की आवश्यकता होगी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी उत्पादन-लक्ष्य यही निर्धारित किया गया है। वर्तमान सुविधाओं में सामान्य विस्तार करके ही यह माँग पूरी की जा सकेगी।

स्टोरेज बैटरियों का निर्माण

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में १३ फर्में स्टोरेज बैटरियाँ बनाने का काम करती थीं और उनका प्रतिवर्ष कुल उत्पादन लगभग ४४,५८२ बैटरियाँ थीं। १९५१ में ५ और फर्मों ने स्टोरेज बैटरियाँ बनाने का काम शुरू किया। इस प्रकार देश में बैटरियों के उत्पादन में और अधिक वृद्धि हो गई। १९५२ में एक और फर्म ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया। इसके अलावा, मार्च, १९५४ और १९५५ के बीच दो अन्य फर्मों ने अपने उत्पादन में और अधिक वृद्धि कर दी है। इन सब फर्मों का कुल उत्पादन मिलाकर ५ लाख बैटरियाँ प्रतिवर्ष तक पहुँच गया है। १९५१ में जो १३ फर्में बैटरियों के निर्माण का कार्य कर रही थीं उनकी स्थिति और उत्पादन सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

राज्य	कारखानों की संख्या	उत्पादन
१. पश्चिमी बंगाल	६	१६००००
२. बम्बई	३	६३०००
३. मैसूर	२	१८५००
४. मद्रास	१	१५०००
५. दिल्ली	१	३६००
कुल	१३	२९०१००

—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

भारत सरकार के वाणिज्य विभाग की विकास शाखा से स्टोरेज बैटरियों के उत्पादन सम्बन्धी जो अधिकृत आँकड़े प्राप्त हुए हैं, उनके अनुसार पिछले ५ वर्षों में स्टोरेज बैटरियों के उत्पादन की स्थिति इस प्रकार है—

वर्ष	उत्पादन संख्या
१९५१-५३	२१२८३६
१९५२-५३	१३६०००
१९४३-५४	१७९०००
१९५४-५५	२१०१००
१९५५-५६	२५८०८६

—प्रथम पंचवर्षीय योजना रिपोर्ट से उद्धृत

आयात और निर्यात

सरकार ने १ जुलाई, १९५२ से मोटरों और ट्रकों में इस्तेमाल की जाने वाली बैटरियों के आयात पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया है। केवल कुछ विशेष प्रकार की भारी बैटरियों के आयात के लिये लाइसेन्स प्रदान किए गए। १९५३ में यह प्रतिबन्ध और भी अधिक कठोर कर दिया गया। स्टोरेज बैटरियों के आयात सम्बन्धी आँकड़े अलग से सुलभ नहीं हैं, परन्तु विदेश व्यापार और जहाजरानी विभाग से इस सम्बन्ध में जो आँकड़े प्राप्त हुए हैं, वह इस प्रकार हैं—

वर्ष	संख्या	मूल्य (रु० में)
१९५०	४९६९	२८५३२५
१९५१	१७१७३	५००३६४
१९५२	६८६७	६६२५९६
१९५३	४१९९	५४०४५
१९५४	५८३८	१९४१४३
१९५५ (जनवरी-अप्रैल)	५७१	१९७६९

स्टोरेज बैटरियों के निर्यात की दिशा में अभी तक कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है, क्योंकि सस्ती पड़ने के कारण पड़ोसी देशों में जापान की बैटरियों की बहुत अधिक माँग रहती है। फिर भी इलेक्ट्रिकल स्टोरेज कम्पनी, कलकत्ता, ने १९५१-५२ में ६६ बैटरियों का तथा १९५२-५३ में १०२५ बैटरियों का निर्यात किया था।

देश में स्टोरेज बैटरियों की खपत

१९५२ में तटकर कमीशन ने यह अनुमान लगाया था कि देश में हर वर्ष लगभग ३ लाख ४० हजार स्टोरेज बैटरियों की आवश्यकता पड़ती है। यह अनुमान था कि अगले ३ वर्षों में यह माँग बढ़ कर ३ लाख ६० हजार बैटरियाँ प्रतिवर्ष तक पहुँच जाएगी। कमीशन का अनुमान है कि वर्तमान कारखानों की उत्पादन-सुविधाओं में सामान्य विस्तार करके ही यह माँग आसानी से पूरी की जा सकेगी।

भारत सरकार ने पिछले ७ वर्षों से देशी बैटरी उद्योग को आवश्यक संरक्षण प्रदान कर रखा है। १९५५ में तटकर कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार, अब यह संरक्षण हटा लेने का निर्णय किया गया है।

यह ठीक पता नहीं कि इस उद्योग में कितनी पूंजी लगी है, परन्तु इस उद्योग में काम करने वाले मजदूरों की कुल संख्या लगभग १,७०० है।

२१

टेलीफोन उद्योग

अलादीन के चिराग का नाम और उसकी करामात के किस्से तो आपने बहुत सुन रखे होंगे। चिराग रगड़ते ही जिन अलादीन के सामने हाथ बाँध कर खड़ा हो जाता था और उसका आदेश पलक झपकते बजा लाता था। उतनी नहीं तो उससे कुछ कम करामात इसमें भी है। अन्तर केवल इतना है कि अलादीन के चिराग का सेवक एक जिन था, लेकिन इसकी सेवा में हर वक्त विद्युतशक्ति जैसी चंचला और रूप गर्विता देवी हाथ बाँधे खड़ी रहती है। दिन हो या रात, घनघोर बरसात हो या गहरा कुहरा, यह आपकी सेवा के लिए सदैव तत्पर रहता है और इशारा पाते ही आपका हुक्म बजा लाता है। आधी रात को घर में डाक्टर की आवश्यकता हो, घर से बहुत दूर रहने वाले सगे-सम्बन्धी या मित्र को कोई आवश्यक सन्देश भेजना हो, किसी प्रेमी को बिना किसी को मालूम हुए अपनी प्रेमिका से किसी स्थान पर मिलने के लिए समय तय करना हो, बाजार से कोई वस्तु मँगानी हो, इसके कान धीमे-धीमे उमेठ दीजिए। ये पलक झपकते आपके आदेश को पूरा करेंगे। यही नहीं, हजारों मील दूर बैठ कर लाखों का वारा-न्यारा करने में भी ये आपकी भरपूर सहायता करेंगे, सैकड़ों मील दूर रहने वाले स्वजनों से वाणी द्वारा आपका साक्षात्कार करा देंगे और घर के हाल चाल सुनाकर आपके परेशान दिल को तसल्ली देंगे। आधुनिक युग के इस जिन को हम सब लोग आजकल टेलीफोन कह कर पुकारते हैं।

एक महत्त्वपूर्ण साधन

आज के प्रगतिशील समाज और राष्ट्रों में सम्वादवहन के इस महत्त्वपूर्ण साधन ने कितना अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है, यह आज किसी से छिपा नहीं। देश के व्यवसाय, वाणिज्य में तो आज इसके बिना काम ही नहीं चलता। सामान्य नागरिक के दिन-प्रति-दिन के जीवन में इसने कितना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है और सम्वादों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक अत्यन्त अल्पकाल में पहुँचाने की दिशा में इसने जो अभूतपूर्व क्रान्ति कर दी है, उस पर कुछ कहने की विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि आज शहरों में टेलीफोन हमारे दैनिक जीवन का एक मुख्य अंग बन गया है।

टेलीफोन का आविष्कार सर्वप्रथम बेल नामक एक अमेरिकी वैज्ञानिक ने १८२६ में किया था और कुछ ही वर्षों में संसार के सभी प्रमुख देशों में उसका व्यापक तौर पर इस्तेमाल होने लगा। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि आज अमेरिका में हर तीन व्यक्तियों में एक के पास टेलीफोन है।

टेलीफोन में टेलीफोन एक्सचेंज से लेकर उस स्थान तक जहाँ पर टेलीफोन लगा रहता है, दो तारों की आवश्यकता होती है। भारत में सबसे प्रथम टेलीफोन एक्सचेंज १६वीं सदी के प्रारम्भ में स्थापित किया गया था। पहले खम्भों द्वार टेलीफोन के तार एक्सचेंज तक पहुँचाने की व्यवस्था अपनाई गई, परन्तु टेलीफोनों की संख्या बढ़ने के कारण इसमें कठिनाई होने लगी और सर्वप्रथम १८५१ में भारतीय टेलीग्राफ व्यवस्था के संस्थापक डा० विलियम ओ-शोग्नेसी ने परीक्षण के तौर पर कलकत्ता और डायमंड हार्बर के बीच टेलीफोन के जमीन्दोज केबिल (तार) बिछाने की व्यवस्था की। यह परीक्षण सफल रहा।

टेलीफोन उद्योग की स्थापना की दिशा में पहला कदम

यद्यपि भारत में युद्ध के पूर्व भी टेलीफोनों का उपयोग पर्याप्त संख्या में होता था, परन्तु उसके लगभग सभी पुर्जे, आवश्यक सामग्री और मशीनें विदेशों से ही मँगाई जाती थीं। भारत के उद्योगपतियों ने कई बार इस दिशा में प्रयत्न किए, परन्तु उन्हें विशेष सफलता न मिली। १६४५ में टाटा और बिड़ला का एक मिशन देश में टेलीफोन उद्योग की स्थापना की सम्भावनाओं का अध्ययन करने के उद्देश्य से अमेरिका और यूरोप महाद्वीप के दौरे पर गया। मिशन के वापस आने के उपरान्त भारत सरकार ने विदेशी टेलीफोन निर्माता कम्पनियों से समझौते की बातचीत शुरू की और मई, १६४८ में इंग्लैंड की आटोमैटिक टेलीफोन एंड इलैक्ट्रिक कम्पनी से उद्योग की स्थापना करने के बारे में १५ वर्षीय समझौता हो गया।

ढाई करोड़ रुपए की पूंजी से नई कम्पनी की स्थापना

इन प्रयत्नों के फलस्वरूप २५ जनवरी, १६५० को एक ज्वाइंट स्टाक कम्पनी की स्थापना की गई। इसमें ८३ प्रतिशत हिस्से भारत सरकार ने, १४ प्रतिशत हिस्से मैसूर सरकार ने तथा ३ प्रतिशत हिस्से हिन्दुस्तान टेलीफोन कम्पनी ने खरीद लिए। कम्पनी के बोर्ड के निर्देशकों की नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया तथा भारतीय सम्वादवहन विभाग के सचिव इस बोर्ड के अध्यक्ष नियुक्त किए गए। इसकी

निर्धारित पूंजी २,२२,४०,५०० रुपए तथा अधिकृत पूँजी ढाई करोड़ रुपए रखी गई। कारखाने की स्थापना बंगलौर से ६ मील दूर पुरानी मद्रास ट्रंक रोड पर देववाणी नगर में की गई। कारखाने का नाम भारतीय टेलीफोन उद्योग रखा गया। ३६८ एकड़ भूमि पर स्थित इस कस्बे के निर्माण पर साढ़े पाँच लाख रुपए से भी अधिक धन व्यय हुआ है।

प्रतिवर्ष ४० हजार टेलीफोन

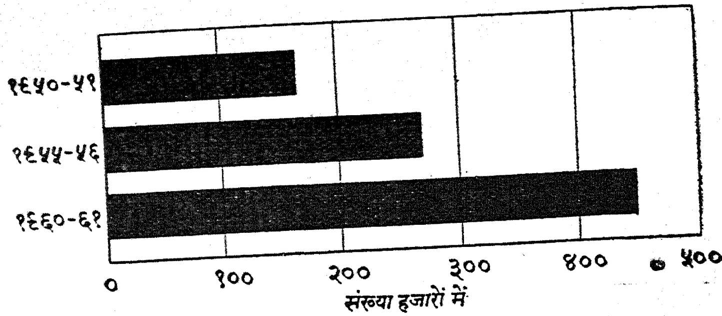
इस कारखाने में टेलीफोन जोड़ने और उसके विभिन्न पुर्जे तैयार करने का काम होता है। १९५३ में इस कारखाने में कुल ४० हजार टेलीफोन तैयार हुए थे। इसके अलावा, स्वचलित एक्सचेंज के लगभग ३० हजार हिस्से भी यहाँ तैयार हुए। १९५६ में ४० हजार टेलीफोन तथा ४० हजार स्वचलित एक्सचेंज तैयार हुए। इसके अतिरिक्त 'सिंगल टेलीफोन कैरियर' नामक यन्त्र का भी निर्माण किया जा रहा है। कम्पनी ने जबलपुर, बम्बई और कलकत्ता में तीन वर्कशापों की स्थापना भी की है और इस बात की पूरी आशा है कि देश इस क्षेत्र में शीघ्र ही पूरी तरह आत्म-निर्भर हो जाएगा।

इसके अलावा, टेलीफोन के तार तैयार करने के लिए भी १९४९ में हिन्दुस्तान केबिल फैक्टरी की स्थापना की गई। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व मोटे किस्म के तारों की माँग बहुत अधिक नहीं थी, लेकिन युद्धोत्तर काल में स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद सम्वादवहन साधनों का अत्यधिक विस्तार करने का निर्णय किया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना का उत्पादन-लक्ष्य

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में प्रतिवर्ष ५० हजार टेलीफोन तैयार करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। प्रथम पंचवर्षीय योजना की जो प्रगति रिपोर्ट सुलभ हुई है, उससे विदित हुआ है कि यह लक्ष्य बिना किसी विशेष कठिनाई के पूरा कर लिया गया है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में टेलीफोनों और नई एक्सचेंज लाइनों के निर्माण पर और अधिक धन व्यय करने की योजना तैयार की गई है। यह निर्णय किया गया है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष तक भारत में प्रति वर्ष कम से कम ६० हजार टेलीफोन तैयार होने लगें और ४० हजार एक्सचेंज लाइनों का निर्माण किया जा सके। इस बीच में टेलीफोन के तार तैयार करने वाली कम्पनी

के उत्पादन में भी आशातीत वृद्धि होगी ताकि देश में टेलीफोन तारों की बढ़ती हुई आवश्यकता की पूर्ति की जा सके। यदि प्रगति की यही रफ्तार जारी रही और देशवासियों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठता गया तो वह दिन अधिक दूर नहीं जब भारतवर्ष में भी हर दो व्यक्तियों के पीछे एक टेलीफोन रहेगा।



परन्तु कुली भी तो मनुष्य ठहरा। क्षण भर के लिए हाथों को आराम देने के लिए भी रस्सी छोड़ना उसके लिए मुश्किल हो जाता था। और यदि कहीं रस्सी खींचते-खींचते उसकी आँख झपक गई, तो बस उसकी नौकरी गई समझ लीजिए। पंखा रुका नहीं कि बाबुओं ने मेजों पर कलमें पटकना और कुली को उलटी सीधी सुनाना शुरू कर दिया। पर बिजली के पंखे ने तो जैसे ये सब मुश्किलें आसान कर दी हैं। रात हो या दिन, लू चलती हो या सड़ी गर्मी पड़ती हो, न तो यह कभी थकता है और न इसकी आँख झपकती है। दिन रात, चौबीस घंटे यह एक चुस्त और स्वामिभक्त सेवक की तरह आपकी सेवा में मुस्तैद रहता है। फिर इतना आज्ञापालक और चुस्त सेवक लोगों को क्यों प्रिय न हो? जनता को इनसे जो आराम और सुख पहुँचता है, वही इनकी लोकप्रियता का मुख्य कारण है।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व की स्थिति

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक भारत में बिजली के पंखों का निर्माण बहुत कम संख्या में होता था और देश की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिकांशतः विदेशों से ही पंखों का आयात किया जाता था। द्वितीय महायुद्ध के समय सहसा ही बिजली के पंखों का आयात रुक गया, जिससे लोगों को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा और देश में पंखों का मिलना दुर्लभ हो गया। इस अभाव को पूरा करने के लिए देश में ही बिजली के पंखों का निर्माण करने की दिशा में जोरदार प्रयत्न किए गए और यह हर्ष का विषय है कि इन प्रयत्नों में भारतीय कारीगरों और व्यवसायियों को बहुत हद तक सफलता प्राप्त हुई है। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद से इस क्षेत्र में आशातीत प्रगति हुई है। १९५०-५१ में देश में प्रतिवर्ष कुल २,८८,००० बिजली के पंखों का निर्माण होता था। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ३,६०,००० पंखे प्रतिवर्ष तैयार करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, जो पूरा कर लिया गया है। सुलभ सूचना के अनुसार, १९५५-५६ में देश में प्रतिवर्ष ३,२०,००० पंखे खपे थे।

फर्मों की संख्या और उत्पादन-क्षमता

भारत सरकार के वाणिज्य विभाग की उद्योग विकास शाखा से प्राप्त सूचना के अनुसार, १९५०-५१ में बिजली के पंखों का निर्माण करने वाली फर्मों की कुल संख्या २२ थी। ये फर्में कुल मिला कर २,८८,००० पंखे प्रतिवर्ष तैयार करती थीं।

लेकिन १ वर्ष के अन्दर ही कुछ फर्में बन्द हो गईं और १९५२ में फर्मों की संख्या घट कर केवल १८ रह गई। इन १८ फर्मों का कुल वार्षिक उत्पादन २,९३,००० पंखे था। १९५४ में २ नई फर्मों ने पंखे तैयार करने का काम शुरू किया और इस वर्ष कुल मिला कर ३,३५,७०० पंखों का निर्माण किया गया। इसी वर्ष सरकार ने जय इंजीनियरिंग वर्क्स, कलकत्ता को अपनी उत्पादन सुविधाओं का और अधिक विस्तार करने का लाइसेंस प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप उसका वार्षिक उत्पादन ४८,००० पंखों से बढ़कर १ लाख २० हजार पंखे प्रतिवर्ष तक पहुँच गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ काल पर बिजली के पंखे तैयार करने वाली फर्मों की कुल संख्या १९ थी तथा वे कुल मिला कर प्रतिवर्ष ४,०१,७०० पंखे तैयार करती थीं। विभिन्न राज्यों में बिजली के पंखे तैयार करने वाली फर्मों की संख्या इस प्रकार थी—

राज्य	फर्मों की संख्या	वार्षिक उत्पादन
पश्चिमी बंगाल	११	३१३२००
बम्बई	४	६२०००
दिल्ली	३	२५५००
उत्तर-प्रदेश	१	१०००
कुल योग	१९	४०१७००

—मेजर इंडस्ट्रीज ऑफ इंडिया से उद्धृत

आयात और निर्यात

देश में बिजली के पंखों का निर्माण करने वाली फर्मों को प्रोत्साहन और संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार ने पंखों के आयात पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा रखा है। केवल कुछ किस्म के 'टेबिल फैनों' को सीमित संख्या में आयात करने की इजाजत दी गई है। हाँ, कारखानों तथा सिनेमाघरों और इसी प्रकार के भीड़-भाड़ वाले स्थानों में गन्दी हवा को बाहर फेंकने वाले पंखों के आयात पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। पिछले ६ वर्षों में जितने मूल्य के बिजली के पंखे और उसके पुर्जे विदेशों से आयात किए गए, उसके आँकड़े इस प्रकार हैं—

वर्ष	आयात किए जाने वाले पंखों और पुर्जों का मूल्य (लाखों रु० में)
१९५०-५१	३.२
१९५१-५२	५.५
१९५२-५३	४.५
१९५३-५४	६.८
१९५४-५५	१२.५
१९५५-५६ (अप्रैल से जनवरी तक)	१४.७

—औद्योगिक प्रगति की रिपोर्ट से उद्धृत

यह आशा थी कि १९५६ तक विदेशों को निर्यात किए जाने वाले पंखों की संख्या लगभग ३०,००० तक पहुँच जाएगी। सुलभ आँकड़ों के अनुसार भारत ने विदेशों को १९५२ ५३३ में ३,६५५ पंखे, १९५४-५५ में १०,८६९ पंखे तथा १९५५-५६ में १४,२४१ पंखे निर्यात किए।

वाणिज्य विभाग की सूचना के अनुसार, १९५१ में देश में प्रतिवर्ष लगभग २,१२,००० पंखों की माँग थी। इनमें से १,४०,००० छत पर लगने वाले पंखे, ६० हजार टेबिल फैन' तथा १२ हजार रेल के डिब्बों में फिट होने वाले पंखे शामिल थे। तटकर कमीशन ने १९५१ में बिजली के पंखों के निर्माण से सम्बन्धित उद्योग पर अपनी रिपोर्ट देते हुए लिखा था कि १९५४ के अन्त तक देश में प्रतिवर्ष लगभग २,७५,००० पंखों की आवश्यकता होगी। इसी सूचना के आधार पर योजना कमीशन ने १९५५-५६ के अन्त तक ३,२०,००० पखों की आवश्यकता पड़ने का अनुमान लगाया था।

पूंजी और रोजगार की स्थिति

प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान उद्योगों की स्थिति की जो जाँच-पड़ताल की गई थी, उससे पता चला था कि इस उद्योग में १९५३ में लगभग १०२.२ लाख रुपए की पूँजी लगी हुई थी तथा १९ कारखानों में कुल मिलाकर ५,४०० आदमी काम कर रहे थे।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य

यह अनुमान लगाया गया है कि जनता के जीवन-स्तर और रहन-सहन की दशा में सुधार होने, सस्ती विद्युतशक्ति सुलभ होने और पंखों के मूल्यों में कमी होने

के फलस्वरूप अगले वर्षों में देश में पंखों की माँग में निश्चित रूप से आशातीत वृद्धि होगी। विद्युत शक्ति से सम्बन्धित उद्योगों के विकास के हेतु सरकार द्वारा १९५५ में स्थापित की गई विकास परिषद् के अनुमानों के अनुसार १९६०-६१ तक देश में प्रतिवर्ष ४५०,००० बिजली के पंखों की आवश्यकता होगी। इस आवश्यकता को दृष्टि में रखकर १९६०-६१ तक एक पाली में काम करके प्रतिवर्ष ६,००,००० पंखे तैयार करने का लक्ष्त निर्धारित किया गया है। पंखों के उत्पादन में वृद्धि करने के उद्देश्य से तीन नई कम्पनियों को लाइसेंस भी मंजूर किए जा चुके हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि समाप्त होने पर बिजली के पंखे तैयार करने के उद्योग की स्थिति इस प्रकार होगी—

	१९५५-५६	१९६०-६१
वार्षिक उत्पादन क्षमता	४०१७००	६००,०००
उत्पादन	२८००००	६००,०००
देश में खपत	२८००००	३५०,९००
निर्यात	१७०००	५०,०००

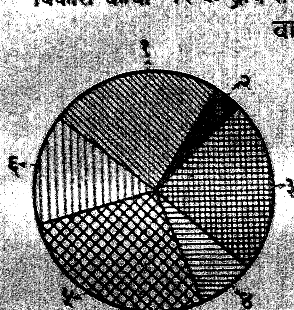
—औद्योगिक प्रगति रिपोर्ट से उद्धृत

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—एक संक्षिप्त परिचय

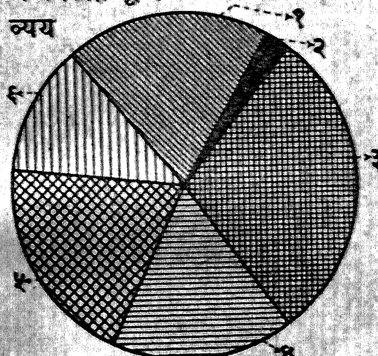
स्वतन्त्र भारत आज तेजी के साथ आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर हो रहा है। संसार के स्वतन्त्र राष्ट्रों में सम्मानजनक और प्रतिष्ठत स्थान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि यथासम्भव कम से कम समय में भारतवासी अधिक से अधिक परिश्रम कर अपने देश को आत्मनिर्भर बनावें। देश १५० वर्षों तक दासता

योजना का स्वरूप

विकास कार्यों पर केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा किया जाने वाला व्यय



प्रथम पं· योजना



दूसरी पं· योजना

की जंजीरों में जकड़ा रहा। इस बीच संसार में आश्चर्यजनक आर्थिक, औद्योगिक और सामाजिक क्रान्तियाँ हुईं और संसार के स्वतन्त्र देश बहुत आगे बढ़ गए। दासता की जंजीरों में जकड़े रहने के कारण भारतवासी दैव और भाग्य को ही कोसता रहा। देश की धन-सम्पदा विदेशों में खिच-खिच कर जाती रही, देशवासी दिन-दिन गरीब होते रहे। आर्थिक प्रगति के स्थान पर देश का और अधिक आर्थिक पतन होता रहा। बापू ने विदेशी दासता से देश को मुक्त कर हमें राजनीतिक स्वतन्त्रता प्रदान की परन्तु उनकी असामयिक मृत्यु से आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के सम्बन्ध में देश उनके पथ-प्रदर्शन से वंचित रह गया। निश्चय ही, हमारे लिए यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य था। परन्तु हमारे पास रुकने अथवा दुख मनाने का समय नहीं है। हम प्रगति और उन्नति के क्षेत्र में संसार के स्वतन्त्र राष्ट्रों से १०० वर्ष पीछे हैं। हमें इस अन्तर को कुछ दशकों में ही मिटाना है, अन्यथा संसार के राष्ट्रों में आर्थिक प्रगति और विकास की जो उग्र प्रतिस्पर्धा चल रही है, उसमें हम हार जाएंगे। श्री जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में बापु के चरण-चिन्हों पर चलते हुए हम आर्थिक

प्रतिवर्ष १८ लाख व्यक्तियों को रोजगार देने की समस्या

भारत की जनसंख्या में प्रतिवर्ष ४५ लाख की वृद्धि हो रही है और हर वर्ष लगभग १८ लाख व्यक्तियों को काम पर लगाने की समस्या हमारे सम्मुख है। इसके अलावा, देश में मौजूद बेकार लोगों को भी काम देने की समस्या है। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि को दृष्टि में रखते हुए हमारे समक्ष ९० लाख से लेकर १ करोड़ लोगों को काम पर लगाने की समस्या उपस्थित है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के लिए जोरदार प्रयत्न किए जाएँगे।

केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा व्यय की जाने वाली धनराशि

द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर १ अप्रैल १९५६ से अमल होना शुरू हो गया है। यह योजना मार्च १९६१ तक चलेगी। इस योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार तथा राज्यीय सरकारें मिलकर विकास कार्यों पर कुल ४८०० करोड़ रुपये खर्च करेंगी। विभिन्न विकास कार्यों पर जो धन व्यय किया जाएगा, उसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

व्यय (करोड़ रुपए में)

मद	प्र० पं० योजना	द्वितीय पं० योजना
१. कृषि	३५७-१५.१%	५६८—११.८%
२. सिंचाई और विद्युत उत्पादन	६६२-२८.१%	९१३—१९. %
३. उद्योग और खनिज	१७९- ७.६%	८९०-१८.५%
४. यातायात और संचार साधन	५५७-२३.६%	१३८५-२८.९%
५. समाज सेवाएँ	५३३-२२.६%	९४५—१९.७%
६. अन्य	९९- ३ %	९९—२.१%
कुल	२३५६-१००.०	४८००—१००.०

—द्वितीय पंचवर्षीय योजना से

कुल ६,२०० करोड़ रुपया

उक्त आँकड़ों में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं द्वारा विकास कार्यों पर किया जाने वाला व्यय शामिल नहीं किया गया है। इस प्रकार द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विभिन्न आर्थिक विकास कार्यों पर सरकार कुल ४,८०० करोड़ रुपए तथा गैर-सरकारी क्षेत्र कुल २,४०० करोड़ रुपये खर्च करेंगे। उक्त आँकड़ों को देखने से यह स्पष्ट है कि सरकार उद्योग और खनिज पदार्थों के विकास पर अपेक्षाकृत अधिक धनराशि व्यय करने जा रही है। गैर-सरकारी क्षेत्र विभिन्न विकास कार्यों पर जो पूँजी लगाएगा, उसका वितरण इस प्रकार किया जा सकता है—

	करोड़ रुपयों में
१. निर्माण कार्यों पर	११००
२. उद्योग, खनिज, विद्युतशक्ति और यातायात साधन के विकास पर	५०५
३. कृषि और उससे सम्बन्धित उद्योग	३००
४. उद्योगों और व्यापार को चलाने के लिए आवश्यक पूँजी	५००
कुल	२४००

—इण्डिया १९५६ से उद्धृत

यदि उपर्युक्त धनराशि में से हम १ हजार करोड़ रुपए चालू व्यय के लिए काट दें, तो विकास कार्यों के लिए ३,८०० करोड़ रुपए की रकम बचती है। इसके अलावा, गैर-सरकारी स्रोतों द्वारा २,४०० करोड़ रुपया व्यय किए जाने की सम्भावना है। इस प्रकार कुल मिलाकर द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर ६,२०० करोड़ रुपए की धन-राशि खर्च करने का निर्णय किया गया है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के उत्पादन-लक्ष्य

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में जो उत्पादन-लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

	१९५५-५६	१९६०-६१	प्रतिशत वृद्धि
१. खाद्यान्न १० लाख टनों में	६६	७५	१५
२. कपास १० लाख गाँठों में	४.५	५.५	३१
३. चीनी गुड़ १० लाख टनों में	५८	७१	२२
४. जूट १० लाख गाँठों में	४०	५०	२५
५. चाय १० लाख पौंडों में	६४४	७००	६
६. सिंचाई-क्षेत्र १० लाख एकड़ों में	६७	८८	३१
७. विद्युतशक्ति १० लाख किलोवाट	३४	६६	१०३
८. लोहा १० लाख टनों में	४.३	१२.५	१९१
९. कोयला १० लाख टनों में	३८.०	६०.०	५८
१०. अल्यूमीनियम (००० टनों में)	७.५	२५.०	२३३
११. मोटर (संख्या)	२५०००	५७०००	१२८
१२. रेल इंजन (संख्या)	१७५	४००	१२९
१३. सिमेंट १० लाख टनों में	४.३	१३	२०२
१४. पैट्रोलियम १० लाख टनों में	३.६	४.३	१९

—द्वितीय पंचवर्षीय योजना से

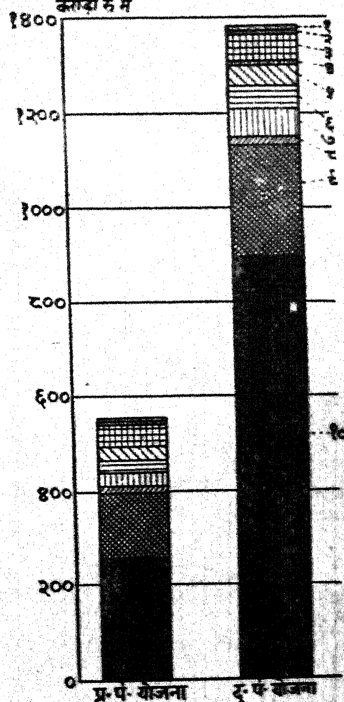
योजना का लक्ष्य : समाजवादी समाज की स्थापना

भारत सरकार ने तथा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने स्पष्ट रूप से यह घोषणा कर दी है कि उनका लक्ष्य देश में समाजवादी समाज की स्थापना करना है। यद्यपि प्रथम पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य निर्धारित करते समय भी यह कहा गया था कि योजना का उद्देश्य आर्थिक असमानताओं को दूर करना है। परन्तु इस घोषणा के बावजूद यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाया था कि भारत की अर्थ-व्यवस्था का भावी स्वरूप क्या होगा। आवड़ी में कांग्रेस समिति द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार

उद्योगों पर सरकारी नियन्त्रण, उत्पादन-वृद्धि और राष्ट्रीय सम्पत्ति के अपेक्षाकृत अधिक सन्तुलित वितरण के लक्ष्यों को दृष्टि में रखकर ही द्वितीय पंचवर्षीय योजना तैयार की गई है। इन लक्ष्यों के अनुसार, सरकार देश में भूमि-सुधार करने, महत्त्वपूर्ण उद्योगों पर अपना नियन्त्रण करने, कर-व्यवस्था को अधिक प्रभावशाली बनाने, विलास की वस्तुओं की खपत को कम और समाज सेवाओं और श्रम-कल्याण कार्यों के क्षेत्र को विस्तृत करने के लिए प्रयत्नशील है।

उद्देश्यों और लक्ष्यों में समानता होते हुए भी प्रथम पंचवर्षीय योजना और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य कृषि-उत्पादन में वृद्धि करना था, जबकि द्वितीय योजना का उद्देश्य देश को तीव्र गति से आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर करना और गरीबी और बेकारी की समस्याओं को सुलझाना है और ऐसे समाजवादी समाज की स्थापना करना है जिसमें आर्थिक असमानता न रहे और सामान्य नागरिक को अपनी दैनिक आवश्यकता की सभी वस्तुएँ सुलभ हो सकें।

यातायात और संचार साधनों के विकास पर प्रस्तावित व्यय



जनता का जीवन-स्तर ऊँचा उठाना योजना का मुख्य लक्ष्य

इसमें कोई सन्देह नहीं कि देश के खाद्यान्न उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है, लेकिन अभी अन्य प्रकार की खाद्य सामग्रियों—जैसे दूध, घी, माँस, अण्डे, चिकनई वाले पदार्थ, फल, सब्जी और चीनी इत्यादि का उत्पादन देश की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने की दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। इन वस्तुओं के उत्पादन में कई गुनी वृद्धि होने पर ही प्रत्येक भारतवासी को सन्तुलित आहार मिल पाना सम्भव हो सकेगा। इसी प्रकार, वस्त्र, निवास, शिक्षा और स्वास्थ्य इत्यादि की सुविधाएँ

सुलभ करने के लिए विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है। देश में घरों की बहुत कमी है और यह अनुमान है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में ३० लाख से अधिक घरों की आवश्यकता होगी। इसके अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में भी घरो की स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया जाएगा। १९५३-५४ में देश में डाक्टरों की संख्या ६५ हजार थी तथा देश में कुल १,१२,००० अस्पताल और दवाखाने थे जिनमें कुल मिलाकर ८५०० रोगियों को रखने की व्यवस्था थी। यदि जनसंख्या को दृष्टि में रखकर सुलभ चिकित्सा सुविधाओं का हिसाब लगाएँ तो यह पता चलता है कि देश में हर ६,३०० व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर, हर ४,३०० व्यक्तियों के पीछे एक परिचारिका, तथा हर ६० हजार स्त्रियों पीछे एक दाई की व्यवस्था है। इसकी तुलना में इंगलैंड में हर १ हजार व्यक्ति पीछे एक डाक्टर, हर ३०० व्यक्तियों के पीछे एक परिचारिका तथा हर ६१८ स्त्रियों पीछे १ दाई की सेवाएँ सुलभ हैं। इन आँकड़ों से पता चलता है कि भारत को सार्वजनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा के क्षेत्र में कितना अधिक मार्ग तय करना है। इस विशाल आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में अस्पतालों में मौजूद बिस्तरों की संख्या में शत-प्रतिशत, डाक्टरों की संख्या में २९ प्रतिशत तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्य-कर्ताओं की संख्या में २०० प्रतिशत की वृद्धि करने का निर्णय किया गया है।

राष्ट्रीय आय में वृद्धि

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में देश की राष्ट्रीय आय में १५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यूरोप के समाजवादी देशों में राष्ट्रीय आय में प्रतिवर्ष लगभग १२ से १६ प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में राष्ट्रीय आय में ५ प्रतिशत की वृद्धि करने का निश्चय किया गया है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने के फलस्वरूप लोगों के जीवन-स्तर में भी सुधार होगा क्योंकि उद्योगों इत्यादि के विकास में पहले से अधिक पूँजी लगाना सम्भव हो सकेगा।

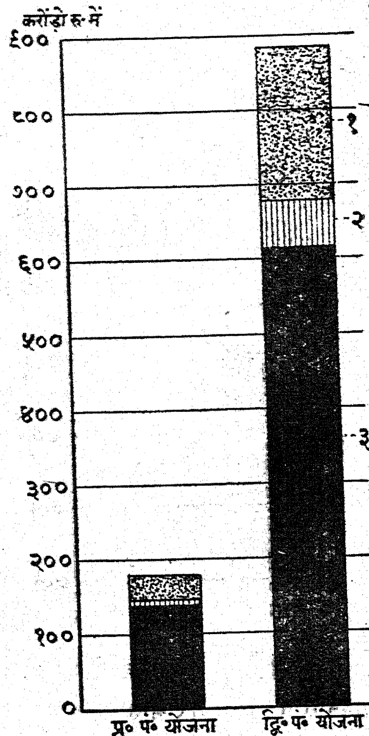
औद्योगिक विकास मुख्य लक्ष्य

जैसाकि मैं ऊपर कह आया हूँ, प्रथम पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य देश की कृषि-व्यवस्था को सुदृढ़ करना था, जबकि द्वितीय पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य प्रमुख और महत्त्वपूर्ण उद्योगों का विकास करना है। सरकार अपना ध्यान मुख्यतः आधारभूत उद्योगों के विकास पर केन्द्रित करेगी और अधिक से अधिक उद्योगों पर अपना स्वामित्व

और नियन्त्रण लागू करने की कोशिश करेगी। लेकिन इसके साथ ही वह देश के व्यवसायियों को औद्योगिक विकास में योग देने का पूरा अवसर भी देगी।

५ वर्षों में कुल ६,३०० करोड़ रुपया खर्च होगा

जैसा कि मैं ऊपर स्पष्ट कर चुका हूँ, द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर अमल करने के लिए कुल मिलाकर ६,२०० करोड़ रुपए की आवश्यकता पड़ेगी। इसमें से सरकार ३८०० करोड़ रुपए तथा गैर-सरकारी क्षेत्र २,४०० करोड़ रुपए खर्च करेगा। इसके अलावा, केन्द्रीय और राज्यीय सरकारों को अपना प्रशासन चलाने के लिए कुल मिला कर ४४०० करोड़ रुपये की आवश्यकता पड़ेगी। इसमें से लगभग ३.४०० करोड़ रुपए प्रतिरक्षा, नागरिक प्रशासन इत्यादि पर तथा १,१०० करोड़ रुपए अन्य कार्यों पर खर्च होंगे। इसी अवधि में योजना के संचालन के लिए ४,८०० करोड़ रुपए की आवश्यकता होगी। इसमें चालू व्यय के १,००० करोड़ रुपए भी शामिल हैं। संक्षेप में, द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में भारत सरकार को कुल मिलाकर ६,३०० करोड़ रुपए की जरूरत पड़ेगी।

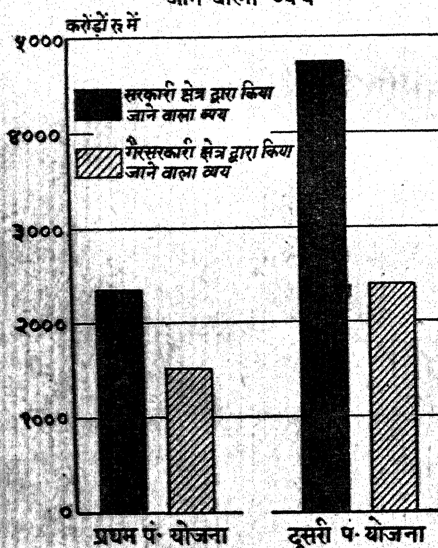


आवश्यक धन जुटाने की समस्या

इस समय राष्ट्रीय आय का लगभग ६.५ प्रतिशत भाग सरकार को आयकर के रूप में प्राप्त होता है। इस स्रोत से सरकार को १९५६-५७ से १९६०-६१ तक ५,२०० करोड़ रुपए की आमदनी होगी। इसके अलावा, सरकार जनता से लगभग १,००० करोड़ रुपए का ऋण प्राप्त करने में भी सफल हो जाएगी। ५ वर्षों की अवधि में रेलों से भी लगभग २०० करोड़ रुपए की आय होने की आशा है। इस

प्रकार अपने स्रोतों से सरकार ६,४०० करोड़ रुपए एकत्र करने में समर्थ हो सकेगी। लेकिन इसके बावजूद २,६०० करोड़ रुपए जुटाने की समस्या उठ खड़ी होती है। यदि हम यह मान लें कि विदेशों से मिलने वाली सहायता में इस अवधि में ५० प्रतिशत की वृद्धि हो जाएगी, तब भी हम विदेशी स्रोतों से ४०० करोड़ रुपए से अधिक की सहायता प्राप्त नहीं कर सकेंगे। इस तरह २,५०० करोड़ रुपया जुटाने की समस्या फिर भी रह जाती है। योजना आयोग के आर्थिक सलाहकारों ने यह परामर्श दिया है कि चूंकि देश में मुद्रास्फीति का संकट नहीं है, इसलिए घाटे का बजट बना कर इस समस्या का सामना किया जा सकता है; लेकिन इस स्रोत से भी हम अधिक से अधिक २०० करोड़ रुपए ही जुटा सकेंगे और इसके साथ ही मुद्रास्फीति का संकट पुनः देश में पैदा हो जाएगा। प्रश्न यह उठता है कि योजना के लिए शेष धन राशि कहाँ से जुटाई जाए। इस आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए अभी हाल में भारत सरकार के वित्त मंत्री ने कुछ नए कर लगाने की घोषणा की है और रेल के भाड़े में भी वृद्धि कर दी है। यद्यपि जनता पर इन करों का बोझ पहले से कहीं बढ़ जायगा, परन्तु, वित्त मंत्री के शब्दों में, द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए भारतीय जनता को यह बलिदान करना ही पड़ेगा। संक्षेप में, इस दिशा में हमें बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता है। हो सकता है, हमें विदेशी सहायता न मिले और अन्ततोगत्वा हमें अपने ही साधनों पर निर्भर होना पड़े।

सरकारी और गैरसरकारी क्षेत्रों द्वारा किया जाने वाला व्यय



गैर-सरकारी क्षेत्र भी विकास कार्यों पर २,४०० करोड़ रुपया खर्च करेंगे। सरकार ने कई कार्पोरेशनों की स्थापना की है जो व्यवसायियों की हर प्रकार से सहायता करेंगे और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण भी देंगे।

विदेशों से मशीनों का आयात

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में भारत विदेशों से बहुत अधिक संख्या में मशीनों का आयात करेगा। यह अनुमान है कि पाँच वर्षों की अवधि में भारत विदेशों से १ हजार करोड़ रुपये मूल्य की मशीनें मँगाएगा। इसके अलावा, ४०० करोड़ रुपया पुरानी मशीनों के पुर्जों इत्यादि के बदलने पर भी व्यय होगा। इस प्रकार, भारत को कुल मिलाकर १,४०० करोड़ रुपये की आवश्यकता पड़ेगी। इस समय भारत प्रतिवर्ष १०० करोड़ रुपए अधिक की मशीनें विदेशों से मँगा रहा है। हमारे पास अभी इतनी विदेशी मुद्रा है कि हर वर्ष ५०० करोड़ रुपए की मशीनें हम विदेशों से आयात कर सकें। अतएव १ हजार करोड़ रुपए के बराबर की विदेशी मुद्रा जुटाने की आवश्यकता है। यदि हम द्वितीय योजना के दौरान में कुछ वस्तुओं के आयात में कमी कर दें तो लगभग २०० करोड़ रुपए के बराबर की विदेशी मुद्रा और सुलभ हो सकती है। इसके अलावा, रिजर्व बैंक के विदेशी मुद्रा कोष से भी लगभग १५० करोड़ रुपए जितनी विदेशी मुद्रा खर्च की जा सकती है। फिर भी शेष ५०० करोड़ रुपए जुटाना हमारे लिए बहुत कठिन हो जाएगा। हाँ, यदि हमें विदेशों से सहायता राशि के रूप में ५०० करोड़ रुपए मिल जाए, तो यह समस्या आसानी से हल हो जाएगी।

एक साहसिक परीक्षण

हमने एक बड़ा खतरा मोल लिया है। हमारी सफलता और असफलता का प्रभाव देश पर ही नहीं, बल्कि समस्त संसार पर पड़ेगा। यह ठीक है कि इतनी बड़ी और महत्त्वाकांक्षापूर्ण योजना बनाना खतरे से खाली नहीं है। परन्तु हाथ पर हाथ रख कर असहाय की तरह बैठ रहने की अपेक्षा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करते हुए मरना कहीं उत्तम है। संक्षेप में, द्वितीय पंचवर्षीय योजना समस्त राष्ट्र के लिए एक महान चुनौती है। इसकी सफलता पर भारत ही में नहीं, बल्कि समस्त एशिया में लोकतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली का भविष्य निर्भर करता है। आज संसार के सभी लोग उत्सुकता के साथ यह देख रहे हैं कि साम्यवादी चीन और भारत में आर्थिक प्रगति के लिए जो शान्तिपूर्ण प्रतिस्पर्धा चल रही है, उसमें कौन विजयी होता है। इस संघर्ष में भारत की विजय संसार में लोकतन्त्र की महान् विजय होगी। हमें विश्वास है कि श्री नेहरू के नेतृत्व में हम अवश्य विजय प्राप्त करेंगे।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में संशोधन

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रारम्भ में विभिन्न विकास कार्यों पर

४८ अरब रुपया खर्च करने का निश्चय किया गया था, जिसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

मद	करोड़ रुपयों में
सिंचाई और विजली	९१३
कृषि और सामुदायिक विकास	५६८
ग्रामीण तथा छोटे उद्योग	२००
उद्योग तथा खनिज	६९०
यातायात और संदेशवहन	१,३८५
सामाजिक सुविधाएँ	९४५
विभिन्न	९९
कुल	४,८००

लेकिन, प्रथम वर्ष में ही द्वितीय पंचवर्षीय योजना को जिन कठिनाइयों से गुजरना पड़ा, उन्होंने योजना कमीशन को सम्पूर्ण योजना पर पुनर्विचार करने और उसमें आवश्यक संशोधन करने के लिए विवश कर दिया। राष्ट्रीय विकास समिति ने स्थिति पर पूरी गम्भीरता के साथ विचार कर यह अनुभव किया कि ४८ अरब की मूल धनराशि जुटा पाना सरकार के लिए अत्यधिक कठिन हो जाएगा। अतएव उसने योजना को दो भागों में बाँट देने की सिफारिश की। 'अ' श्रेणी में सभी आवश्यक और अनिवार्य विकास योजनाओं को शामिल किया गया और इन पर ४५ अरब रुपया व्यय करने का निर्णय किया गया। शेष योजनाओं को 'ब' श्रेणी में शामिल कर यह तय किया गया कि अतिरिक्त साधन सुलभ होने पर ३०० करोड़ रुपया इन्हें क्रियान्वित करने पर खर्च किया जाए।

सिर्फ साधनों की कमी की वजह से ही नहीं, बल्कि बजट में निश्चित की गई रकम खर्च न कर सकने के कारण भी आखिर में चल कर योजना का आकार छोटा दिखाई पड़ सकता है। दूसरी पंचवर्षीय योजना के पहले दो वर्षों में १,४९६ करोड़ रुपए खर्च होने का अनुमान है। इस प्रकार, ५ में से ३ वर्षों के भीतर कुल व्यय २,४५६ करोड़ रुपया होता है। योजना को लागू करना सिर्फ इसी बात पर निर्भर नहीं होता कि आवश्यक साधन सुलभ हों। साधनों की उपलब्धि के साथ-साथ यह भी परमावश्यक है कि सरकार प्राप्त धनराशि और साधनों का उपयोग करने में समर्थ हो।

घाटे की वित्त-व्यवस्था

दूसरी योजना के पहले २ वर्षों में लगभग ७०२ करोड़ रुपए की घाटे की वित्त-व्यवस्था का सहारा लेना पड़ा। निश्चय ही, यह रकम शुरू के अनुमान—६०० करोड़ रुपए—से काफी अधिक है। १९५८-५९ में बजट में घाटे की वित्त-व्यवस्था की धनराशि ४०० करोड़ रुपये निश्चित की गई थी। अभी हाल में वित्त मंत्री ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि घाटे की वित्त-व्यवस्था को ९०० करोड़ रुपए से कम करना सम्भव न होगा। यह भी सम्भावना है कि यह धनराशि इससे भी अधिक बढ़ जाए। इसके साथ ही, हमें मुद्रास्फीति के खतरों के प्रति भी पूरी तरह सचेत और सजग रहना पड़ेगा।

विदेशी साधनों के मामले में भी इस समय स्थिति काफी आशाजनक हो गई है। अभी हाल में अमेरिका से हमें ऋण के रूप में काफी सहायता प्राप्त हुई है। पिछले वर्ष विदेशों से प्राप्त १०५ करोड़ रुपयों की तुलना में १९५८-५९ में हमें ३२५ करोड़ रुपयों की विदेशी सहायता मिलने की सम्भावना है। योजना की पूरी अवधि में १,१०० करोड़ रुपयों से अधिक की विदेशी सहायता मिलनी चाहिए, यद्यपि योजना में निर्धारित लक्ष्य केवल ८०० करोड़ रुपया है। पहले ३ वर्षों में इस स्रोत से ४३८ करोड़ रुपयों की रकम प्राप्त हो चुकी है। लेकिन इसके साथ ही यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि योजना के अन्तिम वर्ष में ऋणों और ब्याज के भुगतान के रूप में सरकार को ८० करोड़ रुपया देना पड़ेगा।

इन सब से यह निष्कर्ष निकलता है कि अन्तिम दो वर्षों में २,३४४ करोड़ रुपयों की आवश्यकता पड़ेगी। जिसमें से सरकार अधिक से अधिक १,८०४ करोड़ रुपया जुटा सकेगी। योजना कमीशन के स्मृति-पत्र में इस कमी की पूर्ति के लिए घाटे की अर्थ-व्यवस्था या विदेशी ऋण पर निर्भर न रहने पर विशेष बल दिया गया है। अतएव केवल यही विकल्प रह जाता कि आन्तरिक साधनों के द्वारा ही यह कमी पूरी की जाए।

विकास की मुख्य मदों के लिए वित्त (करोड़ रुपयों में)

मद	मूल निश्चित रकम	४८ अरब के व्यय के आधार पर संशोधित रकम	४५ अरब के व्यय के आधार पर संशोधित रकम
कृषि और सामुदायिक विकास	५६८	५६८	५१०
सिंचाई तथा बिजली	९१३	८६०	८२०

मद	मूल निश्चित रकम	४८ अरब के व्यय के आधार पर संशोधित रकम	४५ अरब के व्यय के आधार पर संशोधित रकम
ग्रामीण तथा छोटे उद्योग	२००	२००	१६०
उद्योग तथा खनिज	६६०	८८०	७६०
यातायात तथा संदेश-वहन	१,३८५	१,३४५	१,३४०
सामाजिक सुविधाएँ	६४५	८६३	८१०
विभिन्न	९१	८४	७०
कुल	४,८००	४,८००	४,५००

सहायक-ग्रन्थ

1. **Major Industries of India**—A leading Industrial Magazine of India.
2. **Localisation of Industries in India.**—Tulsi Ram Sharma.
3. **Indian Year Books of the last 5 years**—Ref. Books.
4. **First Five Year Plan.**
5. **Progress Report of First Five Year Plan for 1953-1954.**
6. **Second Five Year Plan.**
7. **Programme of Industrial development of India under Second Five Year Plan.**

   (Items 4–7:) Published by Planning Commission, Govt. of India.
8. **India at a Glance**—Reference Book.
9. **India 1956**—Govt. of India.
10. **Sugar Industry Annual**—A leading English Industrial Magazine.
11. Pamphlets and Articles published in
    (1) Times of India
    (2) Hindustan Times
    (3) Statesman
    } leading English Dailies
12. **Sampda**—A leading Hindi Economic Magazine.
13. **Arthik Samichha**—A Hindi Economic Magazine published by A.G.C.C.
14. **Ancient History of India**—By Satya Ketu Vidyalankar.
15. **Twentieth Century English Hindi Dictionary Series No. 4**—by Sukh Sampattira Bhandari, M.R.A.S.
16. **USIS**—Material.